

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182508

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 83
V 13 R
Accession No. H 2438
Author वाजपेयी श्री भगवती प्रसाद
Title रात और प्रभात

This book should be returned on or before the date
last marked below.



रात और प्रभात

भगवतीप्रसाद वाजपेयी

राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली



मूल्य १ ३.५० रुपये
प्रथम संस्करण : मई १९५७
आवरण : नरेन्द्र श्रीवास्तव
प्रकाशक: राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली

वह दिसम्बर मास का एक रविवार था । चढ़ती हुई घूप द्वार, दीवार, आँगन और बराण्डा में जैसे हँसती-हँसती आसन जमा रही थी । पूर्व की ओर दक्षिणी कोने पर स्नानागार था, जहाँ पश्चिम से पूर्व तक एक सुदृढ़ रस्सी बँधी हुई थी, जिस पर गीले कपड़े फैले हुए थे । वहीं नल था और पास ही एक घनीची, जहाँ पीतल और लोहे की बाल्टियों, ताँवें और पीतल के कलशों में जल भरा रहता था । वहीं एक ओर पत्थर पर मुरादाबादी लोटा और हाथ-मुँह धोने वाला साबुन, एक हरे-पीले रंग के पारदर्शक प्लैस्टिक के डब्बे में रक्खा हुआ था । उत्तर-पश्चिमी कोनों में एक बरौसी थी, जिसमें उपलों की आग पर हाँडी में रक्खा हुआ गाय का दूध हौले-हौले खौल रहा था । एक भूरी बिल्ली बरौसी के पास दुबकी हुई बैठी कदाचित् अपना कार्य-क्रम निश्चित कर रही थी ।

यकायक गोविन्द खेलता-खेलता स्नानागार के पास जा पहुँचा और एक बाल्टी के पानी में दोनों हाथ डालकर इस प्रकार छप-छप करने लगा कि उसका ऊनी कुरता कुहनियों तक भीग गया ! विमला दौड़ पड़ी और झट उसे उठाकर कुरता बदलवाने लगी ।

इधर कई दिनों से इस घर की स्वामिनी बड़ी बहू के दाँत में दर्द

हो रहा था। ऊपर की एक दाढ़ बहुत हिलती है। उस ओर खाना दूर रहा, शीतल जल का स्पर्श तक प्राणान्तक पीड़ा का कारण बन जाता है। कई दिनों बाद आज थोड़ा-सा आराम मिला है, तो वे उत्तर की ओर धूप में बैठी पूजन कर रही हैं। एक माला उनके दायें हाथ में है, जिसका एक गुरिया तो रुद्राक्ष का है, दूसरा तुलसी का, जिस पर सोना चढ़ा हुआ है।

मंभली बहू खाना बना रही हैं। विमला उनकी सहायता कर रही है। वह बड़ी बहू की छोटी बहन की एकमात्र सन्तान है। यहाँ इसलिये रहती है कि एक तो वह बे-माँ की है, दूसरे उसके पिता ने दूसरा विवाह कर लिया है। यों जब तरुणावस्था में ही गृहणी का देवलोक हो जाय, तब विवश होकर विवाह तो करना ही पड़ता है। पर जब तेईस वर्ष की लड़की हो और बाईस वर्ष की पत्नी, तब अविवाहित अवस्था में लड़की का अपनी विमाता के साथ रहना—शिव-शिव ! बस, बड़ी बहू ने इसी कारण उसे यहाँ बुला लिया है।

मंभली बहू की बड़ी लड़की उर्मिला है तो ग्यारह वर्ष की, पर इस समय वह बहुत आवश्यक कार्य में लगी हुई है। उसने अपनी गुड़िया के लिए जो लहंगा सिया है, इस समय वह उसमें सितारे जड़ रही है। ब्रह्मों की प्रदर्शनी में उसे पुरस्कार जो प्राप्त करना है।

लो, गोविन्द खेलता हुआ रसोई में जा पहुँचा। अब या तो वह माँ की गोदी की ओर बढ़ेगा, या गीले आटे की चिड़िया बना देने के लिये मचलेगा। देर-दार होने पर सम्भव यही है कि तुरन्त अपने अधिकार का उपयोगकर माँ के मुँह पर चपत जमाना शुरू कर दे। कदाचित् यही सोचकर मंभले भैया ने दौड़कर उसे उठा लिया। अब वे उसे द्वार के चबूतरे पर लाकर, पैरगाड़ी चलाने के अभ्यास द्वारा उसका जी बहला रहे हैं।

छोटे भैया अभी-अभी गांधीमार्ग गये हैं। उन्होंने वहाँ अपने दरजी

रात और प्रभात

को नयी शेरवानी सुधारने के लिये दे रखी है। आज संध्या समय, साढ़े चार के लगभग, पहले उनके कालेज के साथियों का एक सम्मिलित फोटो होगा, फिर चाय पार्टी जमेगी। और खयाल ऐसा है कि इस सारे कार्यक्रम में वे आज अपने मित्रों के बीच अपने आपको सबसे अधिक शानदार जँचाकर मानेंगे। पर उन्हें ध्यान नहीं है कि उनके सुदक्ष दरजी ने तारीख के हिसाब से पक्का वादा भले ही किया हो, पर जब वे उस दूकान पर पहुँचेंगे, तब रविवार के कारण वह क्षण, बन्द कपाट का रूप धारणकर उन्हें मूर्खाधिराज बनाकर उनकी सावधानी पर एकदम हँस पड़ेगा !

छोटी बहू ने अब तक पलँग नहीं छोड़ा है। एक उपन्यास उनके हाथ में है, जिसे पढ़ते-पढ़ते वे कभी-कभी मुसकरा उठती हैं। उनके कमरे में फ़र्श पर रखी चाय की ट्रे में कहीं एक बिसकिट का टुकड़ा पड़ा रह गया था। इस समय वह एक चुहिया के हाथ लग गया है। बड़े इतमीनान से वह उसे कुतर रही है, यद्यपि कभी-कभी चौंककर इधर-उधर देखने लग जाती है।

विमला अभी कह गयी थी—आज तुम भी नहा डालो छोटी मौसी। पर छोटी मौसी के पेट में नहीं, मन में मूसे कूद रहे हैं। सम्भव है, उनको भी बिसकिट के टुकड़े मिल गये हों।

बड़े भैया की बैठक अब उखड़ने ही वाली है। मिस्टर चड्ढा, एक बैंक के रिटायर्ड मैनेजर, चले ही गये। अरोरा जी ने भी अपनी छड़ी उठा ली। रह गये लाला भूमनलाल, सो वे तो तब उठेंगे, जब कुन्दन किवाड़ बन्द करना शुरू कर देगा और बड़े भैया कमरे के मुख्य द्वार की देहरी पर आ जायेंगे। वैसे किशोरी नाई बड़े भैया के पैर में मालिश करने इसी समय आता है। कौन जाने, आज क्यों नहीं आया। एक टेबिल के दोनों ओर लाला जी और बड़े भैया बैठक वाली कुरसियों पर जमे हैं और शतरंज की चालें मूक होती हुई भी कैची चला रही हैं।

रात और प्रभात

बड़े भैया की अवस्था अब अट्ठावन वर्ष की है। दाँत केवल तीन रह गये हैं, एक ऊपर, दो नीचे। केश खिचड़ी हैं, यद्यपि चंदोवा बिल्कुल साफ हो गया है। आँखों की ज्योति में किसी प्रकार की शिथिलता नहीं आयी है। पर घर से बाहर निकलने पर मोटे फ्रेम का एक चश्मा अवश्य चढ़ा लेते हैं। शरीर से स्थूल, पर भावना में तीव्र हैं। नींद कम आती है, पर पढ़ने और खेलने में अब भी पूर्ण मग्न रहते हैं। हजामत रोज बनाते हैं, तेल साबुन का प्रयोग भी नित्य करते हैं, पर दर्पण कम देखते हैं। एक-दो मील नित्य चल लेते हैं। खाने में साग-पात का प्रयोग अधिक करते हैं, पर घी छोड़ दिया है। दूध केवल रात में—सोने से पूर्व लेते हैं। खाने में पाचन-शक्ति मानते हैं कि कम हो गयी है, पर भेद की बात पचा लेने की शक्ति इधर बढ़ गयी है।

मंभले भैया नयागंज में सराफ़े की एक दूकान पर बैठते हैं। उनकी ससुराल इसी पुराने कानपुर में है। साथ के लिए उन्होंने अपने साले रामप्रसाद को भी रख लिया है। यह रामप्रसाद दूकानदारी में बड़ा निपुण है। अगर कोई ग्राहक उसकी दूकान के सामने आ गया, तो फिर वह वापस जा नहीं सकता। यह उसी का कौशल है, जो दूकान चल पड़ी है। पिछले वर्ष ही खर्चा निकालकर साढ़े सैंतिस सौ रुपये की बचत हो गयी थी। यह रुपया मंभले भैया ने, नारायणपुर में एक प्लाट खरीदने में लगा दिया है। इस वर्ष भी ख्याल है कि अधिक नहीं तो पाँच हजार रुपये की बचत हो जायगी। और रामप्रसाद का कहना है कि अगर बड़े भैया थोड़ा-सा सहारा लगा दें, तो मकान बनवाना शुरू कर दिया जाय। लेकिन प्रश्न है कि बड़े भैया को समझाये कौन? वैसे रामप्रसाद के बात करने का ढँग बड़ा प्रभावशाली है। पर वह डरता है कि कहीं वे इनकार न कर दें।

कई दिन से साले-बहनोई में इसी विषय को लेकर सलाह हो रही है कि कैसे बात आरम्भ की जाय। कल रात रामप्रसाद ने मन ही मन

रात और प्रभात

निश्चय किया था कि वह आज बड़े भैया से मिलेगा। बल्कि वह ऐसे समय आयेगा जब वे अकेले होंगे। जरूरत होगी तो वहाँ वह युक्ति से जिज्जी यानी बड़ी बहू को भी बैठा लेगा। मंभले तो कुछ बोलेंगे नहीं। यह बात दूसरी है कि अगर बड़े भैया कुछ पूछ ही बैठेंगे, तो वे सिर लचाये हुए हाँ-हूँ कर दें। और यह तो तै है कि इस शुभ काम में जिज्जी का समर्थन मिल ही जायगा।

इस समय गोविन्द की अँगुली पकड़कर चबूतरे पर टहलाते हुये मंभले यही सोच रहे थे कि रामप्रसाद आये नहीं। तभी वे गली से निकलने वाले व्यक्तियों की ओर उत्सुकता से देखने लगते। कभी कल्पना में कुछ चित्र बनाने लगते। अपना एक कमरा दूसरी मंजिल पर बिल्कुल अलग होगा। उसकी खिड़कियों के शीशे रंगीन होंगे। धूप के समय उसकी छाया कमरे के सारे वातावरण को रंगीन बना दिया करेगी। और रात में तो बिजली की बत्ती के प्रकाश में कमरा इतना जगमगाया करेगा कि गोविन्द की माँ की तबियत हरी हो उठेगी।

स्वप्न आगे बढ़ रहा था। फिर एक दिन अपनी गाड़ी भी आ जायगी। उसमें बैठकर कभी-कभी सपरिवार घूमने या गंगा-स्नान को निकलेंगे, तब यह जीवन सम्पूर्ण स्वर्गीय सुख से एक बार सम्पन्न हो समुद्र की भाँति लहराने लगेगा। यह गोविन्द भी तब तक पाँच-सात वर्ष का हो जायगा। पर हाँ, अच्छी याद आयी, तब तक तो उर्मिला भी ब्याह के योग्य हो जायगी। लेकिन चिन्ता क्या है जी। जब भगवान् इतना सब देगा, तो क्या उसके विवाह के लिये रुपये की कमी पड़ जायगी। फिर बड़े भैया किस दिन के लिये हैं।

इसी समय रामप्रसाद ने आकर बड़े भैया के चरण छू लिये। लाला भूमनलाल अब तक उठे न थे। पर अब ग्यारह बजने ही वाले थे। अतः कुन्दन ने आकर कह दिया—“सरकार अब असनान करलें। किशोरी तो अब आने से रहा।”

इस स्थल पर इतना और निहित है कि यह कुन्दन जब कभी बड़े भैया से स्नान के लिये कहता है, तब भीतर से उसका अभिप्राय यह भी होता है कि बड़ी बहू पूजन कर चुकीं ।

बड़े भैया कहने ही वाले थे, 'अब नाई भला क्या आयेगा ।' तभी रामप्रसाद बोल उठा—“क्यों, क्या हजामत बनवाने के लिये ? अ, मेरा मतलब यह है बड़े भैया कि आप कहें तो मैं अभी दो मिनट में अच्छे से अच्छे नाई को पकड़ लाऊँ ।”

“अरे नहीं भाई । इस बुढ़ापे में हजामत की पाबन्दी भला चल सकती है । बायें पैर की गाँठ में इधर ज़रा दर्द रहने लगा है । इसलिये एक दवा की मालिश की ज़रूरत रहती है ।”

कथन के साथ बड़े भैया जो उठ खड़े हुये, तो लाला भम्मनलाल बोले—“लो, अब इस चाल से बाजी हमारे हाथ रही । देखो, ज़रा देख लो न ?”

सिर पर हाथ रखते हुए, बड़े भैया ने कुछ सोचते हुए उत्तर दिया—“देखा है ।”

अब जो लाला जी उठने लगे, तो बड़े भैया बोले—“आज शाम को तो हम ज़रा बाज़ार जाने का इरादा कर रहे हैं । खैर, कोई बात नहीं । आप एक बार इधर भाँक तो लीजियेगा ही ।”

“अच्छा-अच्छा ।” कहकर लाला भम्मनलाल ने एक हाथ से छड़ी उठाई और दूसरा कमर से लगा लिया । तभी रामप्रसाद ने कह दिया—“चलिये मालिश आज मैं ही किये देता हूँ ।”

कुन्दन बैठक बन्द करने लगा । बड़े भैया ने उत्तर देते हुए थोड़ा हँस दिया—“तुम क्या मालिश करोगे रामप्रसाद !”

“व्यों, आपके चरणों की सेवा का अवसर मिलता कब-कब है ?

“नहीं नहीं, ऐसा नहीं होता । यह काम तुम्हारा नहीं ।” और कहो, आजकल काम कैसा चल रहा है ?”

रात और प्रभात

इसी तरह बात करते-करते बड़े भैया मकान के भीतर चलने लगे । रामप्रसाद भी पीछे-पीछे लग गया । आँगन में घूप फैली हुई थी । बीच में चारपाई पड़ी हुई थी । थोड़े अन्तर से एक चौकी रखी थी जिस पर पीतल का एक मुरादाबादी लोटा भी था । नहाने का गरम पानी बाल्टी में था और साबुन और तौलिया स्टूल पर ।

रामप्रसाद चारपाई पर बैठता हुआ बोला—“काम तो आजकल बहुत अच्छा चल रहा है बड़े भैया ।”

“अच्छा, मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई ।” बड़े भैया कथन के साथ अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए कदाचित् अनुभव कर रहे थे कि अभी एक दिन और टल सकता है ।

“इरादा तो कुछ ऐसा है कि इस साल मकान भी बनवाना शुरू कर दिया जाय । मैंने ही बल्कि जीजा को सुझाया था । राजी तो हो गये हैं । मगर.....।”

आश्चर्य के साथ बड़े भैया ने कह दिया—“अच्छा ! खयाल तो बुरा नहीं है । मगर मकान बनवाने लायक रकम तो होनी चाहिये । फिर निकट आकर धीरे से पूछने लगे—“वैसे क्या कुछ रुपया इकट्ठा हो गया है ?”

रामप्रसाद के आने का पता लगते ही मंभले आड़ में खड़े होकर बातें सुन रहे थे । इस समय प्रसंग आते ही सामने आकर बोले—“भैया, रुपया इतना अधिक तो है नहीं कि इसी समय काम छोड़ा जा सके । ऐसा ही है, तो अगले साल देखा जायेगा ।”

मंभले ने इस समय अपने मुँह से स्पष्ट यह नहीं कहा कि अगर थोड़ा-बहुत सहारा आपका मिल जाये, तो इस समय भी काम शुरू हो सकता है ।

गोविन्द को उन्होंने गोद से उतार खेलने छोड़ दिया था । इसलिये

वह पुनः बाहर जाने के लिये अपनी नन्हीं-सी तर्जनी उठाकर चलने का संकेत कर रहा था ।

मंभले चुपचाप पुनः द्वार पर जा पहुँचे । यह दशा देखकर रामप्रसाद सोचने लगा—“जीजा बहुत चूक गये । कितना उत्तम अवसर हाथ से निकल गया । राम, राम !”

इतने में बड़े भैया बोल उठे—“चलो, तुम्हारे सहयोग से मंभले अपने पैरों खड़े हो गये, मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई ।”

रामप्रसाद ने इस अवसर से लाभ उठाते हुये कह दिया—“मगर बड़े भैया, दूकान में पूरी तरह मेरी चलती कहाँ है । आप जानते हैं, दूकान-दारी में सोना और तुलसी मुँह में डालकर काम नहीं चलता । मगर जीजा फूँक-फूँककर आगे कदम रखते हैं । आपसे क्या छिपा है ? कभी-कभी हमारे पास ऐसे लोग भी आ जाते हैं, जिनको माल बेचने की जल्दी रहती है । ऐसे मौके पर तत्काल सौदा तै करके माल गला डालने की जरूरत होती है । पर जीजा का हाल यह है कि ज़रा-सा भी संदेह होते ही ग्राहक को उल्टा-सीधा उत्तर देकर विदा कर देते हैं । भला इस तरह कहीं काम चल सकता है ।”

बड़े भैया ने चौकी पर बैठकर नहाना शुरू किया ही था कि रामप्रसाद की बात सुनकर एकदम आवेश से आक्रांत हो गये । घृणा से उनका मुँह विवर्ण हो उठा । पानी से भरे लोटे को उठाने वाला हाथ उठते-उठते बैठ गया । तत्काल भीड़ें चढ़ गयीं, मुख रुद्र गम्भीर हो उठा । बोले—“देखो रामप्रसाद, आज यह बात तुमने मुझसे कही सो कही, पर आगे कभी इस तरह की बात जबान पर मत लाना । तुम मंभले के साले और मंभले तुम्हारे बहनोई । मानता हूँ । पर आखिर मंभले मेरे भाई ही हैं । हालांकि उसूल के हिसाब से मैं बीच में हस्तक्षेप करना पसन्द नहीं करता । मगर साफ़े-पाती की दूकानदारी तो दूर की बात है,

१२

रात और प्रभात

ऐसे व्यक्ति के साथ एक क्षण को भी बैठना मुझको तो कदापि स्वीकार न होता । समझे कि नहीं ?”

बड़े भैया का इतना कहना था कि रामप्रसाद तिलमिला उठा । पराभूत-सा अनुभवकर प्रतिक्रिया में विवर्ण होकर कुछ ध्यंग्य के साथ बोला—“समझ गया बड़े भैया, बहुत अच्छी तरह समझ गया ।” और कथन के अनन्तर उनके सामने से हटकर दूसरी ओर चल दिया ।

२

गणेशप्रसाद और महेशप्रसाद दो भाई थे। एक दिन साथ बैठकर दोनों ने यह तय किया कि धनोपार्जन के लिये अब हम लोगों को बाहर निकल-पैठकर देखना चाहिये और जहाँ जो अवसर मिले, उसे ग्रहण करके आगे बढ़ जाना चाहिये।

गणेशप्रसाद को जहाँ नौकरी मिली वहाँ अनाज का काम होता था। खत्तियाँ भरी जाती थीं और माल बाहर आता-जाता रहता था।

चाणक्य ने कहा है—“पुरुषार्थ में दरिद्रता नहीं होती।”

वे सबेरे दस-ग्यारह बजे चना और लइया चबाकर रहते और रात को जब आठ बजे छुट्टी पाते, तब गोदाम के अन्दर ऊपर एक कोठरी में अपने हाथ से खाना बनाते-खाते और चुपचाप पड़कर सो रहते। खाना भी ऐसा बनाते कि अगर दाल बना ली है तो फिर साग नहीं बनाया। साग बनाया है तो फिर चावल नहीं। और चावल बनाया है तो फिर रोटी भी नहीं बनाई।

विवाह हो गया था। लेकिन पत्नी को साथ कभी नहीं रखा। वंश बढ़ा था। वर्ष भर में दो एक विवाह और यज्ञोपवीत होते ही रहते थे।

रात और प्रभात

निमन्त्रण आता तो अवश्य जाते । और जब जाते, तो दस-पाँच दिन वहाँ रह भी लेते ।

घर आने का एक अवसर होली और दिवाली में भी मिलता था । इन दोनों त्योहारों पर भी चार-छः दिन और कभी-कभी दस दिन तक भी घर बने रहते थे ।

होते करते, जब उनकी अवस्था चालीस वर्ष की हुई, तब एक बार ऐसा अवसर मिला कि सेठ सूरजमल को लाही में बहुत घाटा आ गया । परिस्थिति यहाँ तक बिगड़ गई कि टाट उलटने की नौबत आ गई । नौकरी करते-करते गणेशप्रसाद के पास एक निधि एकत्र हो गयी थी । वह निधि कितनी थी ? सेठ सूरजमल इस बात को नहीं जानते थे । लेकिन इतना जानते थे कि मुनीम जी थोड़ा-बहुत रुपया रखते जरूर हैं ।

एक दिन सबेरा होते ही सेठ सूरजमल ने गणेशप्रसाद को बुलाकर कहा—“मुनीम जी, हमारी एक बात मानोगे ?”

गणेश बाबू ने उत्तर दिया—“सेठ जी, आज यह नई बात कैसी ? मुझे आपके यहाँ नौकरी करते हुये अठारह वर्ष हो गये । कभी कोई ऐसा दिन आया कि मैंने आपकी बात न मानी हो ?”

सेठ जी गद्दी पर बैठे थे और गद्दी थोड़ी ऊँचाई पर थी ।

गणेशप्रसाद के बदन पर केवल बनियाइन थी । धोती ऊपर से डाले हुए थे । सेठ जी ने कह दिया—“यहाँ मेरे पास आ जाओ ।”

गणेशप्रसाद टाट के किनारे पैर पोंछते हुए सेठ जी के पास जाकर गद्दी पर बैठ गये ।

सेठ जी बोले—“मैंने जो बात अभी तुमसे पूछी उसमें एक भेद है । आज तक मैं इस दूकान का मालिक था । तुम नौकर की हैसियत से काम करते थे । लेकिन अब मैं तुमको इस दूकान का मालिक बनाना चाहता हूँ ।”

गणेशप्रसाद हँस पड़े और बोले—“आप तो सपने फी-सी बातें कर रहे हैं।” मन में आया—अवश्य कोई विशेष बात होने वाली है। ऐसा तो नहीं है कि सेठ जी कोई जाल रच रहे हों।

सेठ जी बोले—“हँसो मत। मैं तुम्हारी भलाई की ही बात सोचूँगा।” ऐसे सपने की बात, जिसका पूरा होना तुम्हारे हाथ में है।”

“यानी ?”

“यानी मैं तुमको सांभोदार बनाना चाहता हूँ। इस समय तुम्हारे पास कितना रुपया तैयार है ?”

सशंकित गणेशप्रसाद ने सिर खुजलाते हुए कहा—“ऐसा कुछ ज्यादा तो नहीं है; पन्द्रह-सोलह हजार होगा।”

“यह सब रुपया तो तुम मुझको आज निकाल कर दे ही दो। थोड़ा-बहुत मैं इधर-उधर से कर लूँगा। तो गद्दी स्थिर बनी रहेगी। नहीं तो दिवालिया होना पड़ेगा मुनीम जी।”

गणेशप्रसाद यकायक विचार में पड़ गये। फिर भी अनायास उनके मुँह से निकल गया—“जी।”

सेठ जी ने अपना कथन जारी रखते हुए कहा—“ऐसे समय मुझको एक बात और कहनी है। व्यापार में सबसे बड़ी चीज होती है ‘साख’। और भगवान की दया से अभी तक वह सुरक्षित बनी है। लेकिन आज का दिन ऐसा है कि नष्ट हो सकती है। अगर तुमको हमारी सहायता करना स्वीकार हो, तो आज से तुम इस दूकान के मालिक बन सकते हो। हम लिखा-पढ़ी करने को तैयार हैं।”

गणेशप्रसाद इस दूकान में केवल मुनीम ही न थे। सेठ जी के परामर्शदाता भी थे। और परामर्शदाता की पद-मर्यादा के सम्बन्ध में उनका एक कीर्तिमान था। जब कभी उन्होंने सेठ जी की अनुपस्थिति में कोई सौदा किया, तब निकट भविष्य के बाजार-भाव की दृष्टि से वह अति लाभदायक सिद्ध हुआ।।

रात और प्रभात

इसका भी कारण था। गणेशप्रसाद अध्ययनशील व्यक्ति तो न थे। किन्तु व्यवहारिक बहुत थे। पुस्तकें तो वे न पढ़ते, किन्तु समाचार-पत्र कभी-कभी उठाकर देख लिया करते थे। इसमें उनका मनोरंजन तो होता ही था कभी-कभी कोई पाठ भी मिल जाता था।

उस समय ऐसे ही एक पाठ का उन्हें स्मरण हो आया। वह था—
“अपनी बुद्धि का परिचय देने के लिये अगर कभी तुम्हें कोई आसाधारण अवसर मिले तो हिचकिचाओ मत; क्योंकि सफल वही लोग हुए हैं जिन्होंने अवसर पर अदम्य साहस का परिचय दिया है।”

गणेशप्रसाद ने उत्तर दिया—“बहुत अच्छा सेठ जी। मैं ग्यारह बजे तक सब रुपया आपको दे दूंगा।”

भगवान का स्मरणकर सेठ जी बोले—“मैं आपका यह उपकार जीवन भर न भूलूंगा। और इसके बदले मैं आज से रुपये में चार आने की साभेदारी आपकी केवल लाभ पर रहेगी; हानि से आपका कोई सम्बन्ध न होगा।”

गणेशप्रसाद मुसकरा उठे। कदाचित् यह सोचने लगे कि सेठ जी की व्यापारिक बुद्धि विपत्ति में भी यथावत् स्थिर है।

महेशप्रसाद बड़े भाई थे। पढ़ने-लिखने में बड़े प्रतिभाशाली और स्वभाव के तेजस्वी। प्रायः लोगों से पटती कम थी। वचन के धनी थे और हाथ सदा खुला रखते थे। वे जब लाहौर आये, तो महीने दो महीने तक यों ही बाज़ार में सेठों से मिलते-जुलते और परिचय स्थापित करते रहे। उनके परिचितों में एक थे श्रीगोपाल जी; दूर के नाते में उनके मामा लगते थे। वे किराना बाज़ार में एक प्रसिद्ध दलाल थे। महेशप्रसाद इस बात से बहुत प्रभावित थे कि इस घन्घे में हर्षा लभे न फटकरी—

रंग चोखा आवे । गाँठ की एक पाई भी खर्च नहीं होती और लाभ नित्य दस-पाँच रुपये का ।

लेकिन महेश बाबू जिस पत्तल में खाते, उसमें छेद न करते । दलाली का घन्धा तो उनको अत्रश्य रुचिकर प्रतीत हुआ, किन्तु उन्होंने उसी क्षेत्र में प्रवेश करना उचित नहीं समझा जिसमें उनके मामा श्रीगोप ल थे । दलाली उन्होंने की, किन्तु 'किराना-बाजार' की नहीं, 'मिलस्टोर' की । परिणाम यह हुआ कि पाँच वर्षों में ही वे इस योग्य हो गये कि स्वयं एक 'मिलस्टोर' की दूकान के 'स्वामी' बन गये । कालान्तर में उन्होंने कृष्णनगर में अपना एक मकान भी बनवा लिया । अब वे एक सुखी-सम्पन्न व्यक्ति की भाँति जीवन व्यतीत करने लगे ।

इस प्रकार गणेशप्रसाद पूर्वी बंगाल में एक सेठ बन गये और महेशप्रसाद पश्चिमी पंजाब में । कालान्तर में गणेशप्रसाद ने भी ढाका में एक मकान खरीद लिया । दोनों भाई रहते तो परस्पर विपरीत दिशाओं में थे किन्तु पारिवारिक जीवन उनका सम्मिलित था । प्रायः ऐसे भी अवसर आते, जब महेश बाबू के परिवार की स्त्रियाँ और बच्चे ढाका जाते रहते और गणेश बाबू के बाल-गोपाल 'लाहौर' । एक-दूसरे के लिये उपहार-भेंट के आदान-प्रदान में कोई कमी न रखते । पथ एक था— फुटपाथ 'दो' । पर जिस समय सौख्य में यह परिवार अपने चरम उत्कर्ष पर जा पहुँचा उसी सध्य यकायक देश का विभाजन हो गया । परिणाम यह हुआ कि दोनों परिवार अपनी-अपनी जान बचाकर भाग खड़े हुये ।

उन्नाव जिले के अन्तर्गत एक गाँव है—'ऊँचगाँव' वहीं उनका अपना घर था और जब वे भागकर आये तो अपने उसी पुराने घर में आ बसे । वैसे तो वह घर अब तक ढह गया होता । क्योंकि उसका आधे से अधिक भाग कच्चा था । लेकिन महेश बाबू प्रतिवर्ष उसकी मरम्मत में डेढ़-दो सौ रुपये लगा दिया करते थे । कहते हैं जिस समय महेश बाबू भागकर इस घर में आये थे उस समय उन्हें सबसे बड़ी प्रसन्नता इस बात की ही हुई

रात और प्रभात

थी कि यह बड़ा अच्छा हुआ जो यह घर सुरक्षित बना रहा। एक क्षण की दूरदर्शिता तीन पीढ़ी के इतिहास की निर्मात्री होती है।

उसी मास गणेशप्रसाद भी सपरिवार वहाँ आ गये।

दोनों भाई अपने साथ जो दो-तीन हजार रुपये ले आये वे जब वर्ष भर में ही हाथ से निकल गये और स्थिति इतनी दुर्बल हो उठी कि स्त्रियों के स्वर्णभरण घर से बाहर जाने की घड़ियाँ निकट आ गईं तब उन बच्चों की भी आँखें खुल गयीं जो अब तक लाड-प्यार में पले थे। जिनके घरों में भाड़ू नौकर लगाते थे, साग-पात नौकर लाते थे, चक्की से गेहूँ नौकर पिसवाते थे। प्यास लगने पर गिलास भर पानी के लिये नौकर दौड़ते थे, जब ये बच्चे अपने-अपने विद्यालयों में पढ़ने जाते, तब निजी घोड़े-गाड़ियाँ मकान के द्वार पर आ खड़ी होती थीं। अब वही बच्चे यह अनुभव करने के लिये विवश थे कि यदि आज संध्या समय तक हमने दो रुपये भी पैदा न किये, तो हमारे छोटे भाई-बहनों के लिये दूध कहाँ से आयेगा। यद्यपि गाँव में उनकी मान-मर्यादा कम न थी। अगर वे चाहते, तो कोई भी सामग्री उन्हें गाँव से उधार मिल सकती थी। महीना पूरा होने पर हिसाब करने के आश्वासन पर उन्हें दूध तो मिल ही सकता था। लेकिन वह युग था नवीन स्वाधीन भारत का, जब गाँव में भी गेहूँ डेढ़ सेर ही मिलता था। घर के लोग बिना किसी धन्धे के कहीं भी उधारखाता खोलने के अभ्यासी न थे।

इसी परिवार के सबसे बड़े लड़के का नाम था—‘रामप्रसाद !’

रामप्रसाद जब ऐसी परिस्थिति में कानपुर आया तो कई दिन तक वह यह सोच ही न सका कि उसे अब करना क्या चाहिये। उसने नौकरी करने की बहुत चेष्टा की, पर बहुत भटकने पर भी उसे नौकरी मिल न

रात और प्रभात

सकी। दिन भर वह इधर-उधर मारा-मारा फिरता और संध्या समय एक आड़त की दूकान पर सो रहता। कभी कहीं चाय पीने को मिल जाती, कभी वह भी नहीं। प्रायः ऐसा होता कि जब उसे भूख लगी रहती तब साथ उठने-बैठने वाले लोगों में से कोई चाय के लिये भी न पूछता। किन्तु जब वह लाई-चना चबाकर ऊपर से लोटा भर पानी चढ़ा लेता, तभी उसका कोई परिचित सामने आकर बोल उठता—‘आओ चलें ‘नीलकमल’ रेस्तोरां चलकर चाय पियें।’

रामप्रसाद उसकी इस बात को सुनकर उसके मुख की ओर ताककर रह जाता। ऐसे समय वह उसके साथ चल तो देता, पर कहता कुछ न था।

उसके गाँव का एक साथी एक इन्टर कॉलेज में क्लर्क था। उसका नाम था—‘शंकरलाल।’ एक दिन जब वह शंकरलाल के साथ एक कपड़े की दूकान पर गया तो उसने देखा कि शंकरलाल अपनी नव-पत्नी के लिये जो ‘इकलाई धोती’ खरीद रहा है, उसमें मूल्य तो छपा हुआ है—‘आठ रुपये नौ आने, किन्तु उसके दाम उसे देने पड़ रहे हैं—‘पन्द्रह रुपये।’

रामप्रसाद को यह देखकर आश्चर्य हुआ। इसका भी एक कारण था। शंकरलाल ने बतलाया था—“इस दूकान पर यह जो ठिगने क्रद का लड़का बैठता है वह आधे का साभीदार है और मेरा भतीजा है। हम लोग अलग जरूर हो गये हैं मगर हैं तो सगे ही। नहीं तो तुम जानते हो, ऐसे महीन कपड़े और सुन्दर किनारी की इकलाई साड़ी आजकल मिलती कहाँ हैं ?”

रामप्रसाद ने इस अवसर पर उसके मुँह की ओर देखते हुये तुरन्त कह दिया था—“हाँ, मिलती तो नहीं हैं।”

बिजयादशमी का दिन था। रामप्रसाद ने सोचा, घर ही हो आवे। लेकिन इतने पैसे पास न थे कि वह घर जाने के लिये टिकट भी के

रात और प्रभात

सकता । शंकरलाल ने कह दिया —“चलो, घर चलते हो ?”

रामप्रसाद ने उत्तर दिया—“जाना तो चाहता था । मगर...”

“मगर क्या ?”

“कुछ नहीं—यों ही । बात यह है कि जब कोई धन्धा ही नहीं है तो घर जाकर भी क्या करूँगा ।”

शंकरलाल बोला—“लेकिन मुझे तो जाना ही पड़ेगा ।”

रामप्रसाद ने कहा—“तो तुम हो आओ । बाबू जी मिलें तो कह देना, कोई खास बात नहीं है, सब ठीक है ।”

पर शंकर ज्योंही चलने लगा, तो रामप्रसाद भी उसके साथ हो लिया । ज्योंही कलेक्टरगंज का घण्टाघर निकट आया, रामप्रसाद बोला—
“यह जो तुम्हारे भतीजे साहब हैं, क्या नाम है इनका ?”

शंकरलाल ने उत्तर दिया—“प्रकाशचन्द्र ! क्यों, कुछ काम है क्या उनसे तुम्हारा ?”

“कुछ नहीं, यों ही पूछा ।”

शंकरलाल स्टेशन की ओर बढ़ गया और रामप्रसाद प्रकाशचन्द्र की दूकान की ओर ।

रामप्रसाद ने देखा कि प्रकाशचन्द्र दूकान में बैठे हुये तम्बाकू मल रहे हैं, यद्यपि दूकान का दरवाजा आधा ही खुला है ।

उसने दूकान में भाँकते हुये हाथ जोड़कर कह दिया—“नमस्ते ।”

प्रकाशचन्द्र ने पूछा—“कहिये ! आप ही तो कल चाचा जी के साथ आये थे न ।”

रामप्रसाद ने उत्तर दिया—“जी ।”

प्रकाशचन्द्र ने तम्बाकू आगे करते हुये कह दिया—“लीजिये ।”

रामप्रसाद ने मुस्कराते हुए कह दिया—“धन्यवाद ! आप ही पाइये । मैं तो खाता नहीं ।”

“और कहिये, हमारे लायक कोई सेवा ?”

रात और प्रभात

रामप्रसाद ने कह दिया—“क्या आप मुझे किसी काम में नहीं लगा सकते ?”

प्रकाशचन्द्र ने उत्तर दिया—“आजकल काम मिलना बड़ा कठिन है ।”

मुँह में भरी हुई तम्बाकू के कारण स्वर कुछ विकृत हो गया था । फिर भी रामप्रसाद ने आशय समझ लिया ।

यह ऐसी स्थिति थी कि वह सोचने लगा—‘अब बात कैसे आगे बढ़ाई जाय ।’ जब कोई उपाय न सूझ पड़ा, तो उसने बिना सोचे-समझे कह दिया—“आप को मालूम ही है कि शंकरलाल मेरे मित्र हैं; बल्कि आजकल तो मैं उनके घर ठहरा भी हूँ । इसलिए आपको मेरे साथ भेद की बात करने में भी संकोच तो न होना चाहिए ।”

प्रकाशचन्द्र मुस्कराने लगा । बोला—“मगर बात क्या है ? आप साफ़-साफ़ कहिए न; संकोच आप स्वयं कर रहे हैं और लांछन मुझ पर लगा रहे हैं ।”

रामप्रसाद ने उत्तर दिया—“लांछन भला मैं क्या आप पर लगाऊँगा । मैंने इसलिए पहले ही आपसे कह दिया, जिससे आपको मेरे ऊपर अविश्वास करने का अवसर न रहे ।”

“मगर पहले मालूम भी तो हो कि आप चाहते क्या हैं ? विश्वास की बात तो बाद को उठेगी ।”

रामप्रसाद ने थहाते-थहाते कहा—“मैं यह जानना चाहता था कि यह जो इकलाई धोती आपने शंकरलाल को दी थी, उसमें दाम तो छपे हुये थे—‘आठ रुपया नौ आना’ मगर लिये आपने ‘पन्द्रह रुपये’ ।”

प्रकाशचन्द्र ने उत्तर दिया—“आप वैसी ही इकलाई धोती पन्द्रह, रुपये एक आनेमें ला दीजिये—दो आने में दीजिये । अरे बाबू साहब, ज़माना देखिए ज़माना । चौदह रुपये दस आने की तो मेरी खरीद है । ऐसा माल बाज़ार में है कहाँ ? आपको कुछ पता भी है ?”

रात और प्रभात

रामप्रसाद बोला—“अच्छा, अगर इस तरह की इकलाइयाँ मैं आपसे इकट्ठी खरीदूँ, तब तो भाव में कुछ कमी करेंगे।”

प्रकाशचन्द्र ने उत्तर दिया—“आप समझे नहीं; माल बाजार में है ही नहीं ! ये इकलाइयाँ आपको मिल ही कैसे सकती हैं ?”

रामप्रसाद ने निराश होकर उत्तर दिया—“नहीं मिल सकती है, तब तो फिर बात ही नहीं उठती। अच्छा चलता हूँ।”

कथन के साथ वह चल दिया।

दूकान के पश्चिम ओर एक पान वाला बैठता था। रामप्रसाद अभी वहाँ तक पहुँचा ही होगा कि प्रकाशचन्द्र ने पुकारा—“बाबू साहब ! सुनिये-सुनिये, जरा सुनते जाइये।”

रामप्रसाद प्रकाशचन्द्र की दूकान के पास जा पहुँचा।

प्रकाशचन्द्र ने पूछा—“आप चाचा जी के गाँव में रहते हैं ?”

“जी।”

“आप क्या काम करते हैं ? मतलब यह है कि आपके यहाँ क्या काम होता है ?”

“काम होता था। अब कुछ नहीं होता। लाहौर में कुछ कार-बार था। अब कुछ नहीं रह गया। देश के बंटवारे के समय हम लोग भाग कर आये हैं।”

“आपके पिता जी का क्या नाम है ?”

“मेहेशप्रसाद।”

“ओ : मेहेशप्रसाद। वे तो बहुत बड़े आदमी हैं। चलिए ऊपर चलें।”

दूकान में केवल दो तख्ते खुले हुए थे। प्रकाशचन्द्र ने उन्हें यथा-विधि लगाकर ताला बन्द कर दिया। दोनों सीढ़ियों से चढ़ते चले गये। प्रकाशचन्द्र ने ऊपर जाकर अपना कमरा खोल दिया।

एक तख्त पर गद्दा और उसके ऊपर सफ़ेद चादर पर एक मसनद और कई गाव तकिये। सामने कलैण्डर, जिसमें बापू का चित्र; द्वार पर

पैरों को साफ करने वाला रेशेदार रंगीन टाट । दायें ओर एक बीड़ी वाले व्यापारी का कलैण्डर, जिसमें एक रूपसी का रंगीन चित्र । एक छोटा टेबिल, जिस पर कई बहियाँ रक्खी हुई थीं । सामने बापू के चित्र के दायें-बायें सिन्दूरी अक्षरों में लिखा हुआ था—श्री कुबेराय नमः, श्री गणेशाय नमः । बायें ओर लकड़ी का एक पीढ़ा, जिस पर रामायण और गीता की पुस्तकें । उसी पर एक धूपदानी और धूप-बत्तियों की डिब्बी ।

प्रकाशचन्द्र ने अन्दर जाते ही धूप-बत्ती की डिब्बी से एक सींक धूपदानी में लगा दी और दियासलाई निकालकर सुगन्धित वातावरण की व्यवस्था कर दी ।

रामप्रसाद बैठा ही था कि प्रकाशचन्द्र ने कह दिया—“आप तो बिलकुल अपने घर के ही निकले । उस समय दूकान पर आये भी, तो बिना परिचय के ही चले गये । मैं आपकी कुछ सेवा ही न कर सका । आज भी बिना कुछ बताये चले जा रहे थे । मुझसे बड़ी अशिष्टता हुई । क्षमा कीजियेगा ।”

रामप्रसाद ने उत्तर दिया—“नहीं-नहीं, इसमें अशिष्टता की क्या बात है ?”

“बात यह है कि”, प्रकाशचन्द्र ने सिर खुजलाते हुए कहा—“परिचय तो आपसे था नहीं । इसलिये मैंने केवल व्यवहार की बात की थी । पर अब बात दूसरी हो गयी । दूकान आपकी है । जिस माल की जरूरत हो, निःसंकोच कहिए । दूकान में न भी होगा, तो आपके लिए कहीं-न-कहीं से व्यवस्था करवा दूंगा । ज़रा-सा यही ध्यान रखना पड़ता है कि समय बड़ा टेढ़ा है । आपको पता ही होगा, पुलिस ने एक जगह पाँच सौ गाँठें पकड़ीं । उस समय पहले गिरफ्तारी हुई, फिर जमानत और मुचलके लिये गये । और अभी कल जो फ़ैसला हुआ है, उसके अनुसार सब छोड़ दिये गये । कहा जाता है कि माल ज़ब्त हो गया है; लेकिन मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि कुछ दिनों बाद माल भी वापस दे दिया जायगा ।

रात और प्रभात

मरण तो हम लोगों का है। छपे हुए दाम से कुछ भी बढ़ाकर माल बेचने लगें, तो झट घेर लिये जायँ। इसीलिये जाने-समझे आदमी को छोड़कर और किसी से बात नहीं करते बनती।” कथन के बाद बायीं ओर लगे हुये पर्दे के उस पार जाकर बोले—“अरे गंगा, दो प्याली चाय तो जल्दी से बनवा ला बेटा। और पान भी, अच्छा !”

रामप्रसाद ने बैठे-ही-बैठे तनिक जोर से कह दिया—“इसकी क्या जरूरत थी?”

प्रकाशचन्द्र लौटकर यथास्थान बैठते हुये बोले—“अरे चाय-वाय से क्या होता है? खाना खाइये किसी दिन हमारे साथ। आपको मालूम नहीं। मेरे पिता से आपके पिता जी की बड़ी घनिष्टता थी। बात यह है कि आप तो यहाँ रहे नहीं। इसीलिये आपसे मिलना न हो सका। हाँ, आप कभी भी आ जाइये। माल आपको बहुत कफ़ायत के साथ मिलेगा। साय ही स्टेशन तक पहुँचवा देने की ज़िम्मेदारी मेरी रहेगी।

रामप्रसाद बोला—“अब यह बताइये—और बताइये बिल्कुल ठीक-ही-ठीक—कि अगर उसी नम्बर की दस इकलाई मैं खरीदूँ तो आप मुझे कितने में दीजियेगा? मगर चाहिये आज, अभी।”

बाबू प्रकाशचन्द्र भीतर ही भीतर अत्यधिक प्रसन्न हो रहे थे; लेकिन ऊपर से पहले आश्चर्य और फिर चिन्ता का भाव व्यक्त करते हुए बोले—“आज ! आज तो नहीं मिल सकतीं। कल मिल ही जायेंगी, यह भी मैं निश्चित नहीं कह सकता। बहुत प्रयत्न करूँगा, तब परसों मिल पायेंगी। रह गयी बात दर की, सो जिस भाव मिलेंगी आपको बता दूँगा। जो उचित हो, मुझे दे दीजियेगा। घर की तो बात है।”

“देखिए प्रकाश बाबू, व्यापार में घर की बात तो केवल कहने भर के लिये होती है। बुरा न मानियेगा। मैं चाहता हूँ कि आप दर बता दें, तो मैं रुपये का प्रबन्ध कर के आपको दे जाऊँ।”

“रुपया आपको पहले देना पड़ेगा। माल मिलने में भी एकाध दिन

रात और प्रभात

लग जायगा । रह गयी बात दर की, सो चौदह रुपये दस आने प्रति इकलाई होगी ।”

इतने में चाय आ गयी ।

प्याले में चम्मच से चीनी घोलते हुये रामप्रसाद ने कहा—“दाम बहुत कस के लगा रहे हैं आप । ऐसा कीजिये कि हमको भी चार पैसे मिल जाय और हमारा-आपका सम्बन्ध भी चालू हो जाय ।”

प्रकाशचन्द्र ने पहली चुस्की लेते हुये उत्तर दिया—“मैंने तो ठीक ही-ठीक आपको बतला दिया है । आपको दो-तीन रुपये हर इकलाई पर सहज ही बच जायेंगे । भगवान भूठ न बुलवाये । मैंने बिलकुल इसी नम्बर की इकलाई उन्नीस और बीस रुपये में भी बेची है ।”

“बेची होगी । मैं आपको बारह रुपये से अधिक नहीं दे सकूंगा । विचार कर लीजिये । यदि ठीक हो, तो अभी रुपये दे जाऊँ । माल कल ही दे दीजियेगा ।”

प्रकाशचन्द्र ने जमुहाई लेते हुए उत्तर दिया—“इतने में कैसे हो सकता है ? चौदह रुपये दस आने में तो मुझे मिलती है ।”

“सोच लीजिये । आपके यहाँ से थोड़ा-बहुत काम मेरा चलने लगेगा, तो आपको लाभ ही होगा । इतना खाइये कि लाभ का क्रम-भंग न हो और गाड़ी चलती जाये । इतना अधिक न खाइये कि बधिया बैठ जाये ।”

प्रकाशचन्द्र ने उत्तर दिया—“अधिक से अधिक मैं इतना कर सकता हूँ कि अथन्नी रुपया कमीशन जो मुझे मिलता है, वह भी मैं आप को दे दूँ । इस हिसाब से लगभग सवा चौदह रुपये में धोती आपको पड़ेगी । आपको स्वीकार हो तो लीजिये, नहीं रहने दीजिये ।”

रामप्रसाद जब चाय पी चुका, तो प्रकाशचन्द्र ने पान की तश्तरी उसके सामने कर दी और कह दिया—“लीजिये, पान खाइये ।”

रात और प्रभात

रामप्रसाद ने एक पान लेते हुये कह दिया—“साढ़े बारह रुपये में देंगे ?”

प्रकाशचन्द्र ने फीकी मुस्कराहट के साथ उत्तर दिया—“आप तो मज़ाक करते हैं ।”

रामप्रसाद ने कह दिया—“तो फिर जाने दीजिये । मैं तो सोचता था कि आपसे परिचय हो गया है, तो आप ही के पास मेरा पैसा-बेला सदा पहुँचता रहे । काम तो मेरा होगा ही, कहीं-न-कहीं, मगर मेरे सहयोग का लाभ आपको न मिलेगा ?”

प्रकाशचन्द्र ने कहा—“पिछले महीने के कोटे का थोड़ा-सा माल शायद बच रहा है । देखूंगा, उसमें इस मेल का माल निकलता है कि नहीं, हो सकता है निकल ही आये । मगर वह माल भी चौदह रुपये से कम में न पड़ेगा ।”

रामप्रसाद उठकर खड़ा हो गया । बोला—“अब एक बात मैं भी कह दूँ । मैं तेरह रुपये तक दे सकता हूँ, इसके आगे एक पाई नहीं !”

प्रकाशचन्द्र हँस पड़ा । बोला—“यह सौदा अब मुझे आपसे करना ही पड़ेगा, चाहे मुझे घाटा ही हो । आपको मालूम नहीं, मैं बहुत जिद्दी क्रिस्म का आदमी हूँ । जो बात एक बार तय कर लेता हूँ, उससे फिर टस-से-मस नहीं होता ।...बैठिये-बैठिये साहब !”

“बैठकर क्या करूँगा ?” सौदा तो होने से रहा ।”

“अच्छा आप साढ़े तेरह रुपये दे दीजियेगा, बस ?”

कहते-कहते उसने रामप्रसाद की ठुड्डी में हाथ लगा दिया ।

बोला—

“मैं इस जनेऊ की क्रसम खाकर कहता हूँ, मुझे विशेष कुछ भी नहीं मिल रहा है । दाल में नमक के बराबर भी नहीं ।”

रात और प्रभात

अब रामप्रसाद ने कह दिया—“अच्छी बात है। सौदा पक्का रहा। मैं अभी रुपया लेकर आता हूँ।”

तश्तरी में भीगे कपड़े में लपेटे हुए पानों की तह खोलते हुये, प्रकाशचन्द्र बोला—“लीजिये, इसी बात पर एक पान और खाते जाइये। उस समय एक ही लिया था।”

रामप्रसाद ने पान लेते हुये नमस्ते की। फिर वह धीरे-धीरे सीढ़ियाँ उतरता हुआ नीचे आ गया।

दूसरे दिन शंकरलाल भी लौट आया। रामप्रसाद ने बतलाया—“ये प्रकाशचन्द्र तुम्हारे भतीजे होते हैं न?”

“होते नहीं, हैं। क्यों क्या हुआ?”

“तुमको जो धोती उन्होंने पन्द्रह रुपये में दी थी, उसी नंबर की दस इकलाइयाँ मैंने साढ़े तेरह के भाव से खरीदी हैं।”

“दस इकलाइयाँ खरीद लीं!”

“हाँ, दस।”

“रुपया कहाँ से मार दिया?”

“दो रुपये सैंकड़े ब्याज पर एक जगह से मुझको लेना पड़ा।”

“किस जगह से लिया?”

“तुमको मालूम नहीं, चलते समय मैं माँ की जंजीर लेता आया था; वही मैंने गिरवी रख दी। किसी तरह कोई भी धन्धा चले तो एक बार।”

“हाँ, यह तो तुम ठीक कहते हो।”

“मुझे अफसोस इसी बात का है कि यह प्रकाशचन्द्र तुम्हारा भतीजा होकर तुम्हारे ही साथ ठगी करता है। क्या जमाना है!!”

“मगर मुझे इसमें कोई आश्चर्य नहीं हुआ। जीवन एक व्यापार है। और व्यापार की गाड़ी के एक पहिये का नाम है—‘छल’ और दूसरे का—‘कपट’। तुमको मालूम नहीं, मुझे अपने कॉलेज में जो बेतन मिलता

रात और प्रभात

है, उसमें रसीद मुझे एक सौ पचीस की देनी पड़ती है, जब कि रुपये मुझे सौ ही मिलते हैं। बाकी पचीस रुपये मैनेजर और प्रिंसिपल साहब मिल कर प्रेम से उड़ाते-खाते हैं। जानते हो यह क्या है—इसी का नाम है—सम्यता की देन ! हा-हा-हा-हा-हा !”

शंकरलाल हँस रहा था, लेकिन रामप्रसाद गम्भीर हो गया।

आजकल बड़े भैया के साढ़ू गोपालचन्द्र राय आये हुये हैं। आँखों पर 'डार्क' चश्मा, चश्मे के बीच का ब्रिज सुनहला, जिसके नीचे दोनों ओर नाक को दबाने वाली क्लिप 'प्लैस्टिक' की। चश्मे के लेंस हलके आसमानी रंग के हैं। कमीज़ का कालर हमेशा कड़ा रहता है। कण्ठ का बटन खुला हुआ। बात करते-करते नाक सिकोड़ लेने की आदत है।

रायसाहब ने कमरे के अन्दर प्रवेश किया ही था कि बड़े भैया बोले—“आइये रायसाहब ! बैठिये, बैठिये। कहिये, भोजन कर आये ?”

रायसाहब ने उत्तर दिया—“बड़े भैया, जब आपके साथ भोजन करने का अवसर नहीं मिलता, तब तृप्ति योजन भर दूर जान पड़ती है। आपको मालूम ही है, जब तक कोई वार्ता-विनोदी व्यक्ति साथ न बैठे, तब तक पेट भले ही भर जाय, तबीयत नहीं भरती। यद्यपि हमारे पूज्य पिता जी इस मामले में इस मत के थे कि भोजन के समय कभी आपस में बातें नहीं करनी चाहियें। परन्तु हम उनकी कोख में ऐसे प्रतापी चिरञ्जीव पैदा हुए कि इस विषय में उनके सोलह आना विरोधी सिद्ध हुए। बड़े भैया, आपको मालूम होना चाहिये कि एक दिन भी मैंने

रात और प्रभात

उनके साथ बैठकर खाना नहीं खाया ।”

बड़े भैया ने आश्चर्य के भाव को दबाकर कुछ वितृष्णा के साथ कह दिया—“राय साहब, आप अनावश्यक बातें बहुत करते हैं । हमारा आदर्श होना चाहिये बात कम, काम ज्यादा ।”

रायसाहब पहले छुप रह गये । जब जी न माना, तो बोले—“अच्छा, अब बतलाइये कि यह लड़का जो मैंने आपको बतलाया, कैसा रहेगा ? पिता को-आपरेटिव सोसाइटी में इन्स्पेक्टर । वेतन डेढ़ सौ । चार लड़के । सबसे बड़ा यह है । एम० ए० फ़र्स्ट क्लास । देहली के एक अंग्रेजी दैनिक के सम्पादकीय विभाग में लगा है । वेतन अभी तीन सौ है; पर काम कितने गौरव का है ! और वेतन भी बढ़ता तो रहेगा ही ।”

बड़े भैया बोले—“लड़का वैसे बौद्धिक जान पड़ता है । अब यही ज़रा-सा देखना है कि उसकी सम्यक्ता कैसी है ? जीवन में सत्य कहाँ तक प्रबल है । मानवता की रक्षा में त्याग कहाँ तक कर सकता है ? सदा प्रसन्न रहता है या सोंठ ऐसा मुँह बनाये हुये ? स्वार्थ-साधन करने में चतुर है, तो निर्भय और ईमानदार कितना है ?”

“वाह !” हँसते-हँसते रायसाहब बोले—“निर्भय और ईमानदार !” और इसके बाद हँसी का एक ठहाका ।—“खूब, भाई खूब !”

बड़े भैया बोले—“हँसे क्यों रायसाहब ?”

रायसाहब ने सिगरेट का एक कश लेते हुए कह दिया—“हँसा इसलिये कि देखता हूँ, शिष्य आप अपने खूब बना रहे हैं !”

“देखो भाई, विमला को मैंने जिस तरह तैयार किया है, उसका ध्यान तो रखना ही पड़ेगा । मान लो एक सम्पादक के साथ तुमने उसका विवाह कर दिया और कुछ दिनों के बाद परिणाम यह हुआ कि जैसे वे एक आफिस में कुर्सी पर विराजमान हैं, वैसे विमला भी दूसरी कुर्सी पर जा बैठी और संयोग की बात कि स्वामी की कुर्सी का मुँह अगर

उत्तर की ओर है, तो विमला की कुर्सी का मुँह हुआ उनकी पीठ के पीछे, दक्षिण की ओर, तो...?"

रायसाहब बोले—“तो इसके लिये मैं क्या करूँगा ? संयोग पर किसी का वश नहीं चलता । दोनों में विचारों का मतभेद यदि इस सीमा तक उत्पन्न हो जाय, तो हम उसके बीच में पड़ने वाले कौन होते हैं ।”

बड़े भैया पलंग पर तहाये हुये बिस्तर के सहारे बैठे थे । अब उठकर सीधे बैठ गये और बोले—“यहाँ प्रश्न यह उठता है कि इसकी ज़िम्मेदारी से अलग रहकर क्या हम सुख और शान्ति की नींद ले सकेंगे ?”

रायसाहब सोच-विचार में पड़ गये । बोले—“देखिये बड़े भैया; अगर ऐसे स्वामी के साथ विमला की नहीं पटती है, तो इसकी ज़िम्मेदारी पहले विमला पर है, उसके बाद उसके स्वामी पर । हमारा काम है एक रास्ता बता देना । उनका काम है, उसी पर चलना । लेकिन थोड़ी दूर चलने के बाद यदि वही मार्ग अपने दो रास्ते बना ले और दोनों रास्ते अलग-अलग अपने ढंग पर चल पड़ें, तो हमारे पास इस आशीर्वाद के सिवा और चारा ही क्या है कि जहाँ रहो, खुश रहो ।”

बड़े भैया बोले—“यहीं तुम ग़लती पर हो, विवाह का जन्म इसलिये हुआ है कि दो रास्ते अगर हों भी, तो वे उसी भाँति अपने-अपने हाथ मिलाकर एक हो जाँय, जैसे दो साथी हाथ में हाथ लेकर एक ही रास्ते पर चलते हैं । हमारा प्रयत्न यह होना चाहिए कि दोनों में से कोई एक, कम-से-कम ऐसे व्यक्तित्व का तो हो, जो दूसरे को प्रभावित कर सके ! एक ओर प्रभाव हो, तो दूसरी ओर समर्पण । लेकिन अगर दो प्रभाव परस्पर मिलकर किसी अभाव की घोषणा कर बैठें, तो विवाह मिलन नहीं, विच्छेद का द्योतक होगा । इसलिये मैंने कहा था कि एक ओर अगर रूप हो, तो दूसरी ओर गुण । एक ओर विवेक हो, तो दूसरी ओर भावना । कहीं-न-कहीं कोई एक केन्द्र-बिन्दु तो होना चाहिए, जहाँ दोनों मिल सकें ।”

रात और प्रभात

“इस सम्बन्ध में पहले से कुछ भी कह सकना बड़ा कठिन है। मैं तो सोचता हूँ कि इतनी दूर तक जाने की आवश्यकता ही क्या है !” नाक पर बल देते हुए रायसाहब ने कह दिया।

बड़े भैया ने हड़ता से उत्तर दिया—“अगर आपको मेरा विचार मान्य न हो, तो आप जो चाहिये, कीजिये; लड़की आपकी है।”

रायसाहब सोचने लगे कि बड़े भैया को यह सम्बन्ध स्वीकार नहीं है। लेकिन यह तो बड़ी चिन्ता की बात है कि परिचय होने से पहले ही उन्होंने उसके विषय में एक धारणा बना ली है।

थोड़ी देर में सन्ध्या हो गयी। रायसाहब बोले—“चलिये बड़े भैया, हम लोग इस समय ज़रा टहल आयें।”

बड़े भैया ने कहा—“आठ बजे के बाद चल सकता हूँ। इस समय नहीं।”

“क्यों ? इस समय आपको कौन-सा ऐसा आवश्यक कार्य.....।”

बड़े भैया मुसकराने लगे। बोले—“आवश्यक कार्य....? तुम्हारा बचपना नहीं गया रायसाहब ! तुम सोचते हो कि सन्ध्या का समय केवल मटरगश्ती के लिए होता है। मगर तुम्हारे ध्यान में यह बात क्यों नहीं आयी कि वह भगवान की उपासना का भी तो होता है। सारे पश्चिमी गगन-मण्डल को अपनी अस्त-व्यस्त लालिमा से समाच्छन्न कर देने वाले भगवान भुवन-भास्कर जब विदा लेते हैं, तब कभी तुमसे कुछ कहते नहीं ? महासागर के तट पर, क्षितिज की आँखों में, अँगुली के स्पर्श से अंजन लगाती हुई सूर्य की झबती हुई लाली, श्याम-वसना रजनी का वायु में उड़ता हुआ अंचल, अपने-अपने नीड़ की ओर द्रुत गति से उड़ते हुए शुक-पक्षियों का कलरव, कक्ष-कक्ष के भीतर प्रवेश करने वाले निविड़ अन्धकार के युगल चरण, तुम्हारे मन में कोई भाव नहीं उत्पन्न करते ?”

राय साहब हँस पड़े। बोले—“बड़े भैया, आप कविता की भाषा का

प्रयोग करते समय यह बिलकुल ही भूल जाते हैं कि जीवन कविता नहीं है ।”

“तो जीवन कोई स्वर वृत्ति भी नहीं है । आपने जिस लड़के के बारे में अभी बातें कीं, मैं उसकी दिनचर्या जानना चाहता हूँ । मैं जानना चाहता हूँ कि उस लड़के का रहन-सहन कैसा है ? कैसे उसके मित्र हैं, जिनके साथ उसकी बैठक-उठक है ? वह जिस कमरे में रहता है, उसकी सजावट का सांस्कृतिक रूप क्या है ? कैसी पुस्तकें वह पढ़ता है । आपने कभी जानने की चेष्टा की है ? नहीं की न ? अब तुम्हीं सोचो—विमला के जीवन के साथ तुम अन्याय नहीं कर रहे हो ?”

रायसाहब बोले—“बड़े भैया, बचपना तो मुझमें है ही; मगर कुछ इस किस्म का है जिसको मैं प्यार करता हूँ । आपने अन्याय की बात उठाई है । अच्छा तो अब एक बात बताइये कि भगवान राम ने जब सीता को त्याग दिया, तब उन्होंने उनके साथ अन्याय नहीं किया ? बालि को मारने में जिस कपटाचार का उन्होंने परिचय दिया, उसमें अन्याय नहीं था ? भगवान बुद्ध ने यशोधरा का त्याग जिस समय किया, उस समय उन्होंने उसके नारीत्व के साथ छल करके अन्याय नहीं किया ? एक भावुकता में आकर लक्ष्मण ने चौदह वर्ष के लिए उर्मिला का जीवन विरह-विदग्ध बनाकर उसके साथ अन्याय नहीं किया ? भवानी पार्वती, सीता जी का रूप धारण कर भगवान राम के पास जाती हैं । मैं जानना चाहता हूँ कि मनोवैज्ञानिक दृष्टि से आप भवानी के इस प्रयोग को क्या कहेंगे ? द्रौपदी पाँच पतियों के साथ पत्नीत्व का सम्बन्ध रखती हैं । महाभारत-कालीन सम्यता की दृष्टि से आपको इसमें लज्जा की बात नहीं जान पड़ती ? और यदि आप कहें कि उस काल की उच्च सम्यता इस प्रसङ्ग को पचा सकती थी, तो पुनः इतिहास में ऐसा कोई उदाहरण देखने में क्यों नहीं आया ? मैं तो यही सोचता हूँ कि इतना पढ़-लिख जाने पर विमला चाहे जिस रास्ते पर जाय, हमारे ऊपर उसका कोई

रात और प्रभात

प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए। आँखें खोल कर देखिये, तो प्रत्येक व्यक्ति का जीवन के प्रति अपना एक विशेष दृष्टिकोण होता है। आप अपने ही दृष्टिकोण से सम्पूर्ण विश्व के मानवीय धर्म को क्यों देखते हैं ?”

“बस-बस रायसाहब, यहीं तुम गलती पर हो। एक तो अपवाद को तुम साधारण धर्म मान बैठे हो। अन्य गुणों को न देखकर, देखते हो उन महापुरुषों का विवश पक्ष। दूसरे, तुम यह भी भूल रहे हो कि चरित्र-सम्बन्धी यह अतिशय स्वेच्छाचार हमारे राष्ट्रीय जीवन का कितना ह्रास करता जा रहा है। तुम जिसको स्वतन्त्रता समझते हो, वही आज हमारी सबसे बड़ी दुर्बलता है। तुम कुछ भी कहो, कुछ भी समझो; मैं तो अपनी बात जानता हूँ। निर्माण की इन घड़ियों में, अपने इस पावन देश में, असत्य, अनाचार और पाखंड के प्रसार को मैं किसी प्रकार सहन नहीं कर सकता।”

कथन के साथ बड़े भैया, वस्त्र-परिवर्तन कर, खड़ाऊँ पहने हुये, उपासना-गृह की ओर जा रहे थे। उनके पग-चालन से जो स्वर उठ रहे थे, रायसाहब उन्हें सुनकर, चकित हो, मन-ही-मन कहने लगे— ‘अनास्थावाद के इस युग में आस्थाओं के प्रति इस निर्भय दृढ़ता का कोई जवाब नहीं है। और बस, यहीं मेरा मस्तक नत है।’

उपासना-भवन से लौटकर बड़े भैया अभी कमरे के भीतर पड़ी कुरसी पर बैठे ही थे कि रायसाहब बोले—“बड़े भैया, मैंने विचार कर देखा, आप कहते तो ठीक ही हैं; किन्तु मुझे मुख्य आपत्ति इस बात पर है कि इस प्रकार हम व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की उपेक्षा करते हैं। मेरी ही इच्छा के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति चलने के लिये विवश हो, मैं इसे अनुचित समझता हूँ। मुख्य वस्तु है जीवन-सौख्य और सम्पन्नता। और जहाँ तक भौतिक सुखों का सम्बन्ध है, लड़का अगर पूर्ण समर्थ सिद्ध होता है, तो विमला को भला उससे क्या कष्ट मिल सकता है ? मेरी समझ में नहीं आता कि मतभेद होने का इसमें अवसर कहाँ है ?”

रात और प्रभात

इतने में बड़े भैया द्वार की ओर देखते हुये स्वाभाविक मुसकराहट के साथ बोल उठे—“आ रे गोविन्द ।” और उन्होंने भट उसे गोद में ले लिया ।

गोविन्द कीर्ति की दी हुई छड़ी अब भी हाथ में लिये हुये था । उसे देखकर बड़े भैया को अपनी अनुकृति का स्मरण हो आया । फिर ध्यान आते ही रायसाहब के कयन का उत्तर देते हुये वे बोले—“देखो रायबाबू, मेरे ख्याल से अब तुम मेरी राय मत लो, जैसा चाहो, वैसा करो ।” फिर थोड़ी देर रुककर आप ही आप कहने लगे—“लेकिन अगर मेरी बात का तुम्हारे लिये कोई महत्व हो, तो इस विषय को विमला पर छोड़ दो । हमारे यहाँ अक्सर लोग आते ही रहते हैं । आपस के सम्पर्कों से यह सिद्ध होते कितनी देर लगती है कि विमला के मन में क्या है । सबसे पहले हमें यह देखना है कि वह इस पत्रकार को स्वीकार करने को तत्पर भी है, या नहीं ।”

रायसाहब ने उत्तर दिया—“बस-बस, यही उचित रहेगा । मैं आज एक पत्र लिखे देता हूँ । आठ-दस दिन में उत्तर आ जायेगा । तब तक यहाँ पत्र-प्रदर्शनी भी प्रारम्भ हो रही है । उसी को देखने का निमन्त्रण देकर बुलाऊँगा ।”

बड़े भैया बोल उठे—“अच्छी बात है, अच्छी बात है । बुला लो ।” फिर मन ही मन कहने लगे—‘कीर्ति को भी दो-चार दिन के लिये यहाँ ठहरने को कह दूँगा ।’

दिन के बारह बज रहे थे ।

बड़ी बहू कभी ऐसे समय स्वामी के उपासना-गृह में उपस्थित न होती थी पर आज देर अधिक हो गयी थी । भूल के मारे व्याकुल होकर वह केवल यह देखने के लिये वहाँ जा पहुँची कि आखिर बात क्या है, जो

३६

रात और प्रभात

इतनी देर हो रही है। उनका कण्ठ भरा हुआ और आँखों से भर-भर आँसू बह रहे थे। यह दृश्य देखकर वे स्तम्भित हो उठीं। ऐसे समय बोलना उचित न समझकर वे कपाटों की ओट में जड़वत् खड़ी रहीं। ज्योंही बड़े भैया उपासना-गृह से बाहर आये, त्योंही वे सामने आकर बोलीं—
“आज तुमको यह हो क्या गया जो तुम्हारी आँखों से आँसू भरने लगे ?”

प्रश्न सुनकर बड़े भैया हँस पड़े। बोले—“कुछ नहीं, यों ही, चिन्ता की कोई बात नहीं है।”

पर बड़ी बहू किसी तरह न मानीं। बोलीं—“तो मेरी देह पर हाथ रखकर एक बार कह दो, कोई बात नहीं है।”

अब बड़े भैया विवश हो उठे। बोले—“यों ही एक भावना मन में पैदा हो गयी।”

“भावना कैसी—कैसी भावना ? साफ-साफ कहो न ? छिपाते क्यों हो ?” बड़ी बहू ने पूछा।

तब अन्दर चलते-चलते बड़े भैया रुक गये। बोले—बाल-बच्चे हमारे भी हुये थे। चुन्नी तो डेढ़ बरस का होकर मर गया था। उस समय इतना पैसा भी पास न था। उसे दिखलाने के लिये डाक्टर को घर पर बुलाने की स्थिति ही न थी। पर पोस्ट-ऑफिस ऐसा विभाग है, जहाँ निवृत्ति वेतन मिलता है। किसी की भी सिफारिश कर देने पर एक महीने का पेशगी वेतन कहीं नहीं गया था। हमारे कुछ साथी ऐसा करते भी थे—तो क्या इसका मतलब यह है कि मेरा चुन्नी मुझे कम प्यारा था ?”

स्वामी की ओर आँखें फाड़-फाड़कर देखती हुई बड़ी बहू बोलीं—
“क्या मतलब ? मैं समझी नहीं ? क्या मंभले ने तुम से कुछ कहा है ?”

रसोई की ओर जाते-जाते पुनः थोड़ा रुककर बड़े भैया बोले—
“नहीं-नहीं। ऐसी कोई बात नहीं हुई। फिर थोड़ा रुक गये। फिर बोल उठे—“बात सिर्फ इतनी है कि मंभले का पैसा हम लोगों के काम का नहीं है। मुझे कुछ ऐसा जाल पड़ता है, जैसे यह रामप्रसाद व्यवसाय के

रात और प्रभात

बहाने पाप कमा रहा है। और यह बड़े दुःख की बात है कि मंभले के साथ उसका साभेदारी का नाता है।”

बस, बड़े भैया का इतना कहना था कि बड़ी बहू को जैसे सांप ने काट खाया हो। मन ही मन उन्होंने ऐसा कुछ निश्चित कर लिया, जिसको वे अपने स्वामी से भी प्रकट न कर सकीं।

मंभले और बड़े भैया एक साथ भोजन प्रायः कम करते थे। कई बातें थीं। मंभले भैया अवस्था में बड़े भैया से दस वर्ष छोटे थे। जब मंभले का विवाह हुआ था, तब उसकी अवस्था केवल अठारह वर्ष की थी। विवाह का सारा खर्च उन्होंने अपने ऊपर ले लिया था। माना कि बहेज में काफी सामान मिला था। नकद रुपया चाहे उतना न मिला हो, पर घर-गृहस्थी के लिये उपयोगी वस्तुओं में किसी तरह की कमी न रह गई थी। अलमारी, पलंग, शाल, साड़ियाँ, रेडियो-सेट, घड़ी, सोने के आभूषण क्या नहीं मिला था।

‘मन ही मन मंभले सोच रहे थे, किन्तु इससे क्या ? मेरी पत्नी के लिये कई मूल्यवान आभूषण उन्होंने अपने ‘सेविंगफंड’ से रुपया लेकर बनवाये थे। आगत रिश्तेदारों का स्वागत उन्होंने दिल खोलकर किया था।.....उन्होंने कभी यह सोचा ही नहीं कि मेरा जो पैसा इस समय खर्च हो रहा है, वह फिर वापस तो मिलने से रहा। आज के युग में ऐसे भाई रह कितने गये हैं। आज तो पिता भी हाथ साधकर खर्च करना सीख गये हैं।’

इसके बाद मंभले जब एफ० ए० के प्रथम वर्ष में फेल हो गये तब फिर संकट उनके सामने आ गया। यह ऐसा समय था, जब कोई भी दूसरा भाई यही कह देता—‘तुमसे जहाँ तक पढ़ते बना, मैंने पढ़ा दिया। ब्याह की तुम्हारी उमर थी, मैंने वह भी कर दिया। तुम्हारी गृहस्थी बस

३५

रात और प्रभात

गई। अब जिम्मेदारी तुम्हारे ऊपर आ गई। तुम्हें अधिकार है, जो चाहो करो। उधर अंग्रेजी में फेल हो जाने के कारण मंभले भैया का उत्साह भी जाता रहा था। साथ के लोग उसी कालेज में द्वितीय वर्ष में बैठें और वह प्रथम वर्ष में एड्रियां रगड़े, यह उससे न हो सका।

माँ तब जीवित थीं। मंभले को रोता देखकर बोल उठीं—“तो रोता क्यों है? मैं बड़े से कहकर कोई दूकान करवा दूंगी। व्यापार में लक्ष्मी का वास होता है। बैठो राज करेगा, राज। पढ़कर पास भी हो जाता, तो क्या मैं तुम्हें नौकरी करने देती। बड़े ने ही कीन ऐसा ज्यादा पढ़ा था। पर उसकी तकदीर बड़ी थी। दसवीं पास करते ही नौकरी मिल गई। साठ पर भरती हुआ था, अब चार सौ पा रहा है। दो सौ तो उसे बेंशन मिलेगी।”

बड़े भैया ने भी कोई आपत्ति न की। ढाई हजार रुपये ढाकखाने से निकाले गये। इतने ही रामप्रसाद ने लगाये। इस तरह सराफे की दूकान खुल गयी। बस, यही वह भार था जिससे मंभले सदा नत-शिर रहते थे। वे यह बात कभी भूल ही न सकते थे कि अगर उस समय बड़े भैया रुपये न देते, तो मैं कर ही क्या सकता था। जीवन भर रुपये-पैसे के लिये उनका मुख ही तो ताकता रहता। आज मेरे पास जो चार सौसे दिखाई देते हैं, यह उन्हीं की कृपा का फल तो है।

बड़े भैया खाना खाने बैठे, तो उन्होंने पुकारा—“धरी विमला।”

“आई मौसिया।” उत्तर के साथ विमला उनके सामने आ पहुँची। बड़े भैया बोले—“ये मंभले कहाँ गये?”

“स्नान कर रहे हैं मौसिया।”

“कह दे—मैं बैठो हूँ उसकी प्रतीक्षा में।”

बस, बड़े भैया का इतना कहना था कि रसोई में बैठी मंभली बहुत सन्न रह गई।

—जल्द कोई खास बात है। कहीं इनसे गलती तो नहीं हो गई?

कहीं ऐसा तो नहीं है कि कल से ही हमें अलग हो जाना है—तो क्या आज बड़े भैया को थाली परोसने के बाद फिर कभी……? अगर ऐसा कुछ होने वाला भी होगा, तो मैं तो यही कहूँगी कि उन्हें कर दे अलग, पर मैं न होऊँगी। मैं तो अब उन्हीं की सरन में पड़ी रहूँगी।

बड़ी बहू तुरन्त पास दौड़ गयीं। चौंके के अन्दर तो न आयीं, पर पीछे थोड़ा अन्तर देकर खड़ी हो गईं और उनके कान के निकट हो बोलीं—“मंभले से कुछ कहने की जरूरत नहीं है; भला।”

हँसते-हँसते बड़े भैया बोले—“जाओ, अपना काम करो। मैं इतना समझता हूँ।”

फिर मन ही मन कहने लगे—‘स्वतः उसी के पेट में बात न पचेगी। खुद वही मीका निकालकर उससे कह डालेगी और मुझको सलाह देने चली है।’

गोविन्द उपद्रव मचा रहा था। बड़े भैया को जो रसोई में बैठा हुआ देखा, तो बड़ी बहू की गोद से उतरने का आग्रह करते-करते अन्त में उतर ही पड़ा। बड़ी बहू ने चेष्टा बहुत की कि कम से कम कोट तो उतार ही दे। पर वह कब मानने लगा!

तभी बड़े भैया बोले—“पहने रहने दो, पहने रहने दो। बाल-गोपाल ठहरे। इनके साथ कहीं चौका-चूल्हा और छूत-छात का निर्वाह सम्भव है!”

अब कुछ धैर्य बंधा मंभली बहू को।

—तो वैसे कोई बात नहीं है। शायद कुछ बात करनी है। हो सकता है दूकानदारी के सम्बन्ध में हो। आज भैया भी तो आये थे। पर घर के अन्दर क्यों नहीं आये? वैसे ऐसा कभी होता तो न था। हूँ, जल्दी में होंगे।

—कहीं बाहर तो नहीं जाना चाहते हैं?

—मगर ऐसे जाड़े-पारे में बाहर जाने ही क्यों लगे?

रात और प्रभात

—कुछ भी हो । सनाह-बात तो किसी विषय में होगी ही । जीजी ने कनछेदन के विषय में कहा था कल । दम-बीस सेर नुकती के लड्डू बँटवाना चाहते होंगे । सम्भव है, कीर्तन अथवा अखंड रामायण-पाठ की बात सोची हो ।

—मगर घर-गृहस्थी के प्रबन्ध के विषय में वे कभी किसीसे राय लेते हैं कि आज ही लेंगे ?

एक निःश्वास लेने लगी—“हे भगवान्, कुशल करो । पनकी कटरा के महावीर बाबा, मैं तुम्हारा पाँच सेर का भोग चढ़ाऊँगी, अगर कोई भगड़े वाली बात न पैदा हो ।”

गोविन्द को दाल चटाते हुये बड़े भैया जब चम्मच उसके मुँह से लगाने लगते, तब साथ ही साथ अपना मुँह भी खोल देते ।

विमला ने जो मंभले से कहा—“मंभले मौसिया, तुमको बड़े मौमिया बुला रहे हैं । तुम्हारी प्रतीक्षा में वे खाना नहीं शुरू कर रहे हैं ।”

“क्या कहा ?” आश्चर्य के साथ मंभले ने पूछा ।

“यही कि तुम्हें बड़े मौसिया बुला रहे हैं ; चौके में बैठे हैं । जल्दी जाओ ।”

“मुझको !”

“हाँ, हाँ, तुमको—तुम्हीं को । और कैसे कहूँ मंभले मौसिया जी । आप तो जान-बूझकर मुझे तंग करने लगते हैं !”

जी में ऐसा कुछ धक्का से हो उठा कि हृदय धड़कने लगा मंभले का ।

—जान पड़ता है यह रामप्रसाद कुछ गड़बड़ कर गया है । बात करने की तमीज तो है नहीं उसे । हाँक दी होगी कोई लन्तरानी—तौलिये से बदन सुखाते हुये—कोई बात होगी भी, तो मैं साफ डकार खाऊँगा ? मैं कुछ नहीं जानता ।

—बेवकूफ हो तुम । उनके आगे तुमसे झूठ बोला भी जायगा !

—हाँ, यह भी ठीक है ।

—तो फिर झूठ बोलकर क्यों अपना मूल्य घटाओगे लाला ध्यानचन्द ?

—हाँ, यह भी ठीक है ।

—तो फिर साफ-साफ कह देना पड़ेगा । इसी में कुशल है अब ! क्योंकि जहाँ एक झूठ बोले कि उसकी रक्षा में पचास बातें और जड़नी पड़ेंगी । फिर उन्हीं को सत्य प्रमाणित करने में फँस जाओगे लाला जी ।

—हाँ, यह भी ठीक कही ।

दाल चाटते हुये गोविन्द ने कहीं देख लिया कि अम्मा तो अन्दर विराजमान हैं । तब अंगुली से उधर जाने का संकेत कर बोला—
“अम्मा !”

बड़े भैया ने उसे अन्दर बढ़ाते हुये कह दिया—“जरा लेना इसको ।”

मंझली ने अवगुण्ठन आगे खिसखाते हुये हाथ बढ़ाकर गोविन्द को गोद में ले लिया ।

बड़े भैया के पास पीढ़े पर बैठते ही मंझले भैया बोल उठे—“बड़े भैया, तुम हमारे साथ अब बहुत ज्यादाती करने लगे हो ।”

मंझली बहू के मन में आया—‘अब कुशल नहीं है ।’

आश्चर्य के साथ बड़े भैया ने उत्तर दिया—“ज्यादती और मैं ? सो भी तुम्हारे साथ ? तुम्हारा दिमाग तो नहीं खराब हो गया ?”

फिर कथन के साथ मन ही मन कहने लगे—“आज यह कुछ बदला हुआ-सा मुझे देख पड़ रहा है ।”

“यह ज्यादाती नहीं है कि मेरी प्रतीक्षा में इतनी देर खे बैठे रहे ? यह ज्यादाती नहीं है कि नाई जो नहीं आया, तो मुझसे यह कहते ब बना कि मालिश कर देना जरा गांठ में ? और यह ज्यादाती नहीं को

रात और प्रभात

और है क्या कि आज खाना खाने में भी इतनी देर कर दी। बुढ़ापे का शरीर ठहरा। ज़रा-सी बात में तबियत खराब होते देर लगती है।”

“सब ढंग रामप्रसाद के सीख लिये हैं इसने। मैं कुछ कह न पाऊँ, इसी की यह भूमिका है।” बड़े भैया ने समझ लिया।

थालियाँ सामने आ गई थीं। मंझली बहू रसोई के अन्दर थीं, बड़ी बहू रसोई के बाहर। एक तीन-चौथाई उठी हुई दीवार के उस पार छोटी बहू और विमला भी खड़ी हुई थीं। एक-एक शब्द पर सबके कान लगे हुये थे। देखें मंझले भैया अब क्या कहते हैं। देखें बड़े भैया अब क्या उत्तर देते हैं !

कोर तोड़ते और भगवान का भोग लगाते-लगाते यकायक हँस पड़े बड़े भैया। बोले—“बस मंझले, तुम्हारे इसी गुण के कारण मेरे हाथ बँध जाते हैं। वरना मन में बात तो एक ऐसी आ गई कि……। खरं, अब उसके कहने में कोई रस नहीं रह गया।”

उन्हें इतना भी ध्यान नहीं रहा कि जिस थाली से वह गोविन्द को दाल खिला चुके हैं, उसी से पुनः भगवान का भोग कैसे लगेगा !

विमला सोच रही थी—“मौसिया के बात करने का ढंग कितना सधा हुआ है।”

छोटी बहू के मन में आ रहा था—‘बड़े भैया के मन में कहीं कुछ दुःख ज़रूर है, जिसे वे प्रकट नहीं कर रहे हैं।’ बड़ी बहू मुंह बना रही थीं। उनका अभिप्राय था कि जब कोई बात खोलकर कहनी ही नहीं है, तो इतना भी कहने की क्या ज़रूरत है।

गोविन्द गोद में आकर माँ का दूधपान कर रहा था और वही माँ (अर्थात् मंझली बहू) निःश्वास ले रही थी—“हाय राम ! जाने क्या होनहार है।”

मंझले ने कोर नहीं तोड़ा। बड़े भैया के चरणों पर सिर रख दिया। उसे उठाया तब, जब बड़े भैया ने हाथ लगाकर स्वयं उठाया।

रात और प्रभात

गम्भीरता से बड़े भैया बोले—“खाना खाओ, खाना खाओ, बात ऐसी कोई खास न थी और परिणाम अगर उसका कुछ खास होने भी लगता, तो अन्त में मैं उसे सम्हाल ही लेता। और अब.....अब उसे क्या कहूँ !”

मंभली मन-ही-मन कह उठी—और देवता कैसे होते हैं।

“कहने की बात नहीं, बड़े भैया, हुकुम देने की बात है। मैं अगर किन्तु-परन्तु भी करूँ, तो तुम उस दिन से मेरा मुँह न देखना; बस ?”

मंभली बहू की मुखाकृति पर उल्लास आ गया—‘चलो सम्हाल तो लिया इन्होंने। महावीर बाबा, तुम्हारी ही कृपा का फल है।’

बड़ी बहू बोल उठी—“अच्छा अब खाना तो खाओ। थाली कबकी परसी हुई रक्खी है।”

मंभले खाने में साथ तो देने लगे; पर अन्तर्मन की चिन्ता अब तक न गई थी। क्षणभर बाद फिर बोल उठे—“अब तुम मुझे हुकुम दे ही डालो बड़े भैया। नहीं तो मुझसे खाना न खाया जायगा।”

“मैं यही कहने वाला था मंभले कि व्यापार बड़ी मर्यादा की वस्तु होती है। थोड़ा लाभ उठाते रहो, तो सदा दूकान में सोना बरसता रहेगा।”

“इसमें क्या शक है।”

“मगर कहीं यह बात तुम्हारे मन में आने लगी कि हम आज ही लक्षपती बन जायें—आज ही हमारी कोठियाँ खड़ी हो जायें—आज ही हमारे पैर जमीन पर न पड़ें। या तो वे गाड़ी, सोफ़ा और कुरसियों के झुनगुले गद्दों पर हों, या पलंग पर—तो एक तो ऐसा होगा नहीं। और अगर होगा भी, तो वह स्थायी न होगा। आज हो भी गया तो, कल मिट जायगा।”

“मिट तो जायगा ही। पर...पर क्या ऐसी कोई बात तुम्हारे कान में आई है, जिसका अभिप्राय यह हो कि मैं ऐसा सोचने लगा हूँ।”

रात और प्रभात

बस मंझले का इतना कहना था कि गरज उठे बड़े भैया—“आई न होती, तो मैं यह प्रश्न ही क्यों उठाता ? मुझे कुत्ते ने काटा था । मुझसे यह छिपा है कि तुम्हारी सामेदारी ऐसे व्यक्ति के साथ है, जिसकी साख बाजार में दमड़ी बराबर नहीं है ? उसका इतिहास कहता है कि जिसकी रकम उसके हाथ लगी, वह फिर वापस नहीं हुई । उसकी बातचीत का बंग इतना बनावटी मालूम होता है कि उसकी वाणी के माध्यम से आदमी नहीं, कोई शैतान बोल रहा है । कई बार मेरे इन्हीं कानों ने सुना है । उस दिन गोपी बतला रहा था—कि ठग-विद्या में बाजार भर में उसका जोड़ नहीं है । स्वयं उसी की बातों से पता चलता है कि वह चोरी का माल आधे-तिहाई दामों में खरीद-खरीदकर तुरन्त गलवा डालने का धन्धा करता है । अब मैं तुमसे पूछता हूँ कि इस व्यवसाय में पड़कर आखिर तुम लोग चाहते क्या हो ?”

बड़े भैया का इतना कहना था कि घर भर में सन्नाटा छा गया । गोविन्द रो पड़ा । उसे थपथपाती हुई मन-ही-मन मंझली बहू कहने लगीं—‘मैं तो जानती थी, कि ये रामू भैया बिना गड़बड़ किये न मारेंगे । दूकान करनी थी तब मेरे पैरों में सिर रखकर कितना गिड़गिड़ाता था । पर अब कभी मेरे गोविन्द के लिये कुछ लाता है ? माना कि कपड़े नहीं ला सकते, तो मिठाई भी नहीं ला सकते ? दो पैसे का कोई मामूली खिलौना भी नहीं ला सकते थे ? कितने आदमी रोज मरते रहते हैं; पर इस कसाई को बुखार भी नहीं आता । हाय राम ! अब क्या होगा ?’

बड़े भैया फिर बोल उठे—“तुमको मालूम होना चाहिये कि सबसे बड़ी चीज हमारे लिये मनुष्यता है । किसी प्रलोभन में पड़कर उच्च मनुष्यता की हत्या हम कभी न होने देंगे ।”

विमला सोचने लगी—‘वाह ! क्या बात कही है मौसिया ने । ऐसा ज्ञान पड़ता है जैसे उनके कण्ठ में बापू की वाणी उतर आई हो ।’

छोटी बहू के मन में आया—‘बड़प्पन की परीक्षा सदा संकट काल में होती है ।’

थोड़ा रुककर बड़े भैया ने फिर कहा—“तुमने मुझसे आज्ञा करने की विनती की है । तो कान खोलकर सुन लो । व्यापार करना है तो ईमानदारी और सचाई के साथ करो । नहीं तो बन्द कर दो दूकान ! मैं ऐसा धन नहीं चाहता जिससे हमारी मर्यादा में बट्टा लगे । हम बाल-बच्चों वाले आदमी हैं । ऐसा कोई भी काम हमें कभी न करना चाहिये, जिससे हमारा धर्म-कर्म, और हमारी आचार-निष्ठा के नष्ट होने की सम्भावना हो ।”

बड़ी बहू तत्काल बोल उठीं—“बस हो गया, हो गया, इतना बहुत है । परसी थाली के आगे तुम इतना क्रोध कर रहे हो ! हाय राम ! न जाने क्या होनहार है ।”

किन्तु बड़े भैया का बोल आगे ही बढ़ता गया—यद्यपि उसकी तीव्रता अपेक्षाकृत मन्द होने लगी थी । वे कह रहे थे—“तुम्हें मालूम होना चाहिये कि भगवान राम ने लक्ष्मण से कहा था—‘अधर्म से इन्द्र पद भी मिले, तो भी मैं उसकी इच्छा नहीं रखता ।’ मुझे सबसे ज्यादा दुःख तो इसी बात का है कि यह तुम्हारी समझ में क्यों नहीं आया कि कि जिन घरों में चोरी करके, या डाका डालकर, लूट-पाट मचाकर—इतना—इस प्रकार का—माल आता है—जो रुपये के आठ-दस-माने पर जल्दी-जल्दी बिक जाता है—उनके परिवार, घर-गृहस्थ और बाल-बच्चे कितने रोते-कलपते होंगे । उनकी दुखी-रोती-व्याकुल आत्माएँ उस समय क्या कहती होंगी ? मैं पूछता हूँ, तुम्हारे इस कार्य से क्या ऐसे बदमाशों को प्रोत्साहन नहीं मिलता ? मेरा बश चले, तो मैं तो ऐसे लोगों को जेल भिजवाकर दम लूँ । तुमने मुझे समझा क्या है ।”

इतने में गोविन्द और जोर से रो पड़ा । साथ ही अन्दर बैठी हुई भंकली बहू की आँखों में आँसू आ गये ।

रात और प्रभात

बड़ी बहू पुनः बोल उठीं—“अरे मैं कहती हूँ, बस हो गया न ? अब खाना खाओगे या रात ही बढ़ाते जाओगे । परसी हुई थाली सामने रहने पर भला कोई इस तरह लड़ता-भगड़ता है ?”

किन्तु बड़े भैया और भी उग्र हो उठे । बोले—“बको मत । हट जाओ मेरे सामने से ।”

अब मकान भर में कोलाहल-सा मच गया, कई स्वर एक साथ गूँज रहे थे । तोड़ा हुआ कौर बड़े भैया के हाथ से छूट पड़ा । उनका सारा बदन थर-थर कांपने लगा ।

मिनट भर स्थिर रहकर वे फिर बोल उठे—“कितना अच्छा होता कि ऐसा अधर्म और पापाचार देखने से पूर्व सदा के लिये मेरी आँखें बन्द हो गयी होतीं । ...अच्छा ठहरो । मैं जानना चाहता हूँ, रामप्रसाद ने जो रकम इस घन्वे में लगाई है, वह उसके पास आई कहीं से ? ...कहीं गयी विमला ? विमला !!”

“आयी मौसिया” पहले विमला का स्वर सुनाई पड़ा, फिर बहू स्वयं सामने आ पहुँची ।

बड़े भैया बोले—“जरा पूछना तो मंझली से कि वह रकम उसे मिली कहीं से थी ?”

विमला पैर धोकर जो अन्दर गयी, तो मंझली बहू ने पहले तो रोते हुए गोविन्द को उसके द्वारा बाहर भेज दिया, फिर अभ्रु-गमित स्वर में धीरे-धीरे उत्तर दिया—“वे जो कुछ सोच रहे हैं, वह रत्ती-रत्ती सही है । वह रकम उन्हें बड़ी भाभी से मिली थी जो गणेश चाचा की बड़ी बहू हैं । उन्होंने उनसे कर्ज के रूप में ली थी ।” विमला ने मंझली बहू का यह कथन स्पष्ट रूप से दोहरा दिया ।

अब बड़े भैया बोले—“अच्छा, अब यह भी पूछो कि इस रकम के लाभ का कोई भी भाग, या मूल में से ही थोड़ा-बहुत उसने उसे वापस किया ?”

“हाय ! कहाँ किया ! सत्यानासी ने तब भी कुछ नहीं दिया, जब सरोजिनी बिटिया का विवाह हो रहा था !” मंझरी बहू ने सत्य ही सत्य कह दिया ।

तब बड़े भैया बोले—“शिव-शिव ! ऐमा कभी मैं सोच भी न सकता था । ऐसे पापात्मा के साथ तुम्हारा कभी कल्याण नहीं हो सकता मंझले । इस बात को गाँठ में बाँध लो आज से ! समझे ?”

उत्तर निश्चित करने में मंझले भैया क्षणभर रुक गये ।

और बड़े भैया के इस कथन के बाद बड़ी बहू पुनः बोल उठी—
“मैं तुम्हारे पैर पड़ती हूँ । अब खतम करो इस रार को !”

इसी क्षण सामने रखे हुए लोटे पर दक्षिण हाथ रखते-रखते मंझले भैया बोले—“बस बड़े भैया, मेरे सामने यह मामूली लोटा नहीं, गंगाजल है । मैं इसकी कसम खाकर कहता हूँ कि जिननी जल्दी हो सका—हो सका तो आज ही—मैं रामप्रसाद का हिसाब करके उनकी साझेदारी समाप्त कर दूँगा ।”

एक सन्नाटा उस मकान भर में पुनः छा गया । किसी के मुँह से कोई बात न निकली । केवल रसोई की देहली पर बैठी बिल्ली बोल उठी—“भ्याऊँ ।”

४

बड़े भैया के बहनोई बहुत तो क्या, थोड़े पढ़े-लिखे भी न थे। पर जब वे अपनी रेल की स्विच मैन वाली नौकरी से अवकाश ग्रहण करने लगे, तो उनको अपनी संभरणनिधि और सेवोपहार से कुल मिलाकर लगभग पाँच हजार रुपये मिल गये थे। उनके दो बच्चे हुए थे, जिनमें एक तो चार वर्ष का होकर चल बसा। दूसरा परम मेधावी सिद्ध हुआ। उसका कीर्तिवर्द्धन नाम भी उपयुक्त ही था। यह कीर्ति बड़े भैया को बड़ा प्यारा था। जब कभी कोई त्योहार पड़ता, वह कानपुर अवश्य आता। बड़े दिन की छुट्टियाँ वैसे अब अधिक बड़ी नहीं होतीं, पर कीर्ति तो लखनऊ के क्रिश्चियन कालेज का प्राध्यापक है। अतः इस छुट्टी में उसे कानपुर आना ही पड़ा।

उस दिन कीर्ति जब दोपहर की गाड़ी से आया, तो बड़ी बहू भोजन कर रही थीं। रसोईधर से ही बोल उठीं—“अरे कीर्ति ! इधर मेरे पास आ जा। शंतानु महीनों में आता है। कितनी बार कहा कि इतवार को तो आ जाया कर। पर बिटिया की ममता के कारण हो, या कौन जाने और कोई बात हो, बदमाश आते-आते महीनों लगा देता है।

तब तक एक पीड़ा विमला ने मौसी के पास थोड़ा हटकर डाल दिया। उस पर बैठता हुआ कीर्ति बोला—“एक ही मिनट में क्रमशः दो-दो उपाधियाँ ! शैतान और बदमाश। मगर भाई, शायद तुमको यह नहीं मालूम है कि शैतान, ‘बदमाश’ की अपेक्षा अधिक क्रीमती होता है। अतः बदमाश के बाद तो शैतान कहना उचित भी है। पर पहले ‘शैतान’ होकर बदमाश बन जाना बेसा है, जैसा एम० ए० करने के बाद बी० ए० करना।” और इतना कहकर वह फिर ठट्ठा मारकर हँसने लगा।

मंभली उदास तो बहुत थी; यहाँ तक कि खाना खाने तब गयीं, जब बड़ी बहू स्वयं बुलाने आयीं। आग्रहवश वे चली तो आयीं, पर रुचि-पूर्वक भोजन उनसे किया न जा सका। पर इस समय कीर्ति जो अचानक आ पहुँचा, तो उसके सामने अपने मनोभाव छिपाकर बोलना आवश्यक हो गया। तब मंभली बहू बोली—“सुनती हो जीजी, लला ने कैसा बढ़िया उत्तर दिया !”

बड़ी बहू मुस्कराने लगीं। बोलीं—“बढ़िया उत्तर वह क्यों न देगा ! सपूत किसका है ! बिटिया उत्तर देने में क्या किसी से कुछ कम तेज रही हैं। हाँ, नन्दोई की बात दूसरी है। बेचारे मुस्करा भर देते हैं। कुछ कहना-बहना तो जानते नहीं।”

भूख के अभाव में छोटी बहू साथ देती हुई खाने का अभिनय कर रही थी। मंभली ने गोविन्द को दाल चटाते हुए कह दिया—“लला के आगे बहुत शरमाओ मत दुलहिन। बड़े भाग्य से यही एक भानजा तो पैर पूजने के बहाने चिकोटी काटने को मिला है।”

बड़ी बहू खाना खा चुकी थीं। शीतल जल दाँत की पीड़ा बढ़ा देता है, इस कारण कुनकुने पानी का घूँट कण्ठ से उतारती-उतारती बोलीं—“तेरे लिये खाना अभी बना देगी विमला। तब तक जलपाँन से काम चला लेगा न ?” अरी विमला, कीर्ति के लिये दुधोड़ी से मलाई

रात और प्रभात

तो उतार ला बेटी । अलमारी में मिठाई भी थोड़ी रखी होगी । सब सेती आना, अच्छा !”

तोंद की त्रिबली पर हाथ फेरता हुआ धृष्ट कीर्ति बोल उठा—“बैसे घर से तो खाना खाकर चला था; मगर इस घर में कदम रखते-रखते मामी के घर की कुछ ऐसी हवा लगी कि पेट भरा होने पर भी कुछ-कुछ खाली हो गया ।”

और कथन के बाद फिर एक हास्य !

अब तक बड़ी और मंझली बहू अपनी बातों के प्रकार में मुसकरा रही थीं । पर इस बार छोटी बहू भी हँस पड़ीं और कीर्ति की ओर देखकर बोलीं—“जान पड़ता है तुम्हारे पैर छुये बिना मेरी गति नहीं है ।”

फिर कथन के साथ घवल दंत-द्वय झलकाते हुए, सिर नीचाकर उसके पैरों की ओर हाथ बढ़ा दिये ।

कीर्ति इस समय बोल उठा—“जियो-जागो हँसो-हँसाओ, दूधों नहाओ, पूतों फलो ।”.....फिर दृष्टि घुमा ली साथ ही कह दिया—“लो, छोटे मामा आ गये ।” नतशिर विमला ने एक तश्तरी में मिठायाँ और कटोरे में मलाई कीर्ति के सामने रख दी । कीर्ति ने उसके झुके हुए मुख की पलकों पर दृष्टि डालने की चेष्टा की, पर वह सफल न हो सका । विमला इतनी दूर हट गयी थी, जहाँ निरप्रयास उसे देख सकना सम्भव न था ।

छोटे भैया कुछ गुनगुना रहे थे ।

बड़ी बहू बोलीं—“जलपान के बाद मेरे पास आ जाना कीर्ति, अच्छा !”

कथन के साथ ही वे उठकर चल दीं ।

कुन्दन सिर खुजलाते-खुजलाते बोला—“माँ जी, प्राज में बड़ी मुसीबत में पड़ गया हूँ ।”

“कैसी मुसीबत रे ! रोज-रोज मुसीबत में क्यों पड़ जाता है ?”

“माँ जी, टका पास है नहीं और दामाद घर बैठा है । कुछ समझ में नहीं आता कि क्या करें । पहली तारीख होती, तब तो पाँच रुपये देता । पर आज पन्द्रह तारीख है, तो ढाई न सही दो तो देने ही पड़ेंगे । वैसे दो रुपये छः आने किराये के ही होते हैं ।

बड़ी बहू ने कह दिया—“विमला, दो रुपये इसे दे दो । मगर देखो, तनखा में कटवा देना । कहे देती हूँ ।”

विमला से रुपये लेकर कुन्दन खुशी-खुशी कपड़ा छंटने लगा ।

गोविन्द और अधिक दाल खाने की इच्छा त्याग उनके साथ जाने के लिए हाथ उठाकर संकेत करने लगा । तब मंभली बहू भी मुँह धुलाने के लिए उसे उठाकर स्नानागार के निकट ले चलीं । कीर्ति से मलाई तो न छोड़ी गई, पर उसने मिठाई थोड़ी-सी ही ली । छोटी बहू उसके पास बैठी थीं ।

इस समय भूरी बिल्ली रसोई की देहली पर आ बैठी, तो छोटी बहू हँस पड़ी ।

कीर्ति मिठाई का एक टुकड़ा मुँह में डाल पानी पीने जा ही रहा था कि उसने देखा, बड़ी मामी बड़े मामा के निकट खड़ी कोई ऐसी बात कह रही हैं जिसे वे मन्द स्वर में ही कहना चाहती हैं; सो भी एकान्त में ।

कीर्ति उठने लगा, तो छोटी बहू बोल उठीं—“क्यों, यह मिठाई नहीं खाओगे ?

“नहीं ।”

“कारण ?”

“कारण कि मामी के आग्रह की मिठास में परिपाक-शक्ति कहते हैं, कुछ कम होती है ।”

रात और प्रभात

शेष मिठाई को एक ओर ढकती हुई छोटी बहू बोलीं—“तो तुम इन मान्यताओं पर अधिक विश्वास रखते हो।”

“केवल मान्यता इसे क्यों कहा जाय ? क्या इसमें संस्कृति का योग नहीं, और विश्वास का तो इसमें प्रश्न ही नहीं उठता। इसको तो केवल व्यक्तिगत रुचि की अभिव्यक्ति कहना चाहिये।”

“और यदि मेरा विशेष आग्रह हो ?”

“विशेष आग्रह अति प्रेम का द्योतक होता है और अति प्रेम के विषय में गोस्वामी जी का कथन है कि प्रियजनों से भी मोहवश अति प्रेम न करना चाहिये। उससे यश की हानि होती है।”

कीर्ति का उत्तर किंचित कठोर था। छोटी बहू को घृष्ट कटु भी प्रतीत हुआ। फिर भी उसने सहज भाव से कह दिया—“यश की हानि ! तो यश-संचय क्या इतनी महत्तम वस्तु है कि साधारण शिष्टाचार का भी निर्वाह न किया जाय !”

“सचमुच छोटी मामी, यश ऐसी ही महत्तम वस्तु है। क्योंकि कहते हैं—यश के अर्जन में श्रम तो करना ही पड़ता है, कभी-कभी कष्ट भी होता है। कालान्तर में श्रम और कष्ट दोनों की सत्ता नष्ट हो जाती है, पर यश अमर रहता है। वह अविनश्वर है। वास्तव में यश ही अमृत है; क्योंकि वह जीवन में विश्वास का बल देता है।

मालूम नहीं विमला कहाँ खड़ी-खड़ी ये बातें सुन रही थी। जब उससे और अधिक सहन न हुआ, तो वह बोल उठी—“यश की बड़ी महिमा मैंने सुनी है; पर कदाचित् इसी अवसर के लिये एक चीनी कहावत याद आती है कि हजार वर्ष का यश एक दिन के चारित्र्य पर निर्भर रह सकता है।”

कीर्ति इस उत्तर को सुनकर यकायक जैसे समाप्त हो गया। अवसन्न, स्तब्ध और जड़ीभूत-सा होकर वह उस ओर देखने लगा जिधर विमला खड़ी थी।

रात और प्रभात

आश्चर्यचकित छोटी बहू बोलीं—“पगली, तू यहाँ यकायक ऐटम बम की तरह कैसे फट पड़ी ?”

कीर्ति ने पहले भी विमला को देखा था। उसने पहले भी उसकी ऐसी कटूक्तियाँ सुनी थीं। इतना समझ लिया था कि उसमें प्रतिभा है। अपने कालेज के जीवन में और भी कई प्रतिभाशाली लड़कियों को उसने देखा था। वे विमला से कहीं अधिक रूपवती थीं। वार्तालाप की शैली और शालीनता में तो उनके साथ विमला की कोई तुलना न थी।

किन्तु आज कीर्ति ने अनुभव किया, वास्तव में चरित्र सबसे बड़ी वस्तु है।

पर ?

कीर्ति इसके आगे कुछ सोच न सका। वह अपनी बड़ी मामी के निकट बैठा रहा। वहाँ मंझली और छोटी मामी भी आ बैठी थीं। बड़ी मामी ने उससे माँ के स्वास्थ्य के विषय में पूछा, पिता की गतिविधि के विषय में प्रश्न किया। बहिन के लिये कहा कि वह तो ससुराल में होगी। फिर यह भी पूछा कि वे तेरे विवाह के सम्बन्ध में क्यों मोन हैं ? विमला चली गयी।

कीर्ति सभी बातों का उत्तर देता गया। पर जब बात उसके विवाह पर आयी, तो वह चुप रह गया।

कीर्ति का हास प्रसिद्ध था। वह सदा हँसता ही रहता था। जैसे प्रगल्भता ही उसका व्यक्तित्व हो। पर अब, इस प्रश्न के आगे वह अपनी प्रगल्भता खो बैठा।

बड़ी बहू ने मंझली से कहा—“जरा देखना तो, कीर्ति का खाना बनने में कितनी देर है।”

इसी समय उमिला आ गयी। अब भी हाँफ रही थी। पर उत्साह की मात्रा विशेष होने के कारण, साथ-ही-साथ, फूलती-सी जान पड़ती थी। एक-आध मिनट में स्थिर होकर बोली—“बड़ी अम्मा, ओ
५४

रात और प्रभात

बड़ी अम्मा, मुझे अपनी गुड़िया पर यह पदक मिला है। देखो !”

बड़ी बहू ने उसे वक्ष से लगा लिया। उसके सिर पर हाथ फेरा और पदक देखकर गद्गद हो कह दिया—“वाह ! पदक तो बड़ा सुन्दर मिला है तुम्हें।”

कीर्ति ने प्रकट रूप से तो कुछ नहीं कहा पर आत्मग्रस्त होकर वह मन ही मन सोच यही रहा था—‘उसकी इस बात का कोई उत्तर नहीं है—कोई उत्तर नहीं है।’

मंभली बहू की गोद में गोविन्द था। फिर भी वे जो उठने लगीं, तो छोटी बहू उठकर बोली—“मैं देख आती हूँ। तुम बैठो जीजी।”

छोटी बहू चली गयीं।

पानी जब ऊपर से नीचे बहने लगता है, तब किसी तरह रोके नहीं रुकता। रोकने की चेष्टा की जाती है तो भी वह अपने लिये रास्ता बना लेता है। यही स्थिति जीवन की है। कोषकार तो जीवन को भी जल की ही संज्ञा देते हैं।

आज जब मंभले भैया और रामप्रसाद में खुलकर कहा-सुनी हो गई तब फिर कटु से कटु बात कहने में किसीने कुछ उठा नहीं रक्खा। रामप्रसाद बोले—“अगर मैं न होता तो तुमको कोई तीन कौड़ी को भी न पूछता।”

मंभले भैया ने उत्तर दिया—“अरे हट। जहाँ मुर्गा नहीं बोलता, वहाँ सवेरा नहीं होता ! मैं ऐसा कोई दावा तो नहीं करता। हाँ, एक बात कह सकता हूँ कि पिछली बार राजापुर के डाके की लूट का माल जब हमारे यहाँ आया था तब एक मैं था, जिसने उस माल को लेने का अन्त तक विरोध किया था। वही माल जब दूसरी दूकान में गया, तो लाला बुलाकीदास चौबीस घंटे तो हवालात में रहे; उसके बाद छूटे भी

रात और प्रभात

तो दस हजार की जमानत और पाँच-पाँच हजार के दो मुचलकों पर । रह गई पैसे की बात सो बुलाकीदास के पास कोई कमी थी ? अगर वही माल हमने लिया होता तो हमारी क्या गति होती ! मना कि लाला बुलाकीदास चार-छः हजार रुपये फूँककर जेल जाने से बच गये लेकिन अब बाज़ार में उनकी साख तो जाती रही । यही हाल हमारा होता । तुमको बेईमानी का पैसा फलता है लेकिन मुझको नहीं फलता । तुम समझते हो कि जब मरोगे तब अपने साथ सब लादकर ले जाओगे । मैं समझता हूँ कि यह तुम्हारी मूर्खता है । अन्त में सब यहीं पड़ा रह जाता है । बड़े भैया ! बिल्कुल ठीक कहते हैं, सबसे बड़ी चीज़ है मनुष्यता और किसी भी प्रलोभन से मैं उसकी हत्या न होने दूँगा ! आज से हमारा-तुम्हारा रास्ता अलग-अलग हो गया । अपना हिसाब कर लो और जो कुछ निकले हमसे ले लो । लेकिन इस दूकान में साझेदारी का इरदा छोड़ दो ।”

रामप्रसाद किसी बान का तर्क-संगत जवाब तो दे ही नहीं सकता था । केवल जली-कटी बातें कह-सुन सकता था, सो जो उसके मन में आया वही उलटा-सीधा उसने भोंक दिया । उसने कहा—“मरने वाली चींटी के पर जम आते हैं । दुकानदारी तो तुम से होने से रही । दस-दस, पाँच-पाँच रुपये के लिये बड़े भैया के आगे हाथ पसारोगे, रात-दिन उनकी गुलामी करोगे । उनका क्या है, ज्यादा से ज्यादा दस-पाँच वर्ष और जियेगे । जहाँ आँखें बन्द हुईं कि फिर कौड़ी के तीन हो जाओगे । मुझे तो यही साफ दिखलाई दे रहा है । सचाई, ईमानदारी, धर्म और इन्सानियत का ढिंढोरा वही पीटते हैं जो बाप-दादे की कमाई पर गुल-छरें उड़ाते हैं । तुम तो हो अन्धे, तुम्हें इतना भी नहीं सूझ पड़ता कि हम ठहरे मजदूर, अगर हम अपना हित नहीं देखेंगे, स्वार्थ-साधन नहीं करेंगे तो यह हमीर तबका के लोग तो हमें खा जायेंगे । आज की दुनिया में कदम रखने के लिये जगह उसी को मिलती है जो छल से,

५६

रात और प्रभात

बल से, बुद्धि से और संगठन से अपनी माली हालत मजबूत करके रहता है। आज मुझे तो कोई सत्यवादी हरिश्चन्द्र दिखलाई नहीं पड़ता। तुम बनना चाहते हो तो बनकर देख लो न, कौन मना करता है। रह गई बात दुकान छोड़ देने की। सो सवाल यह है कि दुकान छोड़ेगा कौन ? मैं तो छोड़ने से रहा, छुड़वा लो, अगर तुम में दम हो। एक ताला तुम्हारा लगा है, एक मैं अपना लगाये देता हूँ। चुनौती है तुमको, खोलो दुकान। ताला तोड़ने के लिये जो आदमी हाथ उठायेगा, उसका हाथ पहले टूटेगा, ताला बाद को। खून हो जायगा खून, इसी जगह पर। तुमने मुझे समझा क्या है ? तुम्हारे साथ रिश्तेदारी का अब हमारा कोई सम्बन्ध नहीं रह गया। आज से मैं तुम्हारा दुश्मन हूँ और तुम हमारे। अब तो अदालत जो फैसला करेगी वही होगा। आज छुट्टी का दिन है, वरना मैं आज ही करके दिखा देता। एक बात मैं और बतलाये देता हूँ, जरा सँभलकर रहना। मेरा तो हाथ न उठेगा क्योंकि आखिर तो तुम्हारे साथ मेरी बहिन ब्याही है। लेकिन तुम जानते हो कि मेरे घर चार बदमाश भी आते-जाते हैं। मैं किस-किसको मना करता फिरूँगा। अफसोस यही है कि अगर किसीने रात-बिरात गली-कूचे में तुमको कहीं देख लिया, तो वहाँ से लद कर ही घर आओगे। चोट लग जाने का मुझे भय नहीं है लेकिन जान जाने का भय जरूर है। अभी मेरे हाथ में सब कुछ है। बाद में मैं भी कुछ न कर सकूँगा। बस, बात यहीं से खत्म होती है।

छोटे भैया रामप्रसाद की ये सब बातें चुपचाप छिपकर सुन रहे थे। ज्यों ही वह कमरे से बाहर निकलने लगा; त्योंही छोटे भैया प्रकट होकर सामने आ गये। बोले—“तुम खून बाद में करोगे, मैं तुम्हें अभी न यहीं समाप्त कर दूँ ! बड़े तीसमार खाँ बनते हो, आ जाओ सड़क पर। जमीन न चाटने लगे, तो मेरा नाम भानुचन्द नहीं।” कथन के साथ छोटे भैया बाहें चढ़ाने लगे।

“मैं तुमसे बात नहीं करता । तुम भी हमारे बीच में मत पड़ो छोटे भैया ! कहे देता हूँ ।”

“अरे हट यहाँ से, कायर कहीं का !”

इधर द्वार पर मंझले भैया और छोटे भैया मिलकर रामप्रसाद से निपट रहे थे, उधर अन्दर बड़ी बहू बोलों—“विवाह तो एक दिन होगा ही । पर मैं सोचती हूँ कि अब देर हो रही है ।”

मंझली ने समर्थन में कह दिया—“दिरतो हो ही रही है । न जाने बिटिया क्या सोच रही है !”

“अच्छा, तू एक काम कर भैया ।” बड़ी बहू ने फिर कहा ।

“क्या ?” कीर्ति के मुँह से निकल गया ।

कीर्ति के मुख पर हास झलका और फिर लौट गया । आगे के दो दाँत खुने और फिर होठों के नीचे ढिप रहे । बादल के भीतर जैसे कभी बिजली लपककर समाप्त हो जाती है, ठीक उसी भाँति ।

कीर्ति ने भोजे अब तक उतारे न थे । वह उन्हें उतार ही रहा था कि छोटी बहू ने लौटकर कहा—“खाना तैयार हो गया । चलो ।”

“चल, मैं भी वहीं बैठती हूँ ।” बड़ी बहू बोलों ।

मंझली बहू ने कह दिया—“चलती तो मैं भी पर जरा भैया को सुला दूँ तो आऊँ ।”

मंझली बहू को अब रह-रहकर भैया से झगड़ा होने की बात का स्मरण हो आता । उसे इस बात की प्रसन्नता थी कि उसके स्वामी ने बहुत समझदारी से काम लिया । पर यह सोचते हुए उसका जी दुखने लगता कि रामू भैया का सहारा न मिलता, तो मेरी गृहस्थी की नीक कदापि इतनी सुटढ़ न होती । रामू भैया के अलग हो जाने पर कौन जाने क्या हाल हो ! कौन जाने इनसे दुकान चलाये चली—न चली ।

—लेकिन बड़े भैया की आज्ञा के आगे ?

रात और प्रभात

—हाँ, मूल में तो वही है। उन्हीं की छाया के नीचे हम लोग पले हैं। उनसे विमुख होकर हम जायेंगे कहाँ !

—और राम भैया का कौन भरोसा ! जो अपनी विधवा माँ का न हुआ, वह मेरा क्या होगा ! जो उनके साथ विश्वासघात कर सकता है, वह मेरे साथ क्यों नहीं कर सकता ? कौन जाने अब तक कुछ नहीं किया ! ना ना, बड़े भैया की आज्ञा के आगे अब कुछ नहीं हो सकता।

इतने में कुन्दन अन्दर आकर इधर-उधर दृष्टि डालते हुए बोला—
“कहाँ गयी माँ जी ?”

मंझली ने अवगुण्ठन भाल तक खिसकाते हुए उत्तर दिया—“उधर ही बैठी कीर्ति को खाना खिला रही हैं।”

कुन्दन उधर जाकर बोला—“कोई चदरा दे दो माँ जी। बाज़ार से चीनी और बेसन लाना है। बड़े भैया तैयार खड़े हैं।”

बड़ी बहू प्रसन्नता से उठकर बोलीं—“अरी विमला, बेटा, ज़रा तिरुवारी से चदरा दे देना कुन्दन को।” फिर कुन्दन की ओर देखती हुई पूछने लगी—“और घी के लिये ?”

“घी के लिये यह बाल्टी।” कथन के साथ उसने दायें मुड़कर वह बाल्टी स्वयं उठा ली। विमला ने चदरा दे दिया।

मंझली बहू की सारी उदासीनता जाती रही। मन ही मन कहने लगीं—“दूकान रहे, चाहे चली जाय। बड़े भैया की दम बरकरार रहे। हमें कमी क्या है ?”

फिर “सो जा, सो जा कन्हैया” कथन के साथ उसके सिर के बिखरे केश ठीक करने लगीं। उस समय उन्हें उस घड़ी का भी ध्यान हो आया, जब यह गोविन्द पैदा हुआ था। दीपक जलते ही पहले दरवाजे पर आतिशबाज़ी छूटी थी, फिर रात-भर कीर्तन हुआ था। सारे नातेदारों को निमन्त्रण देकर बुलाया गया था। दस-बारह दिन तक गीत-मांगल्य होते रहे। जाड़े के यही दिन थे। कंगलों

को ग्यारह कम्बल बाँटे गये थे। ऐसा उदार भाई कितने लोगों को मिलता है !

कुन्दन चला गया। मंझली ने गोविन्द को चारपाई पर लिटाकर उसके बदन को पुलपुले लिहाफ से ढक दिया।

उस समय बड़ी बहू कह रही थीं—“हाँ रे कीर्ति, मैं तुझसे यही कह रही थी कि, बिटिया को लिवाने, मैं उनको भेज तो देती, अभी आज ही, पर आजकल उनके बाये पैर की गाँठ में दर्द रहने लगा है। इससे ज्यादा चला नहीं जाता। कई दिनों से बाजार जाने को कह रही हूँ। आज बड़ी मुश्किल से गये हैं। सो भी रिक़्शा पर। इस-लिये वे तो न आ पायेंगे। हाँ, छोटे को मैं भेजूँगी।”

तब तक मंझली वहाँ जा पहुँची। उन्होंने भी कह दिया—“हाँ जीजी, बिटिया को बुलाये बिना कैसे बनेगा ! वे न आयेंगी, तो हँसी-मसखरी और चुहल भरी बातें सुना-सुनाकर हमें लोटपोट भला कौन करेगा ! और ब्याह की बातें तभी हो जायेंगी। यह भैया तो इस मामले में जबाबत हिलाने से रहा। मेरा तो मन करता है कोई ऐसी बहू आये जिससे बिटिया को इस बुढ़ापे में आराम तो मिले।

वह एक ऐसी बात थी जिसने कीर्ति की बुद्धि को उकसा दिया। अतएव वह सहज ही मुमकराने लगा।

मंझली से न रहा गया। बोली—“हँसे क्यों लला ?”

छोटी बहू बोल उठीं—“हँमने की बात ही है।”

बड़ी बहू ने देखा, दोनों मिलकर उसे तंग करना चाहती हैं। अतः उन्होंने कहा—“उसे खाना खिलाते समय इतना परेशान मत करो मंझली, कि मन भर खा भी न सके !”

इस पर सभी एक साथ हँस पड़ीं। क्षणभर बाद कीर्ति बोल उठा—“मामी, सन बात तो यह है कि मैंने ब्याह के सम्बन्ध में अभी तक कुछ नहीं सोचा।”

रात और प्रभात

“मगर सोचने का दिन तो आ ही गया ।” मंझली ने उत्तर दिया ।

कीर्ति ने पानी का गिलास उठाया ही था कि फिर तद्वत् रखते हुए कह दिया—“पता नहीं कहाँ पड़ा है । ठीक-ठीक शब्दावली भी याद नहीं आ रही है । पर कदाचित् उस बात का सार यह है कि स्त्री की ही मार सबसे अधिक विकट और कल्याणकारी होती है । क्योंकि वह स्वामी के अन्दर रहने वाले मनुष्य को बचाकर पशु को मार डालती है ।”

पता नहीं बड़ी बहू इसे समझ सकीं या नहीं; क्योंकि उनकी प्रतिक्रिया अव्यक्त रह गयी । पर मंझली बहू जरूर समझ गयीं । उन्होंने कह दिया—“वाह लला, या तो चुप ही बने रहते हो, या फिर ऐसा जवाब देते हो, जिसका जवाब नहीं होता ।”

छोटी बहू कुछ संकुचित हो उठीं । रूमाल अंधरों पर आ पहुँचा । विमला गोविन्द के कुनमुनाने पर उसके पास जा पहुँची थी । पर उसके कान उधर ही लगे थे ।

बड़ी बहू बोलीं—“दो बीड़े पान तो लगा लो छोटी ।”

“रहने दो, जरूरत क्या है ?” कीर्ति ने कह तो दिया; पर तब तक छोटी बहू चल दी थीं । विमला के पास जो पहुँचीं, तो बतलाया कि कीर्ति की बातों का जवाब नहीं होता ।

विमला जानती थी, पान लगाने ही पड़ेंगे । अतएव चाँदी का पनडब्बा उसने छोटी मौसी को देते हुए पूछा—“क्यों, क्या फिर बाबू साहब ने कोई ऐसी बात कह दी, जिसका कोई उत्तर तुम्हें नहीं सूझ रहा है ।”

छोटी बहू ने बतलाया—“मंझली जीजी ने कहीं कह दिया—विवाह के विषय में अब तक भले ही न सोचा हो, पर अब तो सोचना ही पड़ेगा ।”

विमला पहले तो मोन रही, फिर जब छोटी बहू ने खोद-खोदकर

पूछना शुरू किया—“अरे जवाब क्यों नहीं दे रही हो ?” तब वह होंठ दबाती हुई बोली— ‘मैंने सुना है ।’

“तो इस पर कीर्ति ने जो कुछ कहा, उसे भी सुना होगा ?”

छोटी बहू की बात पर विमला संकुचित हो उठी । कुछ स्पष्ट तो उसने नहीं कहा; पर भंगिमा और मुद्रा से यह छिपा न रह सका कि उसने सुन अवश्य लिया है ।

छोटी बहू बोली—“बस, तभी से बार-बार एक ही बात मेरे मन में आ रही है ।”

‘क्या ?’ विमला का प्रश्न था ।

मन्द स्वर में हास की एक क्षीण रेखा के साथ छोटी बहू बोलीं—

“तुमसे बात हो रही होती, तो तुम अवश्य कोई ऐसी बात कह देती कि एक बार तो वह क्षणभर को सोचता रह जाता । अच्छा मान लो, तुमको उत्तर देना ही पड़ता, तो तुम क्या कहती ? मैं लज्जा के कारण जैसे धरती में घँसती जा रही हूँ । इस कीर्ति से तो बात करना भी कठिन है ।”

“मगर जब मुझसे बात ही नहीं हुई, तब मैं उत्तर क्यों दूँ ? तुम पान ले जाओ न, जिसके लिए भेजी गयी हो ।”

समवयस्क होने के कारण कथन के साथ विमला ने टालते हुए छोटी बहू के कंधे से हाथ लगा दिया । किन्तु छोटी बहू किसी तरह न मानी । बोली—“तुम्हें बताना ही पड़ेगा विमला, पान ले जाने में देर भले ही हो जाय ।”

तब विवश होकर विमला ने हँसते-हँसते कह दिया—“बात मेरे कहने की नहीं, वास्तव में है वह तुम्हारे ही कहने की । बापू ने कहीं कहा था—“मनुष्य होना ही तो दुष्कर है । क्योंकि मनुष्य और साँप में केवल एक बात का अन्तर है । साँप पेट के बल चलता है, मनुष्य टांगों

रात और प्रभात

के बल । किन्तु जो मनुष्य हर घड़ी पेट के बल चलना चाहता हो, उसके लिए फिर कौन-सी संज्ञा होगी ?”

उत्तर सुनकर छोटी बहु गम्भीर हो गयीं । बोलीं—“उत्तर तो वेशक इक्कीस है । पर है बहुत कटु ।”

“मानती हूँ कि है कटु । पर हमें देखना तो यह है, उसमें सत्य का स्तर कितना उच्च है । फिर वह सबके लिए है भी नहीं । जो लोग बात-बात में पेट की दुहाई देते या जीवन-सौख्य की महिमा के आगे नतशिर रहते हैं, जान पड़ता है, उन्हीं को लक्ष्य करके उन्होंने ऐसा कहा होगा । अभी यह वार्तालाप समाप्त न हो पाया था कि जान पड़ा सदर दरवाजे पर कुछ कहा-सुनी हो रही है । शोर सुनकर सभी लोग उधर दौड़ पड़े । तब पता चला, घर की ही बात है । रामप्रसाद और मंभले भैया में कुछ कहा-सुनी हो गयी है । दूकान में रामप्रसाद ने अपना भी एक ताला अलग से डाल दिया है । उसका कहना है कि जो प्लाट उन्होंने अपने नाम से खरीदा है, उसमें भी मेरा आधा हिस्सा होता है । जब तक फंसला नहीं हो जाता, तब तक दूकान नहीं खुलेगी । इसी पर छोटे भैया ने धक्का देकर उसे घर से बाहर निकाल दिया है ।

५

उचित हो चाहे अनुचित, सत्य हो चाहे असत्य, न्याय हो चाहे अन्याय रामप्रसाद एक बार जो बात अपने मन में तय कर लेता, फिर आगे उससे टस-से-मस न होता। दृढ़ता की दृष्टि से यह प्रकृति एक प्रकार का बड़ा गुण माना जाता है। पर विकासार्थ में वही एक प्रकार का दुर्गुण भी होता है। जिन वस्तुओं में परिवर्तन की लोच नहीं होती, प्रकृति उन्हें नष्ट कर देती है। उधर कहते हैं, सभी महान पुरुष हठी और दुराग्रही होते हैं। यही उनका गुण और यही उनकी दुर्बलता होती है। अहं की रक्षा में यह गुण सहायक भी होता है। संत लोग अहं से दूर रहते हैं, किन्तु राजनीति के विधायक और आचार्य्य घोर अहंवादी होते हैं। यद्यपि राजनीति में दृढ़ता और विजय दोनों ही गुण साधन की संज्ञा रखते हैं। वह राजनीतिज्ञ ही नहीं, जो अवसर आने पर विनयशील न हो सके, झुक न सके।

रामप्रसाद में विवेक का अभाव था। हठ त्यागकर समाज में बड़ा बनने की अभिलाषा उसमें न थी। दुराग्रह उसमें पराकाष्ठा पर पहुँच गया था। यह एक ऐसी दुर्बलता थी, जिसको भ्रमवश वह बहुत बड़ा

रात और प्रभात

गुण मान बैठा था। मेरी शान बनी रहे, मेरी डींग स्थिर रहे, मेरे अहंकार को हानि न पहुँचे, परिणाम चाहे जो हो बस, एकमात्र यही उसके जीवन का ध्येय था।

यों सांसारिक दृष्टि से रामप्रसाद बहुत चतुर व्यक्ति था। वह अपनी आय का रुपया बैंक में गुप्त रूप से रखता था। उसके पास खर्चा भी कम था। उसकी छोटी भाभी अपने मँके चली गयी थी। और उसका बच्चा कान्तिमोहन अभी पढ़ रहा था। उसकी प्रथम पत्नी का देहान्त हो चुका था। द्वितीय पत्नी अपेक्षाकृत अधिक सम्य और शिक्षित थी। कदाचित् इसी कारण उन दोनों में कभी-कभी कहा-सुनी भी हो जाया करती थी। पर वह बड़ा संशयालु व्यक्ति था। जब वह घर से जाने लगता, तो बाहर से ताला बन्द कर दिया करता। यद्यपि यह बात दमयन्ती के लिए प्रपमानजनक होती किन्तु उसके संस्कार बहुत पुरातन थे। ऐसा नहीं था कि विद्रोह करने का मन न होता हो; किन्तु इतना साहस ही उसमें न था कि अपनी बात पर अड़ सकती।

यह गुण तो केवल शारीरिक साहस में होता है। वह हर प्रकार के संकट को क्षुद्र समझता है। इसके विपरीत नैतिक साहस हर प्रकार के विवाद को नगण्य समझता है।

दमयन्ती में शारीरिक साहस का तो अभाव था पर नैतिक साहस की उसमें कमी न थी। इमलिये वह स्वामी के सामने इच्छानुसार विरोध कर लिया करती थी; किन्तु सक्रिय विरोध करने की शक्ति का उसमें सर्वथा अभाव था।

दूकान जब बन्द रहने लगी, तब भी रामप्रसाद ने दमयन्ती को यह नहीं बतलाया कि आजकल उसमें ताला पड़ा रहता है। उसने यह भी नहीं बतलाया कि घर-खर्च के लिये भी पुष्के संचित पूँजी से रुपया निकालना पड़ रहा है।

एक-दो दिन की बात होती, यहां तक कि दस दिन की भी बात

होती तो रामप्रसाद छिपा ले जाता, किन्तु जब महीने पर महीने बेकारी में बीतने लगे, तब एक दिन उसने दमयन्ती से विवाद की सारी कथा कह सुनायी। इस विवरण में उसने यह नहीं बतलाया कि बड़े भैया से उसकी क्या बातचीत हुई। उसने यह भी नहीं बतलाया कि भगड़े की जड़ क्या थी। बतलाया केवल इतना कि बड़े भैया अन्दर ही अन्दर जीजा से जलने लगे हैं। वे नहीं चाहते कि जीजा अपने बल-बूते से बड़े आदमी बन जायें। अरे यह दुनिया ही ऐसी आँधी खोपड़ी की बनी है दमयन्ती कि वक्त आने पर सगा-से-सगा आदमी दुश्मन बन जाता है। तुम्हीं देखो, मैंने जीजा का क्या बिगाड़ा था? मगर रुपये की थोड़ी गर्मी आते ही उनकी भी नज़र बदल गयी! हमसे बोले—मैं तुम्हारी साभेदारी अलग करता हूँ।”

“मैं यह क्या सुन रही हूँ?”

“वही जो मैं कह रहा हूँ।” जरा देखो तो सही, यह आदमी कैसा तोताचश्म निकला! मुझसे इसने ऐसी बात की, जिसने उसे आदमी बनाया; जिसने सड़कों पर भटकने, दर-दर ठोकें खाने की अवस्था से हटाकर बाँह पकड़कर उन्हें गद्दी पर बिठाया। कृतघ्नता की हद होगयी! इसपर तुरा यह है कि बड़े भैया बड़े धर्मावतार बनते हैं।”

सत्य पर लाञ्छन लगाया जा सकता है, किन्तु उसे लज्जित कर अपदस्थ नहीं किया जा सकता।

दमयन्ती अब तक तो सुनती रही। पर जब रामप्रसाद ने बड़े भैया पर चोट करना प्रारम्भ कर दिया, तो दमयन्ती से सहन न हुआ। बोली—“तुम जीजा को जो चाहे कह लो, पर बड़े भैया को कुछ मत कहो।”

“चल-चल, मैंने सब देख लिया! ‘बड़े भैया-बड़े भैया’ कहते-कहते मेरी यह जीभ घिस गयी। इतनी आरती अगर भगवान की उतारता, तो अब तक इन्द्रासन हिल उठता।”

रात और प्रभात

“पर मैंने तो सुना है, कोई उनकी लाख बार प्रशंसा करे उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।” दमयन्ती ने पान लगाते-लगाते कह दिया।

कौन कहता है कि प्रभाव नहीं पड़ता ? दुनियाँ में ऐसा कोई आदमी आज तक तो पैदा नहीं हुआ। तुम्हें पता होना चाहिए कि प्रशंसा देवताओं तक को प्यारी होती है। सुनते हैं, ऐसा कोई वर नहीं, जो शंकर जी की स्तुति करने वालों के लिए दुर्लभ हो।”

दमयन्ती के हाथ से पान का बीड़ा लेकर मुँह में डालते हुए रामप्रसाद बोला—“जब जी चाहे, आजमाकर देख लो।”

“खैर, देखा जायगा। पर अब इस झगड़े को बढ़ाने से फायदा ! मेरी राय में तो मेल कर लेना ही उत्तम है।”

दमयन्ती के इतना कहते ही रामप्रसाद ऐसा चौंक पड़ा, जैसे उसका पैर आग पर जा पड़ा हो। तमककर बोला—“मेल ? मैं भला जीजा से मेल करूँगा ?”

फिर एक निःश्वास के साथ उसने कह दिया—“अब मेल तो तभी होगा, जब मेरी अर्धी निकलेगी !”

“देखो, ऐसी बात फिर कभी मुँह से न निकालना। तुम्हें मेरी कसम है। अच्छा मेरे सिर पर हाथ धरो, धरो। खाओ कसम।”

दमयन्ती प्यार की सलोनी भाषा में बोली, तो रामप्रसाद हँस पड़ा। बोला—“बस घबरा गई ? मैं तो मौत को माँ के समान प्यार करता हूँ। मीठी नींद या तो माँ की गोद में आती है, या बस मौत की गोद में !”

“जाने दो और बात करो।” कथन के साथ दमयन्ती भीतर ही भीतर कम्पित हो उठी।

कभी-कभी रामप्रसाद सोते-सोते एक दम उठ बैठता। दमयन्ती अगर सोती भी होती, तो वह उसे उठाकर-जगाकर घंटे-दो-घंटे वार्तालाप में बिताये बिना न मानता। जाड़े के दिनों में दो पलंगों पर दोनों अलग-

रात और प्रभात

अलग सामने बैठ जाते, बीच में अंगीठी धधकती रहती। हाथ-पैर गरमा गरमाकर गरमागरम बातें करने में रामप्रसाद को बड़ा रस मिलता।

एमर्सन का कथन है कि हम एक क्षणिक और उच्छृंखल आनन्द के लिए देवों के सिंहासन बेच डालते हैं।

उन्हीं दिनों की बात है। एक बार रामप्रसाद लगे हाथों छोटे भैया पर उबल उठे। बोले—“क्या पिढ़ी और क्या पिढ़ी का शोरबा। इस हरामखोर भानुचंद को तो देखो। उससे और कुछ न करते बना, तो मुझे धक्का देकर घर से बाहर निकाल दिया। क्रोध तो मुझे ऐसा आया कि अभी चार बदमाशों को इधर-उधर बैंठाल दूँ। ज्योंही बाहर निकले, त्योंही एक टाँग समाप्त कर दी जाय। बच्चू को जीवन भर याद तो रहेगा कि किसी रिश्तेदार को बेइज्जत करना कैसा होता है। पर मैंने सोचा—हमारी मुख्य लड़ाई उससे नहीं, उस व्यक्ति से है, जिस के साथ चोली-दामन के संबंध रहे हैं। दुनिया माने चाहे न माने। पर भगवान् की सत्ता का अगर कोई महत्त्व है, तो वह तो जानता ही है कि मैंने उसकी नादानं और मासूम जवानी पर तरस खाकर ही उसे क्षमा कर दिया है। वैसे मेरे मन में तो अनेक बार आया कि इसकी नाक तो कटवा ही ली जाय, क्योंकि अभी इसे बहुत दिन जीना है। दिन में जब दस बार मेरी याद आये, मजा तो तब है। पर फिर मैंने यही सोचकर उधर से ध्यान हटा लिया कि बुराई का बदला भी बड़े शत्रु से ही चुकाने में गौरव होता है।”

एक दमयंती ही नहीं, बहुतेरे लोगों ने रामप्रसाद को समझाया—“बड़े भैया संत आदमी हैं। भगवान् के अनन्य भक्त और सत्य के एकांत पुजारी। किसी की बुराई नहीं चाहते। स्वभाव के भी बहुत उदार। तुम उनसे क्षमा मांग लो, तो दूकान में तुम्हारी सामेदारी बनी रहेगी।”

इसके विपरीत रामप्रसाद का उत्तर था—“मेरे सामने ब्रह्मा चलि आवें, क्षमा मैं उनसे भी न मांगूंगा। बड़े भैया उनके सामने क्या चीज

रात और प्रभात

हैं ? रह गये मंभले, उनको तो मैं कायर समझना हूँ । उनमें दम कितना है ? तुम देखते जाओ । साल भर के भीतर-भीतर तो खुद उनको मुझी से माफ़ी माँगनी पड़ेगी । पेट की आग भड़कने भर की देर है । बड़े भैया तो खर्चा चलाने से रहे । जब भूखों मरने लगेंगे तभी उनको आटा-दाल का भाव मालूम होगा ।”

इन बातों का परिणाम यह हुआ कि समझौते की स्थिति ही न उतारने पाई ।

रामप्रसाद के कुछ साथी और चेले ऐसे थे, जो समय-समय पर कुछ तो सही और कुछ ग़ज़त बातें बना-बनाकर मंभले भैया को आतंकित किया करते थे । रामप्रसाद को इसमें रस मिलता था । मजा आता था । जैसे कोई नशेबाज हो जो आपस में बैठकर ऐसी बातों को सुन-सुनकर मन ही मन प्रसन्न हो लेता हो, भले ही वे काल्पनिक हों । कहने वाले तो यहाँ तक कह दिया करते कि मुझसे सारी बातें तय हो गयी हैं । मंभले भैया ने एक आध दिन में तुमसे मिलने का वायदा किया है । लेकिन जब मंभले भैया उसके पास न पहुँचे, तो उसने समझ लिया कि बड़े भैया ने ही उन्हें मिलने से रोक दिया है ।—अरे यह आदमी बड़ा बना हुआ है ।

उस दिन रामप्रसाद को विश्वास हो गया कि यह सोचना हमारा भ्रम था कि किसी न किसी दिन क्रोध ठण्डा होगा ही । कभी-न-कभी तो मुझसे मिलने की तबीयत होगी । क्रोध में आकर हम न जाने क्या-क्या बक जाते हैं । कुछ दिनों के बाद मनुष्य आप से आप ढीला पड़ जाता और हार मानकर मिलना-जुलना स्वयं ही प्रारम्भ कर देता है ।

इस स्थल पर सबसे अधिक विचित्र और एकाङ्गी दृष्टिकोण यह था कि रामप्रसाद स्वयं तो झुकना न चाहता था, किन्तु अपने बहनोई के खूनी परिवार से ऐसी आशा रखता था ।

रात और प्रभात

किसीका अनुशासन स्वीकार नहीं कर सकती। चाहे वह मेरा कोई भी हो।”

इतना कहकर दमयन्ती जो उधर चलने लगी, तो रामप्रसाद ने भट बलपूर्वक उसे रोककर उसके मुँह पर एक तमाचा जड़ दिया।

वह इतना उत्तेजित हो उठा था कि स्वयं उसकी देह काँप रही थी।

पर तमाचा खाकर भी दमयन्ती डिगी नहीं। उसका मुख लाल हो उठा, उसके अधर फड़कने लगे। पर संयत वाणी से ही उसने उत्तर दिया—“चाहे तुम मुझे मार ही डालो, लेकिन जीवन के अंतिम साँस तक मैं कहूँगी यही कि मैं तुम्हारी पत्नी हूँ—गुलाम नहीं। मैं स्वतंत्र भारत की एक सभ्य नारी हूँ और...”

दमयन्ती कदाचित् आगे कहना चाहती थी—‘अपनी एक मर्यादा रखती हूँ।’

भरे मेले में दस-बीस आदमियों के बीच अपनी पत्नी के इस विरोध में अपमान अनुभव करता हुआ रामप्रसाद फिर आगे बढ़कर दूसरी ओर दूसरा तमाचा मारता हुआ बोला—“स्वतन्त्र भारत की सभ्य नारी ! मैं हर नारी को आज भी पति का गुलाम समझता हूँ।”

दमयन्ती की आँखों में आँसू छलक आये थे। उसने उत्तर दिया—“मैं ऐसा नहीं समझती। एक तुम क्या, मुझे किसीकी गुलामी स्वीकार नहीं।”

रामप्रसाद पूरी शक्ति लगाकर उच्च स्वर से धमकी देता हुआ बोला—“स्वीकार नहीं ? स्वीकार नहीं ? बताऊँ फिर स्वीकार है कि नहीं !”

दमयन्ती किसी प्रकार दबने को तैयार न थी। उसने फिर भी यही कहा—“मैं नहीं मान सकती, किसी तरह नहीं मान सकती।”

रामप्रसाद ने उत्तर दिया—“तुझे मानना पड़ेगा।”

रात और प्रभात

इस कथन के साथ उसने चाहा कि दमयन्ती का गला दबा दे । उसकी दोनों मुट्ठियाँ बँध गईं, होंठ फड़कने लगे और वह दाँत पीसकर किटकटाने लगा ।

सोमवती अमावस्या का पर्व, गंगा का वह पवित्र तट और कानपुर जैसा नगरों का नगर । सैकड़ों आदमियों ने इस नाटकीय दृश्य को अपनी खुली आँखों से देखा । पर हाय रे हमारे देश का राष्ट्रीय चरित्र कि किसी सम्य नागरिक में यह साहस न उत्पन्न हुआ, जो आगे बढ़कर रामप्रसाद के सामने अकड़कर खड़ा हो जाता और कहता कि यह सार्वजनिक स्थान है । वहाँ आपको किसी भी व्यक्ति के अपमान करने का अधिकार नहीं है । जो बातें मैंने सुनी हैं, उनसे उत्तेजना फैलती है, शांति-भंग होती है । आप स्नान करने के लिए आये हैं, हत्या करने के लिए नहीं ।

इस भीड़ में एक ऐसा सिपाही भी था, जो इण्टरमीडिएट तक पढ़ा हुआ था । भीड़ देखते ही वह भट से उसी ओर बढ़ गया । अन्दर आते ही उसने पूछा—“क्या बात है ?”

एक व्यक्ति ने संक्षेप में सारी कथा सुना दी ।

सिपाही को अन्त में कहना ही पड़ा—“अगर अपना भला चाहते हो, तो चुपचाप नहाकर लौट जाओ । भगड़े वाली कोई भी बात हुई, तो मैं अभी तुम दोनों को हवालात में बन्द करवा दूंगा । मुझे तो इस बात पर भी शक हो रहा है कि तुम दोनों शादी-शुदा हो । हर एक आदमी की इज्जत होती है । और यहाँ मेले के अन्दर तुम अपनी स्त्री को मार-पीटकर उसकी बेइज्जती करते हो ! यह बात समझ में नहीं आती ।”

बस, सिपाही का इतना कहना था कि रामप्रसाद के मुँह से निकल गया—“क्या बकता है ? तीन कौड़ी का आदमी हम पर शान जमाने आया है । यह मेरी औरत है—शादी-शुदा औरत है । मैं इसे मार भी सकता हूँ ।”

सिपाही ने फौरन सीटी दी और बात-की-बात में चार-पाँच

रात और प्रभात

सिपाहियों ने दौड़कर रामप्रसाद को घेर लिया। उनका अभिप्राय यह था कि इन दोनों को एक इक्के में बैठाकर कोतवाली की ओर ले चलें।

इतने में दमयन्ती बोल उठी—“आप लोगों की इस कृपा के लिये मैं कृतज्ञ हूँ। पर अब आप हमें हमारी इच्छा पर छोड़ दीजिये। विवाद हमारा व्यक्तिगत है। किसी आदमी या पुलिस के बीच में पड़ने की कोई आवश्यकता नहीं है।”

इसी समय कहीं से घूमते-घामते हुए छोटे भैया आ पहुँचे। सिपाहियों के साथ सपत्नीक रामप्रसाद को देखते ही निकट आकर उन्होंने पूछा—“क्या बात है? इनको पकड़कर आप कहाँ लिये जा रहे हैं?”

दमयन्ती ने संक्षेप में सारा हाल बतला दिया। तब छोटे भैया सिपाहियों को लक्ष्यकर बोले—“जाने दीजिये। इतना ही काफी है।”

सिपाही ने उत्तर दिया—“इस बदमाश को तो मैं किसी तरह छोड़ ही नहीं सकता। एक बार जब तक इसकी मरम्मत न कर लूँगा तब तक मुझे तसल्ली न होगी। एक तो इसने जुर्म किया है, दूसरे ऐंठता है। इसके सिवा इसने मेरी बेइज्जती भी की है।”

“मुझे भी यही देखना है कि ये मेरी मरम्मत करवाते हैं, या मैं इनकी मरम्मत करवाता हूँ। बहुत होगा, हजार-दो-हजार रुपये खर्च हो जायेंगे। किसी भले आदमी या औरत के मुँह पर यह कह देना आसान है कि तुम शादी-शुदा नहीं हो।”

एक आतंक-सा दिखलाता हुआ रामप्रसाद बोल उठा।

“शक होने पर कहा ही जाता है।” सिपाही ने उत्तर दिया।

“बड़ी खराब बात है। ऐसा आपको नहीं कहना चाहिए था।”

छोटे भैया को बोलना पड़ा।

“अफ़सोस कि आप लोग पढ़े-लिखे आदमी होकर अपनी इज्जत का ख्याल नहीं करते। पर हम पुलिस के सिपाहियों को तो अपनी ड्यूटी का

ख्याल करना ही पड़ेगा । भले ही उसका यही नतीजा हो, जो इस वक्त हमारे सामने है ।”

धीरे-धीरे भीड़ बढ़ने लगी थी । भीड़ के साथ-साथ शोर भी बढ़ता जाता था । तब तक दूसरे सिपाही के मुँह से निकल गया—
“जाइये साहब । जो चाहिए सो कीजिये, मगर मेले में दंगा-फसाद तो मत कीजिये ।”

फलतः रामप्रसाद दमयन्ती को लेकर पुनः सरसैया घाट की ओर लौट पड़ा ।

अब तक छोटे भैया और रामप्रसाद में परस्पर कोई बात नहीं हुई थी । अतः दमयन्ती बोल उठी—“अब नन्दोई के पैर छुए बिना मैं तो मानूंगी नहीं । तुम्हें जो करना हो, कर लेना ।”

कथन के साथ उसने छोटे भैया के पैर छू लिये ।

रामप्रसाद का क्रोध शान्त हो चला था । उसने झुककर उनके वरण छूते हुए कह दिया—“आज तो इनके पैर छूने में मुझको भी कोई बुराई नहीं जान पड़ती । उस दिन धक्का देकर जिसने घर से बाहर निकाल दिया, वही आज ऐसे वक्त बिना बुलाये आकर थोड़ी मदद कर रहा है, तब पुराने अपमान का घाव तो भर ही सकता है ।”

उत्तर में छोटे भैया मुस्कराते हुए जब अलग होने लगे, तो दमयन्ती ने तुरन्त उनका हाथ पकड़कर कह दिया—“अब जाते कहाँ हो ? उधर चलो गंगा किनारे । बिना कुछ खिलाये चला जाने दूँ तो पर्व का दिन मेरे लिये व्यर्थ हो जायगा ।”

रामप्रसाद दमयन्ती की ओर दृष्टि डालते हुए धूर कर रह गया ।

इस समय उसे बारम्बार यही स्मरण आ रहा था कि यदि आवेश में आकर मैंने इस भानुचन्द्र से बदला चुका लिया होता, तो इस समय अचानक मेरी सहायता कौन करता ?

जब छोटे भैया रामप्रसाद और दमयन्ती के साथ चल पड़े, तो उस

रात और प्रभात

भीड़ के बीच उन्होंने किसीसे कुछ कहना उचित नहीं समझा। पर जब एक घाट पर दोनों अपने-अपने कपड़े रखकर नहाने के लिए तत्पर हुए, तो छोटे भैया ने कहा—“देखो भाई, मुझे गलत मत समझना। हमारे बीच में जो अन्तर आ गया है, उसने हमारे सम्बन्धों में भी अन्तर डाल दिया है। सड़क पर पुलिस के सिपाही तुमको पकड़े हुए थाने लिए जा रहे थे। वहाँ तुम्हारी जगह अगर कोई और होता, तो उसको भी मैं इसी तरह छुड़ा देता। केवल एक मनुष्यता का नाता है, जिसको निभाने के लिए हमें सदा और सर्वत्र तत्पर रहना पड़ता है। पर अब मेरी राह अलग है। यहाँ मैं कुछ खाऊँ-वाऊँगा नहीं।”

दमयन्ती अपने वस्त्र उतार रही थी। यकायक उसके हाथ रुक गये और गले के निकट इकलाई की नीली किनारी के छोरों को बायें हाथ से साधते हुए बोल उठी—“हाय, यह तुम क्या कह रहे हो छोटे भैया ! एक तो तुमने हमारे घर आना-जाना छोड़ दिया। दूसरे अब जो यहाँ अचानक मिल भी गये, तो रुक नहीं रहे हो। लड़ाई-भिड़ाई तो घर-घर चलती है पर भला ऐसी निठुराई कोई करता है।”

“नहीं भाभी, मुझे जाना ही होगा। तुम्हें मालूम नहीं, बड़े भैया कैसे कठोर स्वभाव के हैं ?”

“तुमको खुद नहीं मालूम है कि बड़े भैया कैसे उदार स्वभाव के हैं ? वे कुछ न कहेंगे। लोग बेकार उनसे डरते हैं।”

“नहीं-नहीं भाभी, मुझे क्षमा कर दो। बस, इतना बहुत है।”

रामप्रसाद चुपचाप खड़ा यह बातें सुन रहा था। बोला—“हाँ-हाँ जाओ, छोटे भैया। तुम भी छोड़ दो हमको। बल्कि अच्छा तो यही होता, मेरी सहायता भी न करते।”

दमयन्ती बोल उठी—“मगर लड़ाई इनके साथ है तुम्हारी सबकी कि मेरे साथ ?”

छोटे भैया ने उत्तर दिया— “इसके साथ होने के कारण तुम्हारे

रात और प्रभात

साथ भी माननी पड़ेगी। ऐसा तो हो नहीं सकता कि अवसर आने पर तुम इनका पक्ष छोड़कर मेरा पक्ष लो।”

साहस के साथ दमयन्ती बोली—“क्यों नहीं हो सकता ? मतामत के सम्बन्ध में हम सब स्वतन्त्र हैं।”

इसी क्षण रामप्रसाद ने कह दिया—“कोई स्वतन्त्र नहीं, सब परतंत्र हैं। कहीं स्वभाव और मन का मेल जोर पकड़ लेता है और कहीं हमारा स्वार्थ। छोटे भैया स्वयं परतन्त्र हैं। बड़े भैया का डर खाये जा रहा है। उनके विरुद्ध एक कदम तो चल नहीं सकते। अभी पढ़ाई का खर्चा बन्द कर दें, तो आटा-दाल का भाव मालूम हो जाय।”

कथन के साथ वह थोड़ा हँसा और जेब से पैसे निकालकर सिगरेट सुलगाता हुआ बोला—“तुम जाओ छोटे भैया; जाओ न ? तुम्हें रोकता कौन है ?...हँ-हँ, कहते हैं—केवल एक मनुष्य का नाता है।”

छोटे भैया धीरे-धीरे भीड़ में घुसते हुए पश्चिम की ओर चल पड़े।

उस समय बारम्बार कोई भीतर से कह रहा था—‘सचमुच कोई स्वतन्त्र नहीं। रामप्रसाद ठीक कहता है।’

६

छोटे भैया बोले—“अरे कीर्ति, तुम आज अच्छे आ गये। हमारे साथ आज शाम को एक जगह तुम्हें चलना पड़ेगा।”

खाना खाने के बाद कीर्ति पलंग पर लेट रहा था। छोट की एक रेशमी रजाई उसके बदन पर पड़ी थी। पतले-पतले मुलायम दो तकिये उसके सिरहाने रखे हुए थे, जिन पर मखमल का आवरण था। एक नीले रंग का और दूसरा कंधारी अनार के रंग का। हाथ-घड़ी उसकी बाईं कलाई में बँधी हुई थी। उसका फीता स्टील का था। छोटे भैया पलंग के पास पड़ी हुई छोटी आराम कुर्सी पर बैठ गये।

उसी समय कीर्ति बोला—“छोटे मामा, मैं तो अक्सर आता ही रहता हूँ, मगर तुम हमारे यहाँ कभी नहीं आते। अम्मा तुम्हारी बहुत याद करती हैं।”

भानुचन्द हँस पड़ा। बोला—“अच्छा, यह मुझे आज ही मालूम हुआ।”

“तुमको आश्चर्य हो रहा है। वैसे तो आज वे मेरे साथ आने वाली थीं, पर फिर बोलीं—‘होली आ गयी। अब कैसे जाऊँ?’ मगर ऐसा

दिन नहीं जाता, जब तुम्हारी पसन्द की चीजों का नाम ले-लेकर वे तुम्हारी याद न करती हों।”

“जैसे ?”

“जैसे उन्होंने अभी कल ही बतलाया, छोटे भैया को करेला बहुत पसन्द है। मगर आजकल तो जाड़े के दिन हैं, अगर उसे बुलाया भी जाय.....।”

बात अभी यहीं तक हो पायी थी कि विमला आ पहुँची। बोली—
“छोटे मौसिया, देखा तुमने, उर्मिला ने यह पदक अपनी सुन्दर गुड़िया बनाने की प्रतियोगिता में पाया है।”

छोटे भैया पदक उसके हाथ से लेकर देखने लगे।

विमला को लक्ष्यकर मुसकराता हुआ कीर्ति बोल उठा—“अगर किसी ऋतु में करेला न मिले तो मेरा ख्याल है विमला उसकी पूर्ति कर सकती है।”

आँखों की पलकों को चढ़ाती-गिराती कृत्रिम गम्भीरता के साथ विमला बोली—“आवश्यक न होने पर भी जब आप इस तरह बोल उठते हैं तब मैं यही सोचने लग जाती हूँ, जो लोग कभी नहीं सोचते कि वे कह क्या रहे हैं वही हमेशा अधिक बोलते हैं। यद्यपि मैं यह मानती हूँ कि इस युग में जो अधिक बोलता है वही अधिक पढ़ा-लिखा समझा जाता है।”

पहले छोटे भैया और फिर कीर्ति एक दूसरे की ओर देखते हुए हँस पड़े। फिर छोटे भैया ने उठते हुए घुएँ की ओर देख कर कह दिया—
“मैं अभी आया कीर्ति।” और कथन के साथ ही वह अपने कमरे में जा पहुँचा, जहाँ उर्वी उसके रूमाल पर डोरे डाल रही थी।

कीर्ति कुछ संकुचित हो उठा था। जान-बूझकर उसने विमला पर आक्षेप किया था, इसलिए विमला के ऐसे उत्तर पर उसको कोई विशेष आपत्ति न थी। फिर भी वह सोचने लगा—“शुभसे यह गलती हुई

रात और प्रभात

कैसे ?” तभी उसे ध्यान हो आया कि कुछ भी हो, इस समय मुझे कोई ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये, जो इसको बुरी लगे। अतः स्वाभाविक रूप से वह बोला—“करेल। कडुआ होने पर भी होता बड़ा स्वादिष्ट है। इसे कौन नहीं जानता। छोटे मामा से मैं अभी इसी विषय में कुछ कहते जा रहा था। लेकिन यह मुझे अभी मालूम हुआ कि ऐसी सुन्दर उपमा भी तुमको खल सकती है। अच्छी बात है। अगर मेरा कुछ भी कहना तुमको बुरा लगता है, तो भविष्य में मैं तुमसे बोलूंगा ही नहीं। बस ! अभी दोपहर में आया हूँ और शाम को छै-चालीस की गाड़ी से चला जाऊँगा। फिर कौन जाने कब आना हो।”

“बड़ी कृपा होगी आपकी। चले मुझ पर धौंस जमाने। मैं चला जाऊँगा अभी। चले जाओ न ? चले जाओगे तो फिर न आओगे ? नहीं भी आओगे तो मुझे क्या ? आज नहीं तो कल बुआ आने वाली हैं। तुम्हारे विषय में जितनी शिकायतें मुझे करनी हैं, उनमें से एक भी बाकी न रक्खूंगी।”

पहले हा-हा करके हँस पड़ा कीर्ति फिर बोला—“जैसे ?”

“जैसे जलपान को मिठाई रक्खी जाती है तो इस तरह छोड़ देते हैं जैसे उसमें पैसा ही नहीं लगा है। बढ़िया-से-बढ़िया खाना बनाकर परोसा जाय, मगर बिना बुराई निकाले तबीयत ही नहीं भरेगी। इसमें मिर्च कम है, इसमें नमक ज्यादा है। खीर गुड़ की बनी है क्या ? यह पूरियाँ हैं कि बताशे ? स्टेशन से सीधे घर नहीं आते। सिनेमा देखने जाते हैं तो साथियों का टिकट खुद खरीदते हैं। मिनट-मिनट पर भगड़ा किये बिना खाना हजम नहीं होता। और बताऊँ ?”

कीर्ति हँसने लगा। बोला—“बस, बस, इतना काफी है। चलो यह बड़ा अच्छा हुआ, जो पहले ही सब बतला दिया। अब चाहे जो कुछ कहोगी, अम्मा उस पर विश्वास न करेंगी। यों भी अभी तक तुमने कोई ऐसी नई बात तो कही नहीं, जो उन्हें न मालूम हो।”

रात और प्रभात

यह बातें हो ही रही थीं कि उर्मिला आ पहुँची। बदन पर कुर्ता, पैरों में गरारा। कुर्ते के ऊपर हरे, नीले छींटों का ऊनी स्वेटर और केशों में लाल रिबन।

आते ही बोली—“भाई साहब, आपको ताऊ जी याद कर रहे हैं।”

कीर्ति ने पूछा—“बड़े मामा?”

उर्मिला ने उत्तर दिया—“हाँ।”

इतने में विमला जाने लगी तो कीर्ति ने कह दिया—“ठहरो। उस बार जब मैं आया था तो तुम्हारा आइना मेरे सूटकेस में चला गया था। उसे लेती जाओ।”

विमला ने उत्तर दिया—“लाइये, लाइये। मगर मुझे ऐसा ख्याल पड़ता है कि आप और भी कोई चीज ले गये थे। याद नहीं आ रही है कौन-सी चीज और तुमको तो याद आने से रही। आश्चर्य है कि इस आइने की याद कैसे आ गई!”

कीर्ति चारपाई से उठकर खड़ा हो गया। बोला—“वैसे तो और कोई चीज मैं ले ही नहीं गया और आगे ले जाने का कभी इरादा भी न करूँगा। अगर इतना विश्वास रखो कि यदि कोई चीज चली भी जायेगी धोखे में, तो मैं उसे वापस अवश्य कर दूँगा, ज्यों-की-त्यों।”

आइना पाकर विमला मुसकराती हुई बोली—“और इसके साथ मैं कंघा भी तो था।”

और कीर्ति के ये शब्द उसके मानस पर तैरने लगे—“यदि कोई चीज चली भी जायेगी धोखे में, तो मैं उसे वापस अवश्य कर दूँगा ज्यों की त्यों!”

“ओह! कंघा। कंघा तो मेरा ख्याल है, नहीं था।”

“था कैसे नहीं।”

कथन के साथ उसके मन में आया—“वैसे तो और कोई चीज मैं ले नहीं गया और आगे ले जाने का इरादा भी न करूँगा।”

रात और प्रभात

कीर्ति अपना सूटकेस देखने लगा—“इधर देखा, उधर देखा । फिर कंधा निकालकर विमला से पूछा—“यह तो नहीं है ?”

विमला ने देखते ही हँसते-हँसते कह दिया—“यही तो है ।”

“मगर यह तो मेरा है ।”

“तुम्हारा कैसे है ?”

“उसमें मेरे नाम का पहला अक्षर ‘के’ जो बना हुआ है ।”

“ऐसा भी तो हो सकता है कि नाम का अक्षर बाद में लिख लिया हो ।”

“ऐसा नहीं हो सकता । कम-से-कम मैं ऐसा नहीं कर सकता । खैर ठहरो, मैं अभी आता हूँ । कथन के साथ कीर्ति बड़े भैया के पास जा पहुँचा ।”

“कहो कीर्ति, अबकी बार बहुत दिनों में आये ?”

“हाँ मामा जी, बात यह है कि आजकल दुगुनी मेहनत पड़ रही है । पढ़ाना तो पड़ता ही है, साथ में प्रबन्ध का भी शोध-कार्य चलता रहता है ।”

“तो यह क्रम कब तक चलेगा ?” मतलब यह कि थीसिस कब तक ?”

“अब बस पूरा होने ही को है । इसी वर्ष परीक्षण के लिये उसे उपस्थित कर देना है ।”

“तो यह कहो कि डॉक्टर की उपाधि कहीं अगले जाड़ों में मिल पायेगी ।”

“उपाधि तो तभी मिलेगी। हाँ, घोषणा सम्भव है जल्दी में हो जाय।”

“लेकिन नौकरी तो तुमको मिल ही गई है। अब इस उपाधि के मिल जाने का तात्कालिक लाभ क्या मिलेगा?”

यह विषय ऐसा था, जिसपर कीर्ति स्वयं अनिश्चित अवस्था में था। अतः उसने उत्तर दिया—“गतिविधि के सम्बन्ध में मैं अबतक कुछ भी निश्चय नहीं कर सका कि आखिर यह है सब क्या। कभी काम हो भी जाता है। कभी लाख प्रयत्न करने पर भी नहीं होता। जब हो जाता है, तब भी ऐसा कोई खास प्रयत्न नहीं करता। इसके विपरीत जब नहीं होता तब प्रयत्न में कोई बात बाकी नहीं रखता। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि अब तक के जीवन में तीन बार पढ़ना छोड़ चुका हूँ। पिता जी से जहाँ तक पढ़ने का सम्बन्ध है कभी सहारा नहीं मिला। और छोटे-बड़े कक्का के मनोभाव तो प्रारम्भ से ही मेरे विरुद्ध थे, जो अब तक नहीं सुधर पाये। नवें में भरती हो जाने के बाद जब फेल हो गया तब आपको मालूम ही है कि आसाम में मुझे सेना के पूर्ति विभाग में नौकरी मिली थी। दो-तीन वर्ष वहाँ रहने के बाद जब मैं यहाँ छुट्टी लेकर आया तो देखा अम्मा बहुत बीमार है। लाचार होकर उस नौकरी से सदा के लिये छुट्टी लेनी पड़ी। अचानक एक दिन मिल गये छोटे मामा, कुछ छात्र उनके सामने खड़े हुए थे। सबके हाथ में हाई स्कूल का फार्म था। उन्होंने सलाह दी—“क्यों न तुम भी फार्म भर दो।”

इतने में बड़े भैया बोल उठे—“मुझे सब मालूम है कीर्ति।”

उसके बाद कीर्ति ने कहा—“हाँ, आपको तो सब मालूम ही है। अब दो बातें कहकर मुख्य विषय पर आता हूँ। हाई स्कूल पास हो जाने के बाद एक दिन ट्रेन में अचानक एक क्लिश्चियन से भेंट हो गयी। मेरे मुँह से निकल गया—“आप लोग धर्म के नाम पर सब कुछ उत्सर्ग

रात और प्रभात

कर सकते हैं किन्तु मानवता के नाम पर कुछ भी नहीं कर सकते । गिरजाघर में जाकर सरमन सुनते-सुनते खुद रो सकते हैं लेकिन रोते हुए गरीब मजदूर की रोटियों का प्रबन्ध नहीं कर सकते ।

“बड़े भैया हँस पड़े । बोले—“रास्ता चलते लड़ाई’ इसी को कहते हैं ।”

कीर्ति कहता ही गया—“परिणाम यह हुआ कि उसने मुझे अपने कालेज में भर्ती कर लिया । इस तरह मैंने बी० ए० कर लिया । कभी-कभी खर्चा घर से मिल जाता था । घर से तो नहीं केवल अम्मा से । क्योंकि घर और चीज थी । यह सहायता मुझे चोरी-चोरी मिलती थी । उस साल जाड़े के दिन आ गये थे । मेरे पास कपड़े न थे । मैंने मि० जेम्स से कहा । कुछ ऐसी बात हुई कि उन्होंने मुझे हजरत गंज की एक लाँड्री में रात की नौकरी दिलवा दी । इस तरह गाड़ी थोड़ा और आगे खिसकी ।”

बड़े भैया बोल उठे—“तुम अपनी कथा मत सुनाओ हमको । मूल बात कहो ।”

तब कीर्ति ने कह दिया—“मूल बात यह है कि डॉक्टर हो जाने के बाद यद्यपि मेरा अधिकार बढ़ जायगा, तथापि मैं उस संस्था में रहूँगा ही, यह निश्चित नहीं ।”

बड़े भैया ने आश्चर्य के साथ पूछा—“क्यों ?”

कीर्ति लिहाफ़ को पैरों पर डालते हुए बोला—“क्योंकि जहाँ मैंने अधिकार के क्षेत्र में प्रवेश किया, वहाँ एक नयी जिम्मेदारी मेरे सिर पर लद जायगी ।”

उत्सुकता के साथ बड़े भैया बोले—“तुम्हारा मतलब क्या है ?”

“मतलब यह है कि धार्मिक प्रचार में समय देना मेरे लिये आवश्यक हो जायगा । और इसका मतलब यह होगा कि क्रिश्चियन न होने पर भी मुझे उद्घोषित क्रिश्चियन बनना पड़ेगा ।”

रात और प्रभात

‘बड़े भैया हँस पड़े । बोले—“तो क्या होगा ?”

कीर्ति बोला—“और यही बात मुझसे सहन न होगी । आज अगर प्रभु ईसा का दर्शन प्राप्त करने का सौभाग्य मुझे मिल जाय तो मैं उनके चरणों पर अपना सिर रखकर अन्तरात्मा के सारे रुद्ध द्वार खोलकर आँसुओं से प्रक्षालन कर सकता हूँ । लेकिन कर्महीन, मर्महीन, और कृत्रिम भाषा में ईसाई मत का प्रचार नहीं कर सकता । क्योंकि सब धर्मों का एक धर्म सत्य और केवल सत्य है । याद नहीं आता किसने कहा है कि सच्चा धर्म हृदय की कविता है, आत्म-समर्पण है । अगर पृष्ठभूमि में निर्भयता नहीं है और मन की सभी ग्रंथियां खुल नहीं पायी हैं तो हमने धर्म को समझा ही नहीं । जिसमें मनुष्यता नहीं, वह धार्मिक हो ही नहीं सकता ।”

कीर्ति का यह बयान सुनकर बड़े भैया बोल उठे—“चलो, इतना तो प्रत्यक्ष देख रहा हूँ कि इन धर्म-प्रचारकों के सम्पर्क में आकर मंच पर वक्ता देना, तुम सीख गये हो । अच्छा, अब एक बात बताओ । अगर इस संस्था ने तुमको न छोड़ा तब फिर क्या करोगे ?”

कीर्ति ने उत्तर दिया—“संस्था मुझे रख नहीं सकती । एक संस्था क्या, कोई वस्तु मुझे खरीद नहीं सकती ।”

“इसका अभिप्राय तो यह हुआ कि हृद् आस्था तुम्हारे मन में किसीके प्रति नहीं है ! अनास्थावादी हो तुम !”

“नहीं, मामा जी, ऐसी बात नहीं । मैं वन में रह सकता हूँ अगर वहाँ मूख धनिकों का स्वर मुझे कहीं सुनायी न पड़े । मैं सड़क पर सो सकता हूँ ; अगर फुटपथों से गुजरने वाले रेशम के लबादों में मृत, नग्न, भूखी, त्रस्त, जीराँ और जर्जर आत्माओं की चीत्कार-ध्वनियों और सिसकियाँ मुझे सुनायी न पड़ें । क्षमा कर्जिएगा मामा जी, मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि कुछ अपवादों को छोड़कर आज संसार में

रात और प्रभात

“जितने भी धर्माचार्य हैं, उनके हाथ में अमृत-पात्र नहीं, ऐसी बोतलें हैं जिनमें शैतान की शराब भरी हुई है।”

“कहते तो तुम ठीक हा कीर्ति।” उत्साहित-से बड़े भैया बोले—
“लेकिन क्या कहना ही यथेष्ट होता है ? अरे भाई, करना भी तो कुछ पड़ता है। माना कि ज्ञान बड़ी चीज है। मगर बिना कर्म के ज्ञान वैसा ही है, जैसे नारी विवाहिता होने पर भी, अंत तक बाँझ ही रह जाय। प्रश्न यह है, आज तक के जीवन में तुमने क्या किया ? अपने ही लिये किया न ! अपने भाइयों के लिये क्या किया ? समाज और जनता के लिये क्या किया ?”

कीर्ति पहले कुछ संकुचित हुआ, फिर तनकर बोला—“बाहू मामा जी, बहुत दिनों के बाद एक सच्चा गुरु मिला है। मुख्य बात यही है जो आपने कही। मैं अब तक इसी तैयारी में लगा हुआ था। मनुष्य होना ही तो कठिन है। सो मामा जी मैं मनुष्य, सच्चे अर्थों में मनुष्य बनने की चेष्टा में हूँ। सिर उठाने का अवसर अब मिला है। कई दिनों से सोच रहा हूँ कि कुछ करूँ। इधर तो कई वर्षों से अध्ययन कर रहा था। आपको मालूम होना चाहिये कि मेरे अधिनिबंध का विषय ही है—कर्मवाद के मूल सिद्धान्त। मैं जिस मोहल्ले में रहता हूँ उसमें जितने भी जीविका-विहीन नर-नारी हैं पहले उनकी एक सूची मैंने बनायी। फिर धीरे-धीरे उनके जीवन-निर्वाह के साधन छुटाने की चेष्टा की। किसीको सूत, कातने का काम सौंप रक्खा है, किसीको सिलाई का। कोई पुस्तकों के लिये छपे हुये फार्म की मुड़ाई और भंजाई का काम करता है। कुछ अनाथ लड़कों को जिल्दसाजी का काम भी मैंने सिखाया है। ऐसे ही लोगों की एक उद्योग-शाला है जिसे उद्योग-मन्दिर कहते हैं। अब तो उसमें सब मिलाकर कोई चालीस-पचास आदमी काम कर रहे हैं।”

इतने में छोटे भैया ने आकर कहा—“कीर्ति, जाने से पूर्व मुझसे मिल लेना ।”

कीर्ति ने सिर घुमाकर उत्तर दिया—“अवश्य ।” छोटे भैया चले गये ।

बड़े भैया प्रसन्न हो उठे । बोले—“यह तुम अच्छा कर रहे हो । हमारे पास स्थान की कमी है, नहीं तो और आदमी बढ़ाये जा सकते हैं ।”

कीर्ति ने चश्मे के लेंस को मखमल के टुकड़े से घिसते हुये कहा—
“एक बात और है । यह मुझसे सहन नहीं होता कि कुछ लोगों को तो काम दिया जाय और बाकी लोगों से कह दिया जाय—अभी जगह खाली नहीं है । जब जगह खाली होगी, तो तुमको भी मौका दिया जायगा । रात-दिन में सोचा करता हूँ, क्या यह बेईमानी नहीं है ? यहाँ सवाल यह उठता है—जगह खाली क्यों नहीं है ? या तो हृदय में जगह नहीं है, बुद्धि में सूक्ष्मता नहीं है, मानस में क्रियात्मक कल्पना-शक्ति नहीं है या फिर सारा का सारा वाक्जाल है । काम सबको मिलना चाहिये । इसलिये मैंने ऐसा प्रबन्ध किया है कि कोई भी आदमी बेकार न रहे । चाहे हफ्ते में छः दिन के बजाय तीन दिन ही काम करने का अवसर क्यों न मिले । लेकिन मिले सबको । आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि आज हमारे मोहल्ले में कोई आदमी बेकार नहीं है । मैं उस दिन का स्वप्न देख रहा हूँ जब हमारे नगर में कोई भी आदमी बेकार न रहेगा ।”

बस, कीर्ति का इतना कहना था कि बड़े भैया के मुँह से निकल गया—“यह तुमने बहुत अच्छा किया है कीर्ति । आज बहुत दिनों की संचित आकांक्षा तुमने पूरी कर दी । अच्छा, अब एक बात का ध्यान रखना । अगर कभी केवल पैसे के कारण इस योजना के विकास में कोई बाधा जान पड़े, तो सीधे मेरे पास चले आना । भगवान् के बड़े-

रात और भ्रमात

बड़े हाथ हैं, सब कुछ हो सकता है। केवल कुछ करने की भावना हममें होनी चाहिये।”

इतना कहते हुये बड़े भैया उठ खड़े हुये और बोले—“अच्छा, मैं तो इस समय कुछ दूर घूमने जाऊँगा। तुम आज तो रहोगे न?”

कीर्ति ने हँसते हुये कह दिया—“आज तो नहीं, पर अगले रविवार को मैं इस विषय में अपनी पूरी योजना आपके सम्मुख रखूँगा।”

इसी समय उर्मिला आ पहुँची और बोली—“आप को बड़ी अम्मा ने बुलाया है।”

उसके हाथ में ऊन का लच्छा था और दो सलाइयाँ।

कीर्ति हँसता हुआ बोला—“अच्छा चलो।”

वह जब अन्दर जाने लगा तो रास्ते में विमला खड़ी-खड़ी हँस रही थी। कीर्ति को देखकर बोल उठी—“न यह कंधा मेरा है न आइना। आप अपनी दोनों चीजें लेते जाइये।”

कीर्ति ने उत्तर दिया—“नहीं-नहीं, आइना तुम्हारा ही है।”

“मेरा कैसे है? उसमें तुम्हारे नाम का पहला अक्षर ‘के’ जो लिखा हुआ है।”

अब कीर्ति पकड़ा गया। हास के प्रकार में उसके मुँह से निकल गया—“विमला, तुम्हारा ही सन्देह सही है। हो सकता है, मैंने दोनों चीजों को अपना समझकर उन पर अपना ही नाम—संकेत अंकित कर दिया है।”

उत्फुल्ल विमला गम्भीर होकर बोली—“अपनी त्रुटि का पता लगने के बाद जिन्हें उसका शोध करने में संकोच नहीं होता, उनका अधिकार इतना असाधारण होता है, मैं नहीं जानती थी।”

विमला क्या कह रही है, कहते समय इसका ध्यान जान पड़ता है, झूल ही गयी थी। क्षण भर में ही उसे बोध हो गया। एक बार जिज्ञा

बाहर निकालकर वह बिना किसीसे कुछ कहे अपने एकान्त कमरे में चली गयी ।

थोड़ी देर बाद कीर्ति बड़ी, मंभली और छोटी मामी के बीच, जब चाय पीकर भानु को साथ ले, बाहर जाने लगा, तब छोटी बहू ने कमरे के अन्दर पंर बढ़ाते हुए जो दृश्य देखा, उस पर उसे आश्चर्य हो उठा ।

लिहाफ को सिर से ढके हुये विमला लेटी हुई थी ।

क्षणभर रुककर छोटी बहू ने किसी आशंका के साथ उसका शिरोभाग खोलने की चेष्टा की, तो अपनी भावना को छिपाती हुई-सी विमला भट आंचल से आंसू पोंछने लगी ।

चलते समय जब कीर्ति छोटे भैया से मिलने आया तो उन्होंने बतलाया—‘ मेरी एक कविता तुमको ठीक करनी पड़ेगी कीर्ति ।’

कीर्ति ने उत्तर दिया—“कविता और मैं !”

छोटे भैया बोले—“बनो मत, मुझे सब विदित है ।”

कीर्ति ने मुस्कराते हुये पूछा—“क्या-क्या विदित है, बतलाओ ।”

छोटे भैया ने कह दिया—“विश्व-विद्यालय में श्रेष्ठ कविता पर तुमको दो बार पुरस्कार मिल चुका है ।”

कीर्ति ने उत्तर दिया—“पर वे कविताएँ तो मैंने सोते-सोते उठकर लिखी थीं ।”

“तो मेरी इस कविता को जगते-जगते सोते हुये ठीक कर देना ।”

दोनों हँस पड़े ।

अगले रविवार को बड़े भैया ने अन्दर आते-आते रुककर कहा—
“लो, सुभद्रा आ गयी ।”

कथन के साथ वे पुनः बैठक में चले गये ।

उनका इतना कहना था कि बड़ी, मंभली और छोटी बहू सबकी-

रात और प्रभात

सब तुरन्त अपने-अपने हाथ का काम छोड़ आँगन में आ गयीं। सबसे पहले बड़ी बहू ने सुभद्रा की चादर उतारी; फिर छोटी, मँझली तथा बड़ी बहू ने क्रमशः उनके चरणों की रज मस्तक से लगायी। छोटी बहू एक पीतल की थाली ले आयी और एक चौकी वहीं, उसी स्थान पर उन्होंने सुभद्रा के आगे रख दी।

इतने में कुंदन लोटे में पानी और तौलिया दे गया। छोटी बहू साड़ी को आँखों के थोड़ा और ऊपर खिसकाती हुई बोली—“जोजी, तुम पानी छोड़ दो, तो मैं दीदी के पैर धो दूँ।”

मँझली बहू ने लोटा हाथ में लेते हुये कह दिया—“पानी मैं छोड़ती हूँ।”

इस तरह जब सुभद्रा का पाद-प्रक्षालन होने लगा, तो हँसती-हँसती रूमाल से मुँह ढकती और फिर अलग करती हुई विमला—कहाँ से बात शुरू करे और कहाँ रुक जाय, मानो मन-ही-मन यही सब चाहती और स्थिर करती हुयी, हाथ जोड़ती हुई सामने आ पहुँची। बोली—“नमस्ते ! नमस्ते बुआ जी।”

कथन के साथ थोड़ी रुककर—“मगर नमस्ते क्यों, लाओ बुआ जी मैं तुम्हारे चरण का अमृत ही न पान कर लूँ !”

“नही-नहीं, विमला बेटी। हमारे वहाँ बेटियाँ माता-वर्ग की स्त्रियों के पैर नहीं छूतीं। यह अधिकार तो केवल बहुओं को होता है।”

“होता होगा -” कथन के साथ मुँह बनाती हुई विमला बोली—अद्धा का अधिकार सबसे ऊपर होता है।” और झुककर जो सुभद्रा के चरणों की ओर हाथ बढ़ाने लगी, तो आगे के दो-तीन दाँतों से हीन, सम्यक् पोपले मुँह को खोलते हुए, सुभद्रा ने हँसते-हँसते कह दिया—“बस-बस, इतना बहुत है।”

उस समय छोटी बहू तौलिया से सुभद्रा के चरण पोंछ रही थीं।

बाहर निकालकर वह बिना किसीसे कुछ कहे अपने एकान्त कमरे में चली गयी ।

थोड़ी देर बाद कीर्ति बड़ी, मंभली और छोटी मामी के बीच, जब चाय पीकर भानु को साथ ले, बाहर जाने लगा, तब छोटी बहू ने कमरे के अन्दर पैर बढ़ाते हुए जो दृश्य देखा, उस पर उसे आश्चर्य हो उठा ।

लिहाफ को सिर से ढके हुये विमला लेटी हुई थी ।

क्षणभर रुककर छोटी बहू ने किसी आशंका के साथ उसका शिरोभाग खोलने की चेष्टा की, तो अपनी भावना को छिपाती हुई-सी विमला भट आंचल से आँसू पोंछने लगी ।

चलते समय जब कीर्ति छोटे भैया से मिलने आया तो उन्होंने बतलाया—‘ मेरी एक कविता तुमको ठीक करनी पड़ेगी कीर्ति ।’

कीर्ति ने उत्तर दिया—“कविता और मैं !”

छोटे भैया बोले—“बनो मत, मुझे सब विदित है ।”

कीर्ति ने मुस्कराते हुये पूछा—“क्या-क्या विदित है, बतलाओ ।”

छोटे भैया ने कह दिया—“विश्व-विद्यालय में श्रेष्ठ कविता पर तुमको दो बार पुरस्कार मिल चुका है ।”

कीर्ति ने उत्तर दिया—“पर वे कविताएँ तो मैंने सोते-सोते उठकर लिखी थीं ।”

“तो मेरी इस कविता को जगते-जगते सोते हुये ठीक कर देना ।”

दोनों हँस पड़े ।

अगले रविवार को बड़े भैया ने अन्दर आते-आते रुककर कहा—
“लो, सुभद्रा आ गयी ।”

कथन के साथ वे पुनः बैठक में चले गये ।

उनका इतना कहना था कि बड़ी, मंभली और छोटी बहू सबकी

रात और प्रभात

सब तुरन्त अपने-अपने हाथ का काम छोड़ आँगन में आ गयीं। सबसे पहले बड़ी बहू ने सुभद्रा की चादर उतारी; फिर छोटी, मँझली तथा बड़ी बहू ने क्रमशः उनके चरणों की रज मस्तक से लगायी। छोटी बहू एक पीतल की थाली ले आयी और एक चौकी वहीं, उसी स्थान पर उन्होंने सुभद्रा के आगे रख दी।

इतने में कुंदन लोटे में पानी और तौलिया दे गया। छोटी बहू साड़ी को आँखों के थोड़ा और ऊपर खिसकाती हुई बोली—“जीजी, तुम पानी छोड़ दो, तो मैं दीदी के पैर धो दूँ।”

मँझली बहू ने लोटा हाथ में लेते हुये कह दिया—“पानी मैं छोड़ती हूँ।”

इस तरह जब सुभद्रा का पाद-प्रक्षालन होने लगा, तो हँसती-हँसती रूमाल से मुँह ढकती और फिर अलग करती हुई विमला—कहाँ से बात शुरू करे और कहाँ रुक जाय, मानो मन-ही-मन यही सब चाहती और स्थिर करती हुयी, हाथ जोड़ती हुई सामने आ पहुँची। बोली—“नमस्ते ! नमस्ते बुआ जी।”

कथन के साथ थोड़ी रुककर—“मगर नमस्ते क्यों, लाओ बुआ जी मैं तुम्हारे चरण का अमृत ही न पान कर लूँ !”

“नही-नहीं, विमला बेटी। हमारे वहाँ बेटियाँ माता-वर्ग की स्त्रियों के पैर नहीं छूतीं। यह अधिकार तो केवल बहुओं को होता है।”

“होता होगा -” कथन के साथ मुँह बनाती हुई विमला बोली—अद्धा का अधिकार सबसे ऊपर होता है।” और झुककर जो सुभद्रा के चरणों की ओर हाथ बढ़ाने लगी, तो आगे के दो-तीन दाँतों से हीन, सम्यक् पोपले मुँह को खोलते हुए, सुभद्रा ने हँसते-हँसते कह दिया—“बस-बस, इतना बहुत है।”

उस समय छोटी बहू तौलिया से सुभद्रा के चरण पोंछ रही थीं।

सुभद्रा ने आशीर्वाद देते हुये कहा—“भगवान करे, जल्दी ही भतीजा खिलाने को मिले ।”

विमला ने बड़ी बहू की ओर देखते हुये कहा—“भौसी, मेरा ख्याल है, बुआ जी पहले चाय पियेंगी ।”

“ऐसा कर विमला कि रसोई में जो दाल का पानी चढ़ा हुआ है. उससे तो बना ले चाय और अँगीठी में जो आग सुलग रही है, उस पर साथ के लिए कुछ और ।

विमला भट उछलकर सूजी लेने चली गयी । फिर सब सामान जुटाकर अँगीठी के कोयले को पंखे की हवा से उद्दीप्त करती हुई बोली—“मेरी समझ में नहीं आता बुआ, तुम सब जनी हमेशा पुत्र होने का ही आशीर्वाद देती हो, पुत्री होने का आशीर्वाद कोई नहीं देता ।”

छोटी बहू ने हँसते-हँसते उत्तर दिया—“जब तुम्हारा विवाह हो जायगा और फिर नीके-नीके ऐसा शुभ दिन आयेगा, तब यही बात मैं समझिन जी को लिख दूंगी ।” और इतना कहकर वह फिर सुभद्रा की ओर देखते हुए बोलीं—“क्यों दीदी, ठीक है न ?”

“छोटी बहू जब तुम यह बात चिट्ठी में लिखोगी, तब उसमें इतनी बात मैं और जोड़ दूंगी कि बेटा तो तभी तक रहता है जब तक उसका विवाह नहीं होता; पर बेटी जीवन भर बेटी बनी रहती है ।”

“वाह ! क्या बात कही है बुआ जी आपने ?” कथन के साथ उसे ख्याल आ गया कि किशमिश रसोई-घर में मिल जायगी, लेकिन केसर तो मंझले भैया की अलमारी में है । इसलिए विमला उधर चल दी ।

कीर्ति अब तक बड़े भैया के पास बैठा बातें कर रहा था । अन्दर आते-आते भीतर की बातों की भनक कान में पड़ते ही वह बोला—“कौन कहता है कि बेटी जीवन भर बेटी बनी रहती है । मंझले मामा कह रहे थे—“रामप्रसाद की स्त्री विवाह के बाद से अपनी माँ के पास नहीं गयी । इसको तीन वर्ष हो गये । बड़ी मुश्किल से—मालूम नहीं

रात और प्रभात

किस तरह—कल साले साहब अपनी बहन को लेने के लिए आये हैं। रात के बारह-एक बज तक बहस चलती रही, फिर भी यह निश्चित नहीं हुआ कि वह जायगी ही।”

छोटी बहू बोल उठी—“तो लला, इसमें भौजाई बिचारी का कौन-सा दोष है?”

कीर्ति ने उत्तर दिया—“कोई कुछ भी कहे, हमारे घरों में राज स्त्री का ही चलता है। जिस स्त्री ने अपनी बेटी को बुलाया नहीं, वह भी किसी की बेटी है ! और वह बेटी तो है ही जिसने समय-समय पर मां के पास जाने के लिए सत्याग्रह नहीं किया ! स्वेच्छा के साथ स्वामी के साथ लगातार तीन वर्ष तक बनी रही !”

इस कथन के साथ जब वह मंझले भैया के कमरे में जाने लगा, तो वहां यकायक विमला को खड़ा देखकर रुक गया और बोला—“हलुआ मेरे लिए बना रही हो न !”

अधरों से मुसकान दबाती हुई विमला ने मुंह बनाकर उत्तर दिया—“ऊँ हूँ, अपने लिए !”

“उत्तर उत्तम कोटि का देना जानती हो। पर सदा नहीं, कभी-कभी।”

कीर्ति मानो यह व्यक्त करना चाहता था कि कठोर परीक्षक पूरे-पूरे अंक कभी नहीं देता। विमला बोली—

“बात यह है कि संसार को देखते हुए, कुछ लोगों के साथ, कभी-न-कभी ऐसा व्यवहार करना ही पड़ता है, प्रकारान्तर से जो उत्तम कोटि का नहीं होता।

कीर्ति ने कहा—

“अब इस बात का उत्तर मैं तुमको न दूंगा। क्योंकि हो सकता है उससे तुम इतना बुरा मान जाओ कि फिर मुझे खेद होने लगे।... हाँ, इस बार मैं तुमको पुस्तकें लाना भूल गया हूँ। पुस्तकें दो-चार

अपने पढ़ने के लिए रख ज़रूर ली थीं; पर तुम उन्हें अभी समझ न सकोगी ।”

“अरे हटो, सामान कमरे में आते-आते, अपने गुच्छे की एक ताली से बक्स खोलकर, मैंने तीन पुस्तकें पहले ही उड़ा दीं । तुमने मुझे समझा क्या है ?”

“चोर कहीं की !” कथन के साथ कीर्ति कृत्रिम आवेश में भी प्रच्छन्न प्रसन्नता छिपा न सका ।

इतने में बड़ी बहू के कमरे की ओर जाते हुए सुभद्रा की दृष्टि जो उधर जा पड़ी, तो ठिठककर उन्होंने ने कह दिया—“क्या बात है ? क्यों उसको डाँट रहा है ?”

छोटी बहू सिर उठाकर अवगुण्ठन को ऊपर खिसकाते हुए बोली—
“दीदी, दोनों में सदा इसी तरह चलती रहती है । छः का अंक विपक्ष से तीन और तीन का अंक छः बन जाता है, बिलकुल उसी तरह ।”

कीर्ति ने छोटी बहू की इस बात का जवाब तो नहीं दिया, किन्तु वह मन-ही-मन सोचने लगा—“मानस को अगर नैश गगन मान लें, तो ये विचार-बिन्दु-टिमटिमाते तारे कहलायेंगे । इन पर कोई परदा डाल ही कैसे सकता है ।”

अन्दर जाकर अपना सूटकेस देखने को अधीर हो उठा ।

जैसे टटोलते हुए, कीर्ति झट मंझली बहू के पास आकर बोला—
“मामी, चाभियों का गुच्छा कहाँ है ?”

“मुझे नहीं मालूम लला, वहीं कहीं देखो ।”

तब वह पुनः विमला के पास जा पहुँचा । बोला—“मेरी चाभियों का गुच्छा ?”

विमला बोली—“मेरे पास कहाँ से आया ? मुझे दिया था ? अपनी चीज सम्भालकर रखते नहीं बनती, इधर-उधर भाँकते फिरते हैं ।”

कीर्ति ने भुकुटियों को थोड़ा तानते हुए धीरे से उत्तर दिया—

रात और प्रभात

“तंग मत करो। मुझे अभी बड़े मामा को उद्योग-मन्दिर का हिसाब समझाना है।”

“कह तो दिया एक बार, गुच्छा मेरे पास नहीं है। मुझे ज़रूरत ही नहीं पड़ी। अच्छी तरह टटोलकर देखो, किसी जेब में होगा।”

खोजने पर गुच्छा मिल गया। बक्स खोलकर देखा, तो विदित हुआ, सचमुच विमला ने तीन पुस्तकें उड़ा दी हैं—१. देवताओं का स्वभाव; २. महत्वाकांक्षा का हिंसात्मक पक्ष; ३. मधुर स्वप्नों का दायित्व।

कीर्ति इतने विचार में पड़ गया कि देर तक उसी कमरे में टहलता रहा।

७

दूसरे दिन श्री जानकीवल्लभ आ पहुँचे । साथ में एक नौकर भी था । दो ट्रंक फोटोग्राफ़्स से भरे हुये थे । सूटकेस चमड़े का था । इसके अतिरिक्त एक ट्रंक और था, जिसमें फोटोग्राफ़्स सम्बन्धी सामान भरा हुआ था । श्री जानकीवल्लभ को स्टेशन पर लेने रायसाहब स्वयं गये थे ।

रात को खाना खाते समय उपस्थित रहने के लिये जब रायसाहब ने विमला से कहा, तो वह तुरन्त गंभीर हो गई । बोली—“खाना परोसने के लिए घर की स्त्रियों को और विशेष रूप से मुझे क्यों जाना पड़ेगा, यह बात मेरी समझ में नहीं आती । मैं तो यही सोचती हूँ कि थालियाँ पहले से लगा दी जायेंगी, तुम साथ में बैठोगी ही, मौसिया भी रहेंगे । रह गये मंझले मौसिया, सो वह देखते रहेंगे, किस को और क्या जरूरत है ?”

इस समय रायसाहब ने विमला पर फिर जोर नहीं दिया । यह समझने में उन्हें देर न लगी कि वह विचार-क्षेत्र में कितनी दृढ़ है ।

रायसाहब ने यही बात बड़े भैया से भी कह दी ।...साथ में इतना

रात और प्रभात

और जोड़ दिया कि मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है, विमला यह बात ताड़ गई है कि बिना किसी विशेष-प्रयोजन के एक नये आदमी के समक्ष उपस्थित रहने के लिये मुझसे क्यों कहा जा रहा है।

बड़े भैया मुस्कराते हुये बोले—“तुम तो विचार-स्वातन्त्र्य के बड़े समर्थक हो। अब ऐसी परिस्थिति में क्या होना चाहिये, इसको मेरी अपेक्षा तुम अधिक समझ सकते हो।”

सुनकर रायसाहब विचार में पड़ गये। बोले—“बड़े भैया, जब तक आपका सहयोग नहीं मिलता, तब तक मैं कुछ कर नहीं सकता।”

कुरसी से उठकर बड़े भैया बोले—“मैं इस विषय में सहायता तभी कर सकता हूँ, जब कोई ऐसा प्रसंग उपस्थित हो जाये कि वार्तालाप के बीच मैं विमला स्वयं कूद पड़े। और मेरी समझ में ऐसा अवसर कई दिन साथ रहने पर ही उपस्थित हो सकता है। आज ही और इसी समय जान-बूझकर ऐसा प्रसंग उपस्थित करना मुझे उचित नहीं जान पड़ता। साध्य की गुरुता का महत्त्व मैं मानता हूँ; पर ऐसा तो न होना चाहिये कि सफलता के लिये साधन की सारी पवित्रता किंवा सुन्दरता ही नष्ट कर दी जाये।”

“अच्छी बात है। मैं दीदी से बात करता हूँ।” कथन के साथ रायसाहब बड़ी बहू के पास जा पहुँचे।

बड़ी बहू उस समय रसोईखाने में थीं। रायसाहब बोले—“दीदी, मुझे तुमसे कुछ बात करनी है।”

बड़ी बहू उठकर कमरे में आ गयीं। रायसाहब तहाये हुये बिस्तर पर पीठ टिकाकर बैठ गये और बड़ी बहू निकट पड़ी कुर्सी पर।

रायसाहब बोले—“सम्पादक जी को मैंने बुला तो लिया, अब उनके साथ विमला का परिचय और सम्पर्क कैसे बढ़ाया जाय, जिससे उसके मन की थाह का पता लग सके।”

बड़ी बहू ने सूजी हुई दाढ़ के कारण कनपटी पर हाथ लगाते हुये

तुरन्त कह दिया—“देखो रायबाबू, यह काम इतना जल्दी आज नहीं हो सकता। कल हो सकेगा, यह भी मैं नहीं कह सकती। परसों भी हो ही जायगा, इसमें भी मुझे संदेह है। लेकिन होने को होगा, तो आज भी हो सकता है।”

रायसाहब चिन्ता में पड़ गये। बोले—‘फिर अब क्या हो?’

बड़ी बहू का मन ठिकाने न था। अन्यमनस्क-सी बोलीं—“होने न होने की बात मैं क्या जानूँ? मेरे ख्याल से तो कोशिश करना ही अपना धर्म है। ऊँट किस करवट बैठता है, यह तो वही जानता है। न मैं कुछ कर सकती हूँ, न तुम! दुलहिन, ज़रा दो बीड़े पान तो दे जाना रायबाबू को।”

रायसाहब फिर विचार में पड़ गये। बोले—“अच्छी बात है। जान पड़ता है, आज अब कुछ नहीं हो सकता। अच्छा, कल हम सब लोग गंगास्नान को जायें तो ऐसा नहीं हो सकता कि तुम सब भी चलो।”

बड़ी बहू ने उत्तर दिया—“मैं चल तो सकती हूँ, तरकीब भी बुरी नहीं है। पर छोटी दुलहिन तो जा नहीं सकती। मंझली को घर-गृहस्थी से ही फुरसत नहीं मिलती है। रह गई विमला, उसके हाथ का घाव अभी भरा नहीं है। गंगास्नान को वह चलेगी ही, यह कह सकना कठिन है। हाँ, कीर्ति न आता, तब कुछ हो सकता था।”

रायसाहब विचार में पड़ गये—‘ओः, यह बात है! यह कीर्ति भी इस परिवार का एक अंग बन गया है। यह भी हो सकता है कि उसने विमला के मन में कोई स्थान बना लिया हो। लेकिन वह उसका अधिकारी हो ही कैसे सकता है? अभी तो वह शोध ही कर रहा है। फिर उसका आर्थिक पहलू भी अंधेरे में है। नहीं-नहीं, ऐसा नहीं हो सकता।”

विवश होकर रायसाहब फिर बड़े भैया के पास जा पहुँचे। बोले—

रात और प्रभात

इधर कीर्ति भी दिखाई नहीं पड़ा। लड़का है तो बड़ा उद्योगी। मगर उसकी जीविका अभी स्थिर हुई नहीं।”

बड़े भैया बोले—“तुम अभी तक बिल्कुल बच्चे बने हुये हो। कीर्ति हमारा भानजा है। वह भानजा न भी होता तो भी वह मेरा मानस-पुत्र तो रहता ही। उसके निर्माण में मेरा हाथ है। अगर उस दिन उपस्थित न होता तो विमला को हास्पिटल कौन ले जाता?”

इस घटना का थोड़ा-बहुत परिचय रायसाहब को भी मिला था। किन्तु वे अब तक यह न समझ पाये थे कि विमला के जीवन के साथ इस कीर्ति का कोई लगाव भी है। अब मानसिक स्पर्श और सम्पर्क-संस्थापन का एक सूत्र और उनके हाथ में पड़ गया।

थोड़ी देर में टेबिल पर भोजन की थालियाँ लगा दी गयीं। रायसाहब ने बड़े भैया से बहुत आग्रह किया कि आप भी बैठ जाइये। पर वे जब किसी प्रकार सहमत न हुये, तब उन्होंने मंझले भैया से अनुरोध किया।

पहले तो मंझले भैया ने यही कहा—“जब तक बड़े भैया खाना नहीं खा लेते, मेरे खाने का प्रश्न ही नहीं उठता।”

बड़े भैया ने देखा कि रायसाहब का मन दुखेगा! इसलिए उन्होंने कह दिया—“नहीं-नहीं, तुम बैठ जाओ मंझले। यहाँ अवसर किसी प्रश्न का नहीं, एक समस्या के समाधान का है।”

इस प्रकार मंझले भैया को बैठना पड़ा।

आज मंझले भैया के साथ रामप्रसाद भी आया था। अतएव बड़े भैया ने रामप्रसाद के निकट जाकर उससे कह दिया—“तुम भी साथ में बैठ जाओ रामू। हाँ-हाँ, बैठ जाओ। संकोच मत करो।”

रामप्रसाद ने उत्तर दिया—“लेकिन बड़े भैया, मैंने आज तक टेबिल, कुर्सी पर बैठकर खाना नहीं खाया।”

बड़े भैया हँस पड़े और रायसाहब बोल उठे—“कभी-कभी हमको

जीवन में ऐसे बहुतेरे कार्य करने पड़ते हैं, पहले कभी जिनकी कल्पना भी हमारे लिये सम्भव नहीं रहती है।”

मंभले भैया के मन में आया—‘यह बात रायबाबू बहुत ठीक कहते हैं।’

रामप्रसाद मुसकराने लगा। बोला—“यह ऐसी बात है जिसके आगे मेरा मुँह सिया हुआ है।” और एक निःश्वास के साथ उसके मुँह से निकल गया—“जैसी उसकी मर्जी।”

एक चौकोर टेबिल से लगकर चार व्यक्ति अपनी-अपनी कुर्सियों पर बैठ गये। एक ओर रायसाहब थे, उनका मुँह पूर्व की ओर था। दूसरी ओर सम्पादक जी थे। उनका मुँह पश्चिम की ओर था। उत्तर और दक्षिण की ओर मंभले भैया और रामप्रसाद थे। प्रथम ग्रास मुँह में डालने के लिए रामप्रसाद ने हाथ उठाया ही था कि उनको कुछ ऐसा जान पड़ा, मानो रसदार आलू की कटोरी में एक मक्खी पड़ी हुई है।

कुन्दन दरवाजे पर खड़ा था। रायसाहब उसकी ओर संकेत करते हुये बोले—“इस कटोरी को उठा ले जाओ और इसकी जगह दूसरी ले आओ।”

रामप्रसाद ने रायसाहब की ओर देखते हुए पूछा—“क्यों, क्या हुआ?”

रायसाहब ने उत्तर दिया—“कुछ नहीं, कुछ नहीं, यों ही।” आप भोजन कीजिये।”

इतने में सम्पादक जी बोल उठे—“कन्जरवैटिज्म इज आउट आफ डेट। इट लीड्स नाउ अलोन टू ए फ्रूल्स एरेंड।”

कथन सुनकर रायसाहब गम्भीर हो गये और मंभले भैया को भी

१. लकीर के फकीर बने रहने का समय लड़ गया। कड़िबाबिता आज केवल मूर्खों की तीर्थ-यात्रा है।

रात और प्रभात

यह बात अच्छी नहीं लगी। फिर भी दोनों ने कुछ नहीं कहा। किन्तु रामप्रसाद बिना बोले न रह सका—“संसार में एक वर्ग सदा रुढ़िवादी रहा है।”

रायसाहब को थोड़ा सहारा मिला। बोले—“देखिये सम्पादक जी, बुरा न मानियेगा। मक्खी मेरी थाली की कटोरी में देख पड़ी। इसलिये मैंने उस कटोरी को उठवा दिया। इसमें रुढ़िवादिता कहां है, यह बात मेरी समझ में नहीं आयी।”

भोजनशाला रसोई घर के बिलकुल निकट थी। कुन्दन जब रायसाहब की कटोरी वापस ले गया, मक्खी जैसी एक चीज़ तब भी उसमें पड़ी हुई थी। विमला ने ज्यों ही उसे देखा, त्योंही तर्जनी से उठाकर एक और फेंकते हुये पूछा—“किसकी थाली में यह कटोरी थी?”

कुन्दन ने उत्तर दिया—“रायसाहब की थाली में।”

“बाबू से कह देना, मक्खी नहीं, मेथी का दाना था।” विमला ने हँसते-हँसते कह दिया। उसका अभिप्राय यह था कि चाहे जैसी परिस्थिति हो, भोजन के समय मन में कभी किसी आशंका को जन्म न देना चाहिये।

छोटी बहू पहले तो हँसने लगी, फिर बोली—“पता नहीं रायसाहब के यह मेहमान हैं कौन?”

बड़ी बहू का जाप अभी पूरा हो नहीं पाया था। इसलिये उनके हाथ में पड़ी हुयी माला अब भी ऊपर सरक रही थी। छोटी बहू की बात के उत्तर में बोली—“रायसाहब के कोई मित्र हैं जो दिल्ली के किसी दैनिक में उप-सम्पादक हैं। साथ में एक नौकर भी तो ले आये हैं।”

“मगर उमर तो उनकी कीर्ति के बराबर होगी। रायसाहब के मित्र कैसे हो गये?”

छोटी बहू को विदित सब कुछ हो गया था। फिर भी वह जान-बूझ-

कर ऐसी छानबीन कर रही थीं कि देखूँ विमला इस विषय में अपना क्या अभिमत प्रकट करती है ।

बड़ी बहू स्मृष्ट रूप से कुछ कहना न चाहती थी; पर यह अवश्य सोचने लगती कि विमला सत्य कृष्ण तो कहे, किसी प्रकार यह प्रकट तो हो कुछ कि वह सम्पादक जी के सामने आने की इच्छा रखती है या नहीं । अतः वे बोलीं—“रायसाहब मैं यह एक खास बात है । उनके मित्र या तो नई उमर के हैं, या फिर अगर बराबरी के हैं, तो भी हैं उनसे उमर में काफी छोटे ।” फिर इतना कहती-कहती वे अपने आप हँस पड़ीं ।

“जीजी, तुम तो उनके सामने हो सकती हो । तुमको यह कहने का भी मौका है कि अगली बार जब कभी आयें, तो अपनी जोड़ीदार को भी साथ लेते आयें ।” छोटी बहू बोल उठीं ।

बड़ी बहू मन-ही-मन सोचने लगीं—कहूँ कि न कहूँ । मगर कहने में कोई हरज ही क्या है—फिर तब, जब इस भेद को साफ़ कर देने का समय सामने आ गया हो ! बोलीं—“मंझले कहते थे, सम्पादक जी का ब्याह अब तक हुआ नहीं ।”

उनका इतना कहना था कि छोटी बहू के मुँह से निकल गया—“ओ ! यह बात है । ठीक है, ठीक है ।” और कुन्दन को पुनः आता हुआ देखकर बोल उठीं—“रायसाहब से कह देना कि मक्खी नहीं भेथी का दाना था ।” और कथन के साथ आप ही आप हँस पड़ीं ।

विमला सोचने लगी—“बाबू को यह हो क्या गया ?” और तब वह रसोईघर से उठकर चुपचाप अन्दर चली गयी ।

सम्पादक जी पहले मुसकराये, फिर बोले—“मैंने आपको लेकर वास्तव में कुछ नहीं कहा । मेरा मतलब तो केवल इतना था कि भोजन करते हुए पहले ही कौर में आपको जो शंका हुई, वह यदि सही भी होती, तो भी ‘प्रथम ग्रासे मक्षिका पातः’ का जो अभिप्राय लिया गया है, वह अवश्य ही दकियानुसी है । क्योंकि आपको शायद मालूम नहीं

रात और प्रभात

होगा कि यहाँ इसी नगर में एक ऐसे आचार्य विद्यमान हैं, जो बी० ए० की परीक्षा में पहली बार इसलिए फेल हो गये कि अगले वर्ष उनको फर्स्ट डिवीजन प्राप्त करने की लालसा थी। मतलब यह कि पहली बार या दस बार भी विघ्न सामने आते जायें, तो भी निराश होने का कोई कारण नहीं। मुझी को लीजिए, फोटोग्राफी का मुझको शौक है। सदा एक कैमरा मेरे साथ रहता है। जहाँ जाता हूँ, वहाँ जो भी व्यक्ति या दृश्य मेरी आँखों में गड़ जाता है, मैं उसका फोटो लेने की चेष्टा अवश्य करता हूँ। कभी-कभी इसी कारण मुझे व्यंग्य और कटुवचन भी सुनने पड़ते हैं। यह बात दूसरी है कि उनका मेरे ऊपर कोई असर नहीं होता।”

रामप्रसाद को यह बात पसन्द आयी। अतः उसने कह दिया—
“बाहू सम्पादक जी, क्या बात कही है आपने कि तबीयत खुश होकर रह गयी। इसी बात पर कल मेरे यहाँ आपकी दावत रही। फोटो-ग्राफ मेरी देवी जी का जो आप खींचियेगा, उसकी एक प्रति तो आप मुझे दीजियेगा ही।”

मुस्कराते हुए सम्पादक जी के मुँह से निकल गया—“अगर आपकी श्रीमती जी ने मुझको प्रभावित कर लिया तो।” और इसके बाद वह अपनी हँसी सम्भाल न सके।

मंझले भैया बहुधा कम बोलते थे। मगर इस अवसर पर बिना बोले न रह सके—“सम्पादक जी, आपके भाग्य से अवसर बड़ा ही उत्तम है।”

इस उत्तमता के विषय में न सम्पादक जी को कुछ विदित था, न रायसाहब को। इसलिए इस बात का पूरा-पूरा रस रामप्रसाद को ही मिला। हँसते-हँसते उसने कह दिया—“अभी दो मास ही हुए हैं, मेरे घर में मुन्ना पैदा हुआ है।”

भोजन समाप्त होने के अनन्तर जब रायसाहब बड़े भैया के पास

‘आए, तो उन्होंने कह दिया—“कहिए, रायसाहब आपको कोई भेद की बात मिली ?”

रायसाहब कुछ गम्भीर तो हो गए, लेकिन कुछ संकोच के साथ उन्हें कहना पड़ा—“कहाँ ? अभी तक तो नहीं मिली ।”

बड़े भैया बोले—“मगर मुझको मिल गई है । मेरा ख्याल है आज नुमायश का अन्तिम दिन था । अच्छा तो यही है कि सम्पादक जी का सामान रामप्रसाद के घर भिजवा दिया जाय । मेरी समझ में नहीं आता रायसाहब, ऐसे लम्पट आदमी को आप मेरे घर ले क्यों आये ?”

रायसाहब ने उत्तर दिया—“बड़े भैया, आचार-धर्म की बात किसी के मते पर तो लिखी नहीं होती । मुझे स्वयं इस बात का ज्ञान न था ।

बड़े भैया ने सिर हिलाते हुए उत्तर दिया—“लिखा होता है, रायसाहब, लिखा होता है । देखने वाली आँखें चाहिए ।”

बड़े भैया की कुछ ऐसी प्रकृति हो गई थी कि जिससे बात करना होता था, उसकी चारपाई अपने निकट डलवाते थे । जब रात के दस बजे, तो रायसाहब बोले—“बड़े भैया, बड़ा धोखा हुआ । मैं नहीं जानता था कि फोटोग्राफी के बहाने सम्पादक जी अपना जोड़ खोजने के फेर में रहते हैं ।”

बड़े भैया बोले—“अभी तुमको कुछ नहीं मालूम है ।”

“तो फिर अब क्या हो बड़े भैया ।”

बड़े भैया ने उत्तर दिया—“यही मैं भी सोचा करता हूँ रायसाहब वैसे एक लड़का है मेरे ध्यान में, लेकिन अभी मैं निश्चयात्मक रूप से कुछ नहीं कह सकता । जब ऐसी कोई बात होगी, तो मैं स्वयं तुमको बतला दूँगा ।”

दूसरे दिन प्रातःकाल, चाय पीने के बाद सम्पादक जी ने कह दिया—“रायसाहब अब फोटोग्राफ की व्यवस्था आपको करनी चाहिए ।”

रात और प्रभात

“यहां ऐसी कोई व्यवस्था मुझे तो दिखलाई नहीं पड़ती। न इस विषय में मैं आपको कोई स्पष्ट आश्वासन ही दे सकता हूँ।”

“तो आपने मुझे बेकार बुलाया !”

“मुझे स्वयं खेद है कि समझने में गलती हो गई।”

जिस समय यह बातें बाहरी बैठक और भीतरी द्वार के बीच में हो रही थीं, उस समय विमला सोच रही थी—“व्यक्ति का घोर शत्रु और मित्र उसका मन है। एक मन है जो अपनी मान-मर्यादा, प्रतिष्ठा, यहां तक कि लाज भी एक क्षण में नष्ट कर डालता है और वही एक मन है जिसकी गरदन पर दबाव का हाथ डाले रहो तो, वह तीज के चांद को भी शरतचन्द्र बना देता है।”

थोड़ी देर बाद सम्पादक जी जब प्रस्थान करने लगे, तब वे बारम्बार यही सोच रहे थे—अफसोस यही है कि भोजन के समय अनायास मैंने अपना परिचय दे दिया। कितना अच्छा होता, कि मैं चुप ही बना रहता। और भी अधिक खेद मुझे इस बात का है कि वह मक्खी गिरी तो थी रायसाहब की कटोरी में, लेकिन उसका फल मुझको मिला। खैर कोई बात नहीं। इसी सिलसिले में रामप्रसाद के घर भी हो लिया जाय, तो क्या बेजा है।

इतना सोचते हुए वह हा-हा करके हँस पड़े।

यों तो मंझले भैया के कई मित्र थे, जो दूकान पर आते-जाते रहते थे। पर उनमें दो मुख्य थे—एक थे रामरतन। उनके मुँह पर चेचक के दाग थे। वर्ण के गौर, शरीर के दुर्बल। पान बहुत खाते थे। प्रायः नये ग्राहकों को दूकान में ले आने में बड़े निपुण थे। रुपये में एक आना दलाली उनके लिए निश्चित थी। दूसरे थे—‘गोपीनाथ।’ उनकी नाक बीच में कुछ ऊँची थी। गेहूँया वर्ण, बायें हाथ में रिस्टबाण रहती।

सिर पर किशती नुमा साफ़-सफ़ेद धुली हुई टोपी, सिर के केश छल्लेदार, कान के ऊपरी भाग में टोपी को घेरे हुए। खादी के सफेद कुरते के ऊपर काली पट्ट की सदरी और खादी का ही पायजामा। पास की सोने-चांदी की एक कोठी में सेठ किशोरीलाल-भरोमेलाल के यहाँ मुनीम थे। ये दोनों रामप्रसाद के भी मित्र थे। जब यह भगड़ा चला, तब ये दोनों मंभले भैया से मिलने के लिए उनके घर पर भी आने लगे।

रामरतन चाहते थे—‘कि किसी प्रकार दोनों पक्षों में सन्धि हो जाय तो उत्तम हो।’ इसलिये वे एक पक्ष की जान सही-सही दूसरे पक्ष से कभी कहने न थे। किन्तु गोपीनाथ हृदय से चाहते थे कि मंभले भैया दूकान अलग ही करें। मंभले भैया के साथ उनकी पटती भी खूब थी। दूसरे सेठ के यहाँ नौकर होते हुये भी वे मंभले भैया से बराबरी का सम्बन्ध रखते थे। इसीलिए खान-पान, बस और रिकशा में जब साथ-साथ बैठते, तब पैसे देने में कभी उनका हाथ न रुकता। कभी-कभी वे सिनेमा के प्रवेश-पत्र भी ले आते और मंभले भैया के साथ उनका इच्छानुसार उपयोग करते। रामप्रसाद की नीति से वे परिचित थे और समय-समय पर उसके प्रति अपने मनोभाव व्यक्त भी करते रहते थे। उनकी यही आन्तरिक इच्छा रहती थी कि रामप्रसाद से किसी प्रकार समझौता न हो।

गोपी बाबू को जब मंभले भैया से मिलने का अवसर घर पर ही मिलने लगा, तो कभी-कभी बड़े भैया भी उन्हें दिखाई पड़ने लगे। गोपी बाबू के हृदय में जो श्रद्धा और आदर-भावना थी, वह अब तक तो केवल इस कारण थी कि वे मंभले भैया के ज्येष्ठ बन्धु हैं, पर अब उनका वास्तविक रूप देखने और समझने का अवसर भी उनको मिलने लगा।

एक दिन की बात है, जब गोपी बाबू झुककर बड़े भैया के चरण-स्पर्श करने लगे, तो बड़े भैया—‘सुखी रहो भैया, सुखी रहो’—माशीबाद के साथ बोले—‘कहो गोपी, काम ठीक तरह से चल रहा है न?’

रात और प्रभात

गोपी बाबू ने उत्तर दिया—“सब आपका आशीर्वाद है।”

बड़े भैया भीतर से बादरी बैठक में आ रहे थे इसलिए इतना और उन्होंने कह दिया—“आओ बैठो। मंझले तो शायद इस समय हैं नहीं।”

गोपी बाबू पलंग के पास पड़ी हुई कुर्सी पर बैठ गये।

बड़े भैया बदन पर केवल शाल लपेटे हुए थे। प्रारम्भ में साधारण रूप से उन्होंने कहा—“अब तो जाड़ा कुछ कम हो चला है।”

गोपी बाबू बोले—“बड़े भैया, कम जरूर हो चला है, लेकिन बीच-बीच में कभी-कभी थोड़ा बढ़ भी जाता है। यहाँ तक कि ऋतु के अनुरूप अगर कहीं कपड़ों में परिवर्तन कर दिया, तो सरदी लग जाने का डर उत्पन्न हो जाता है। ऐसा ही एक झोंका मैं अभी पिछले सप्ताह खा चुका हूँ। दोपहर में गर्मी अधिक जान पड़ी तो मैंने सोचा—अब इस सदरी की जरूरत नहीं रह गयी। केवल कुर्ता पहने हुए दूकान चला गया। वैसे तो पाँच और छः के बीच में घण्टे-ग्राध-घण्टे के लिए घर हो आता था। पर उस दिन काम कुछ ज्यादा आ गया। और घर आने का अवसर न मिला। रात को आठ बजे छुट्टी मिलने पर जो घर लौटा, तो बदन में दर्द जान पड़ा और रात को ज्वर आ गया।”

बड़े भैया के मुख पर विकास झलक उठा। बोले—“जीवन का हर क्षण हमारा शिक्षक होता है। वह हमें बतलाता रहता है कि सावधानी की कितनी आवश्यकता है। अन्तर केवल इतना है कि स्थूल जीवन का शिक्षक यही बात मुह खोलकर कहता है, और काल भूक भाव से। सभी लोग मौन भाषा में दी हुई शिक्षा सुन और समझ नहीं पाते, जब कि कुछ बुद्धिमान लोग उसे सुनकर सहज ही सावधान हो जाते हैं।”

यह प्रथम अवसर था, जब गोपी बाबू ने यह अनुभव किया कि बड़े भैया के सम्बन्ध में जो बातें हम सुना करते हैं, वे मानस-लोक की भूमि पर कितनी खरी हैं।

श्रद्धा से सिहर उठे गोपी बाबू। मुंह से तो कुछ न बोले, पर मन-

ही-मन कहने लगे—“वाह ! क्या बात कही है । दूर से केवल प्रशंसा सुना करता था, आज कुछ ही क्षणों में ऐसी बात सुनने को मिल गयी, जिसे मैं जीवन भर न भूल सकूँगा ।”

उन्होंने कह दिया—“बड़े भैया, आपके निकट बैठने का यह प्रथम अवसर है । पर ऐसा लगता है, जैसे अन्धकार में बैठे-बैठे उठकर एक प्रकाश-पुञ्ज के निकट जा पहुँचा हूँ ।”

बड़े भैया का कुछ ऐसा स्वभाव बन गया था कि जब कोई मुख पर ही उनकी प्रशंसा करने लगता, तब वे संकुचित हो उठते थे । ऐसे अवसर पर वे अपने सम्बन्ध में कुछ न कुछ कहकर मन-ही-मन सोचते लगे । “सब कुछ तुम्हारा है—मेरा कुछ नहीं है ।”

इस समय भी कुछ ऐसा ही हुआ । इतने में अकस्मात् वे पूछ बैठे—
“दूकान बन्द हो जाने से बाजार में तरह-तरह की बातें सुनने को मिलती होंगी ।”

गोपी बाबू ने साधारण रूप से कह दिया—“बड़े भैया, सुनने की इसमें क्या बात है ? आये दिन चचा-भतीजे में, भाई-भाई में, यहाँ तक कि पिता-पुत्र में भी व्यापारिक विवाद होते ही रहते हैं । मंझले भैया का तो साले-बहनोई का मामला है । रामप्रसाद कैसा व्यक्ति है, इसको बाजार में कौन नहीं जानता ? दमड़ी का माल उसे बाजार से मिल नहीं सकता । सच पूछिये, तो दूकान आप की ही साख पर चल रही थी ।”

कुछ सोचते हुये बड़े भैया बोल उठे—“और तो सब ठीक ही हुआ । कभी-कभी यही मन में आता है कि जाने अब उस आदमी का स्वर्चा कैसे चलता होगा । जब आदमी सीधे रास्ते पर चलने से वंचित हो जाता है, तब उसके कुमार्ग पर चलने की सम्भावनायें और भी बढ़ जाती हैं । आदमी चाहे जितना दुष्ट हो, लेकिन हमें कोई ऐसा काम नहीं करना चाहिये, जिससे उसकी दुष्टता को और भी अधिक उत्तेजन

रात और प्रभात

१

मिले । तुम तो उससे मिलते-जुलते रहते होगे । क्या हाल है उसका ?”

गोपी बाबू ने उत्तर दिया—“परसों मिला था । हाथ में एक चेक था, शायद इलाहाबाद का । तत्काल उसका रुपया चाहता था । वैसे तो कोई बात न थी । चाहता, तो मैं दूकान से दिलवा सकता था । पर मैंने यही सोचा—‘कौन भ्रमट में पड़े । अगर कहीं ‘चेक’ अनाहत हो गया तो उसका रुपया मुझे भरना पड़ जायगा ।’ इसलिये मैंने यही कह दिया—‘रुपया तो तभी मिल सकेगा, जब हिसाब में जमा हो जायगा ।’ उत्तर में वह कुछ बोला नहीं, लेकिन चेष्टा से यही मालूम पड़ा, जैसे कोई पक्षी पंर में घायल होकर तिलमिला उठा हो ।”

इतने में मंभले भैया आ गये । और फिर गोपी बाबू उनके साथ जाने के लिये उठ खड़े हुये ।

बड़े भैया को प्रणाम करके अब गोपी बाबू तो मंभले भैया के साथ, उनके कमरे की ओर बढ़ रहे थे और बड़े भैया अपने कमरे में उत्तर से दक्षिण और दक्षिण से उत्तर की ओर टहल रहे थे ।

उस दिन जब बड़े भैया खाना खाने बैठे तो यकायक मुंह का कोर उनके हाथ से छूट पड़ा । खाना तो उन्होंने किसी तरह से खा लिया, पर वे बराबर आत्मलीन बने रहे ।

ऐसे समय बड़ी बहू उनके पास आकर बैठ जाती थीं । वे यह देखती रहती थीं कि उनकी थाली में किस चीज की कमी है । उस दिन जब उन्होंने टोकरू दिखा—“अरे, अरे ! आज तीन ही फुनकियां खाकर उठ जाओगे । भला एक तो और खाओ ।”

बड़े भैया ने उठते हुये जवाब दिया—“अब उसे हमारी ओर से तुम खा लेना ।”

बड़े भैया आँगन में जाकर आचमन कर रहे थे और मंभली बहू गोद में लिये हुये गोविन्द के बायें कपोल पर प्यार की चपत जमाती हुई कह रही थी—‘अब उछे तुम था लेना ?’

रात और प्रभात

रात में कभी-कभी रामप्रसाद और दमयन्ती बड़ी देर तक बातें करते रहते। दमयन्ती जान-बूझकर यह न पूछती थी कि जो रुपया ये घर-खर्च के लिये लाते हैं ; वह आता कहाँ से है। वह जानती थी कि वे सही-सही तो बतायेंगे नहीं। इसलिये वह मन-ही-मन तय कर लेती थी कि पूछना बेकार है।

एक दिन उसने आलमारी जो खोली तो यह देखकर वह दंग रह गयी कि मखमल के एक डब्बे में कगन रखे हैं। बड़ी देर तक वह सोचती रही, यह कंगन की जोड़ी कहाँ से आयी।

दिन भर बीत गया, बड़ी रात गये जब रामप्रसाद घर लौटा, तो दमयन्ती प्रेम से उसे खाना खिलाने बैठी। उसके मन में आया कि इसी अवसर पर वह क्यों न पूछे कि यह कंगन का जोड़ा तोल में कितना है और इसकी बनवाई क्या लगी है। फिर उसने मन ही मन सोच लिया—‘होगा किसी का। मुझे क्या मतलब।’

थोड़ी देर बाद जब दमयन्ती स्वामी के लिये बिस्तर लगाने लगी, तब भी उसने चाहा कि इतना तो पूछ ही ले कि, क्या दूकान बन्द रहने पर भी पुराने ग्राहकों से थोड़ा-बहुत काम मिलता रहता है? परन्तु फिर यही सोचकर कि सही बात तो बतलाएंगे नहीं, उसने इस विषय में प्रश्न करना उचित नहीं समझा।

अब रात भीग रही थी। सड़कों पर नगर का कोलाहल शान्त हो गया था। पड़ोस के एक मकान से, जिसकी दीवाल उसके कमरे से लगी हुई थी, रेडियो से प्रसारित होने वाले नाटक का स्वर सुनाई पड़ रहा था।

एक स्त्री सिसकियाँ लेती हुई कह रही थी—“आज तुम मेरे दुःख की बात पूछ रहे हो? मत पूछो—मत पूछो मुझसे !!” और इस कथन के साथ उसका रुदन फूट पड़ा। दमयन्ती करवट बदल रही थी। उसको ऐसा प्रतीत हुआ कि यह स्वर, यह पीड़ा, यह रुदन नाटक का नहीं,

रात और प्रभात

यह मेरा है— मेरी आत्मा का है, मेरे जीवन का है। यह सोचकर वह सचमुच रो पड़ी। फिर दस-दस, पाँच-पाँच मिनट के अन्तर से गुज़रने वाली मोटर गाड़ियों के हार्न की आवाज़ आती रही।

किसी भाँति उसने अपना रुदन मुखरित नहीं होने दिया।

पास ही पड़े हुए पलंग से सहसा उठकर रामप्रसाद ने पहले बिजली के बटन पर हाथ रक्खा, कमरे में प्रकाश होते ही उसकी दृष्टि दमयन्ती की दुलाई पर जा पड़ी। पहले तो उसके मन में आया कि वह तुरन्त शिरोभाग खोल दे, पर फिर उसने बत्ती का बटन उठा दिया। वह चुपचाप पूर्ववत् लेट रहा। उसने सोचा—“अगर वह जगती होती, तो बत्ती जलाने पर स्वयं ही मुँह खोल देती।”

अब रामप्रसाद चुपचाप थोड़ी देर तक लेटा रहा। इतने में फिर किसी कार का हार्न सुनाई दिया। उसके मन में आया—‘ओः।’

यकायक उसकी कल्पना को एक आघात-सा जा लगा—“क्या सोचा था और क्या हो गया। सोच था—एक दिन अपनी गाड़ी होगी, वह दमयन्ती के साथ, उस पर धूमने को निकला करेगा !”

उसे कुछ अच्छा नहीं लग रहा था। ऐसा जान पड़ता था जैसे एक-दो नहीं दस-बीस बिच्छुओं ने सारे बदन में काट खाया हो। जीवन भर के सारे पाप क्रमशः उसे याद आ रहे थे। कई वर्षों से वह पचासों ग्राहकों को ठगता आया था। चाँदी के जिन गहनों में मुश्किल से एक आने भर दोष रहा होगा, उनमें पाँच आने भर दोष बतलाकर उसने सैंकड़ों रुपये मार दिये थे। अकस्मात् उसे एक ऐसे ग्राहक का स्मरण हो आया, जो सोने की जंजीर बेचना नहीं चाहता था। उसने उससे शर्त करा ली थी कि अगर महीने भर के अंदर-अंदर इसे न उठा सोंगे, तो माल जन्त हो जायगा।

दिन बितते गये। ग्राहक महीना पूरा हो जाने के एक दिन बाद आया। जंजीर उसके पास रखी हुई थी, पर उस समय मंझले भैया

दूकान पर न थे। जुकाम के साथ उन्हें ज्वर हो आया था।

रामप्रसाद ने उत्तर दिया—“शत के अनुसार कल ही जंजीर गला डाली गयी। अब कुछ नहीं हो सकता।”

ग्राहक रोता हुआ लौट गया था और रामप्रसाद ने जंजीर गलवाकर दाम खड़े कर लिये। डेढ़सौ रुपये मूल के, चार रुपये व्याज के। इस प्रकार एक सौ चव्वन रुपये उसने इस मद में जमा कर लिये थे। दो तोले की जंजीर थी, अतः दो सौ दस रुपये उसने खड़े कर लिये थे। इस तरह इसी एक सौदे में, अपने सगे बहनोई से छिपकर, उसने छप्पन रुपये उड़ा दिये थे।

यकायक रामप्रसाद के मन में एक प्रश्न उठा—“इन्हीं पापों का फल तो नहीं है जो मैं आज भोग रहा हूँ?”

सरोवर में एक कंकड़ी डालो, तो उसकी लहरें एक छोर से दूसरे छोर तक दौड़ जाती हैं। पर रामप्रसाद तो निरंतर ऐसी लहरों की उपेक्षा करता आ रहा था। जब उसके लिए आत्म-चेतना का अवसर था, तब भोले और असमर्थ लोगों को बेवकूफ बनाने में उसे प्रसन्नता होती थी।

रामप्रसाद ने करवट बदली; फिर उसे कुछ आशंका हुई। ऐसा मालूम हुआ कि दरवाजे पर किसी ने जैसे जोर का धक्का दिया हो। रामप्रसाद ने सोचा—‘धक्का मकान के द्वार पर नहीं, मेरे मन के द्वार पर लगा है। लेकिन अब हो ही क्या सकता है!’

फिर उसे आज की घटना का स्मरण हो आया।

नी बज गया था। अधिकांश दूकानें बन्द हो चुकी थीं; फिर भी सड़क पर यथेष्ट प्रकाश बना हुआ था। वह साइकिल पर जा रहा था। यकायक एक आदमी को आगे जाता हुआ देख वह आगे बढ़ गया। आस-पास किसी को न देखकर उसने कंगन का डब्बा बीच सड़क पर रख दिया। उसने देखा कि यदि वह इसी रास्ते से लौटेगा तो रास्ता ११०

रात और प्रभात

चलने वाले लोग यह जान जायेंगे कि यह वही आदमी है जो अभी इधर से गया था। तब वह मुख्य सड़क से न लौटकर उसके फुट-पाथ से लौट पड़ा। साथ ही यह भा देखता रहा कि कोई आदमी उस कंगन को उठा तो नहीं रहा है।

वह पूर्ण रूप से सावधान था। उसकी दृष्टि चारों ओर घूम रही थी। क्षण भर बाद उसने देखा—कि दस गज की दूरी पर एक आदमी कुछ देखता हुआ झुक रहा है। तब वह साइकिल पकड़े हुए जल्दी-जल्दी पैदल चलकर उस आदमी के पास जा पहुँचा।

उसने देखा कि वह आदमी तो अपनी जेब में हाथ डाल रहा है। तभी तुरन्त उसके मुँह से निकल गया—“यार, कोई चीज अभी तुमको यहाँ मिली है।”

उस आदमी ने उत्तर दिया—“कहाँ ? मुझे तो कोई चीज नहीं मिली।”

तब उसने तेज पड़ते हुए कहा—“सीधी तरह बतला दो, नहीं तो अभी पुलिस के सिपाही को बुलाता हूँ। दिखाओ, जल्दी करो।”

उस आदमी ने देखा कि अब बिना दिखलाये कुशल नहीं है। उसने तुरन्त जेब से डब्बा निकालकर कंगन दिखला दिया।

रामप्रसाद ने कह दिया—“यार हो बड़े भाग्यशाली। चार तोले का कंगन मार दिया। देखूँ तो ज़रा-दिखलाओ—दिखलाओ ! अरे ले नहीं लूँगा।”

हाथ में आते ही रामप्रसाद ने उछालते हुए उसे तोला और कह दिया—“चार तोले का तो न होगा। मगर तीन-साढ़े-तीन का प्रवश्य होगा। मगर यार अकेले ही अकेले। हिस्सा देना पड़ेगा।”

उस आदमी ने कंगन छीनते हुए जवाब दिया—“अब हिस्सा-विस्सा मत माँगो। पाया मैंने है, इसलिए मुझी को ले जाने का हक है।”

रात और प्रभात

“बड़े कानूनी जान पड़ते हो। मगर कुछ पता भी है, लावारिस माल की वारिस सरकार होती है। कायदे से एक कंगन तुम ले लो, दूसरा मुझे दे दो।”

“अरे हटो। अब कंगन मैं तुमको दूंगा !” कथन के साथ वह कुछ पीछे हट गया।

तब रामप्रसाद ने कह दिया—“अच्छा भाई, कंगन अगर नहीं दे सकते, तो उसके बदले में रुपया ही दो। डेढ़ पीने दो सौ का हमारा हिस्सा हुआ। बहुत करो तो दस-पाँच रुपये कम कर लो।”

उस आदमी ने जवाब दिया—“बिना सराफा दिखलाये हुए मैं कुछ नहीं दे सकता।”

दोनों साथ-साथ चलने लगे। आगे चलकर उस आदमी ने देखा कि सराफा तो बन्द हो गया। तब उसके मुँह से निकल आया—
“अब ?”

रामप्रसाद ने उत्तर दिया—“हाँ, सराफा भी बन्द हो गया। इसके सिवा एक बात और है कि जिस आदमी का कंगन गिरा है, अगर वह खोजता हुआ इधर से निकल पड़ा, तो ?”

“हाँ, यह बात तो तुमने ठीक कही। तो ऐसा करो कि जो कुछ रुपया मेरे पास है वह तुम ले लो और कंगन छोड़ दो। अब इस झंझट से मुझको मुक्त करो।”

“जो कुछ से क्या मतलब ? सौ रुपये से कम तो मैं ले ही नहीं सकता।”

“सौ रुपये ! और अगर मेरे पास सौ रुपये न निकले, तो ?”

“अगर सौ रुपये भी न निकले, तो मैं कंगन नहीं छोड़ूंगा।”

“ठहरो, पहले मैं रुपये गिन डालूँ।”

रात और प्रभात

जाड़े के दिन थे। पहने हुए वस्त्रों से नोट निकाल-निकालकर एक लैम्प पोस्ट के नीचे उसने गिनकर जो देखा, तो कुल मिलाकर इकासी रुपये निकले। तब उसने कह दिया—“बस भाई, इकासी रुपये हैं। एक रुपया तो मैं रिकशा के लिए निकाले लेता हूँ। अस्सी तुमको दे सकता हूँ।”

इस तरह अस्सी रुपये उसने जेब में डाले और कह दिया—“देखो भाई, होशियारी से जाना।” और बस इतना कहकर उसने साइकिल सम्भाली और उसपर चढ़कर बात की बात में वह नौ-दो-ग्यारह हो गया।

अपनी इस ठग-विद्या की बात सोचता-सोचता रामप्रसाद आप से आप हँस पड़ा। अपने इस पापाचार पर न उसे दुःख था, न आत्म-ग्लानि। एक विचित्र प्रकार की प्रसन्नता थी जैसी उस वक्त पशु को होती है जो अपने खूनी पंजे से एक बार में सेर डेढ़ सेर मांस नोचकर खा जाता है।

इसी समय उसके कानों में एक स्वर आ पहुँचा—यह स्वर दमयन्ती के हास का नहीं, रुदन का था। उसकी सिसकियाँ उभर रही थीं।

रामप्रसाद उठकर बैठ गया और बोला—“दमयन्ती ! दमयन्ती !! दमयन्ती और जोर से रो पड़ी। रामप्रसाद ने बिजली की बत्ती का” बटन दबा दिया। कमरे में प्रकाश फैल गया।

रामप्रसाद ने पूछा—“रोती क्यों हो, क्या बात है ?”

दमयन्ती ने आँसू पोछते हुए उत्तर दिया—“मेरी समझ में नहीं आता कि आजकल तुम करते क्या हो ! थोड़े ही दिनों बाद जब...जब भगवान मेरी गोद भरेगा, तब उस समय रुपया कहाँ से आयेगा ? खर्चा कैसे चलेगा ?”

अस्सी रुपये रामप्रसाद के कोट की जेब में पड़े ही थे। निकालकर

उसने दमयन्ती के आगे फेंक दिये । साथ ही इतना और कह दिया—
“तुम चिन्ता मत करो दमयन्ती, रुपये की पुष्पे कभी कमी न रहेगी ।”

दमयन्ती की थोड़ी बहुत-चिन्ता तो दूर हो गयी । फिर भी वह पूछ
बैठी—“सच-सच बताओ, यह रुपये तुम कहां से ले आये ?”

रामप्रसाद ने उत्तर दिया—“ अब यह मत पूछो दमयन्ती ।”

वह फिर करवट बदल रहा था ।

दूकान बन्द करने का प्रभाव मंभले भैया के पारिवारिक जीवन पर भी पड़ा। दैनिक आमदनी रुक गई थी, खर्च ज्यों के त्यों थे। अटालत का खर्चा ऊपर से देना पड़ता था। पर ऐसे संकटकाल में बड़े भैया ने उनका पूरा ध्यान रक्खा, यहां तक कि सारा घर-खर्च मितव्ययिता के साथ वे अपने निवृत्ति-वेतन से चलाते रहे। पहले वे अपनी ओर से उनसे बहुत कम बात करते थे। पर अब समय-समय पर उनको अपने पास बुलाकर बराबर सांत्वना देते रहते थे।

एक बार ऐसा हुआ कि उन्होंने पूछा—“कहो मंभले, क्या हाल-चाल है? दूकान पर बैठते थे, तो घर पर आने को समय न मिलता था। रात को नौ बजे से पहले तो कभी आते ही न थे। आते भी थे तो खापीकर सो जाते थे। आजकल यह स्थिति होगी कि समय ही न काटे कटता होगा। किन्तु तुम्हें यह मालूम है कि बाल का सत्य पर कोई वश नहीं, उसे वह किसी प्रकार मार नहीं सकता।”

मंभले भैया बोले—“बड़े भैया, और तो सब ठीक है। मगर बाहर निकलने को जी नहीं चाहता।”

बड़े भैया ने पूछा—“क्यों ?”

बात-की-बात में मंभले भैया की आँखों में आँसू छलक आये । आद्र कण्ठ से बोले—“अब यह मत पूछिये ।”

तथापि उन्होंने पूछा ही—“क्यों ? मैं न पूछूँगा, तो पूछेगा कौन ? जो विपत्ति मेरे आदर्श के द्वारा आई है उसका शमन करना भी तो मेरा ही धर्म है । और जब तक मौत सिर के बाल न पकड़ ले, तब तक धर्म-पालन से मुझे कौन रोक सकता है । तुम कहो न तुम्हें क्या तकलीफ है ?”

मंभले भैया ने निःश्वास दबाते हुये उत्तर दिया—“मैं बताना तो न चाहता था बड़े भैया, लेकिन जब आप नहीं मान रहे हैं तो बताना ही पड़ेगा ।”

बड़े भैया ने कह दिया—“देखो मंभले, यह तो तुम जानते ही हो कि भगवान् के आगे लाज का कोई प्रश्न नहीं उठता । क्या धरती और क्या आकाश, क्या जल, अग्नि और वायु—सब में सत्ता उसी की है । लक्षण, गुण-धर्म उसी का है । फिर उससे अलग हमारी कौन-सी सत्ता है ? इसमें ऐसी कौन-सी वस्तु है, जिसे वह नहीं देख रहा है । सच पूछो तो हम सब उनके आगे नंगे हैं । तब उसे सर्वव्यापक मानकर अपनी मनीव्यथा कहने में संकोच किस बात का ।”

मंभले भैया नत-शिर और पराभूत मन से बोले—“भगवान् जानता है । आप जब ऐसी बातें करने लगते हैं तब प्रायः मैं यही सोचने लगता हूँ कि मैं तो आपके चरणों के निकट बैठने योग्य भी नहीं हूँ ।”

बड़े भैया हँस पड़े । बोले—“यह तुम्हारा बचपना है । पूर्वकाल के न जाने ऐमे कौन संयोग थे, जिन्होंने तुमको हमसे और हमको तुमसे मिला दिया हमारे और तुम्हारे जीवन का एक-एक क्षण पहले से निश्चित है । उस अखंड अर्हतिश जाग्रत अमर ज्योति के आगे हमारी स्थिति एक जुगनू जैसी है । फिर भी हम हैं तो उसी के अंश । हम बूढ़ हैं तो वह समुद्र है ।

रात और प्रभात

हुलके कि उसी ओर जा मिले । छूटकर जायेंगे कहाँ ? इसमें न सुख है न दुःख । केवल एक मोह है, जिससे हम दुःखी हो उठते हैं । एक मोह ही तो है, जो मृत्यु से हम डरते हैं । मोह न हो, तो यम भी द्वार से लौट जाता है ।” मंझले भैया के होंठों पर मुस्कान दौड़ गई । बोले—“तब तो कहने की कोई बात ही नहीं रह गई बड़े भैया ।”

बड़े भैया बोल उठे—“नहीं-नहीं, कहो-कहो । क्या बात है ?”

मंझले भैया ने कह दिया—“बड़े भैया, जाड़ा आ रहा है । परसाल तो किसी तरह कट गया पर इस साल कपड़े बनवाये बिना काम नहीं चलेगा । उमिला नवीं कक्षा में पढ़ती है । अब तो वह बस पर आती है । कान्वेंट की कोटि की वस्त्र-सज्जा भी आवश्यक है । मेरा शाल पुराना पड़ गया है—बल्कि अब तो फट भी गया है । और छोटे भैया को पढ़ाई के खर्च में कुछ भी देने लायक अब मेरी स्थिति नहीं रह गई है । बतलाइये क्या करूँ ?”

बड़े भैया बोले—“बस ! इतनी-सी बात के लिए तुमने धीरज खो दिया । जाओ, भगवान् के मन्दिर में थोड़ी देर बैठो, प्रार्थना करो, मांगो उनसे । विश्वास रखो वह देंगे ।”

मंझले भैया फिर अधीर हो उठे । बोले—“आप कहते हैं तो चला जाऊँगा । वैसे मुझे विश्वास नहीं होता ।”

बड़े भैया ने उत्तर दिया—“मैं जानता था मंझले कि तुम यही जवाब दोगे । यह तुम नहीं बोल रहे हो तुम्हारे मन का पाप बोल रहा है । अगर तुमने जान-बूझकर कोई पाप न किया होता, तो कष्ट-सागर की सत्ता के प्रति तुम्हारे मन में कभी अनास्था न पैदा होती । खैर, कोई बात नहीं । तुम जाकर देखो न ? एक बार उनके चरणों पर अपनी निर्विकार श्रद्धा का अर्घ्यदान तो करो । देखो क्या फल होता है ।”

बड़े भैया का इतना कहना था कि मंझले भैया उपासना-गृह में जा

पहुँचे । बड़ी देर तक चुपचाप बैठे रहे । फिर निराश तथा विमुख होकर उन्हीं के पास लौट आये ।

बड़े भैया ने पूछा—“क्यों, हो आये ?”

“हाँ, हो आया ।”

“कुछ आभास मिला उनकी करुणा का ?”

एक फीकी मुस्कराहट के साथ मंभले भैया ने उत्तर दिया—“मिलता कैसे ! और मैं कहता भी किससे । वहाँ कोई सुनने वाला भी है ?”

बड़े भैया हँस पड़े । बोले—“तुम्हारा बचपना नहीं गया मंभले ! एक बार कहकर देखो न ? वे जरूर सुनेंगे । जरूर सुनेंगे मंभले । उनके कान बहुत बड़े-बड़े हैं । वे सब कुछ सुनते हैं । उनकी अर्न्तदृष्टि बड़ी तीव्र है । वे सब कुछ देखते हैं । उनके बाहु आजानु हैं । वे बहुत कुछ करते हैं । जाओ-जाओ । आँसुओं से एक बार उनके चरण तो भिगोकर देखो । जाओ, अभी जाओ ।”

मंभले भैया फिर गये । इस बार वे वहाँ बड़ी देर तक बैठे रहे । निराशा के उस दारुण भङ्गावात में नयन आप-से-आप मुँद गये । अश्रु निरप्रयास गिरने लगे ।

इतने में किसीने उन्हें पुकारा—“मंभले भैया ! मंभले भैया !”

मालूम नहीं क्यों, भगवान् के चरणों के पास से उठकर न वे गये, न उन्होंने कोई उत्तर दिया ।

वह व्यक्ति तुरन्त घूम-फिरकर वहीं आ पहुँचा और कहने लगा—
“अरे मंभले भैया, मैं कहाँ-कहाँ दूढ़ फिरा । आप तो यहाँ बैठे हैं ।”

“कहो, क्या काम है ?”

“अम्मा ने यह तीन सौ रुपये भेजे हैं । बहिन के ब्याह में उन्होंने लिये थे । लिए तो पूरे एक हज़ार थे, पर समय बहुत बीत गया । इधर कई वर्ष से अम्मा बहुत व्याकुल रहती थीं । वे मुझसे निरन्तर कहा-करती थीं कि पितु-श्रृण से उद्धार हुये बिना गया नहीं होती । थोड़ी-सी

रात और प्रभात

रकम तैयार हुई, तो बोलीं—‘बस इतना तो दे ही आओ। बाकी फिर दे देना।’ लीजिये, रुपये तो गिन लीजिये।”

मंभले भैया को अपनी आँखों पर विश्वास न हो रहा था। उनकी अन्तरात्मा में भगवान की करुणा के प्रति पावन आस्था का समुदय हो चुका था।

आज का दिन मंभले भैया के लिये बिल्कुल नया था। वे कभी सोच भी न सकते थे कि ऐसा भी हो सकता है। वे यह तो जानते थे कि बड़े भैया भगवान के प्रति प्रगाढ़ आस्था रखते हैं। परिचित-अपरिचित लोग उनके पास आते ही रहते हैं। अगर उनमें कोई शक्ति न होती, तो दिन-पर-दिन उनके भक्तों की संख्या कैसे बढ़ती जाती। आज के युग में जिसको विज्ञापनबाजी कहते हैं, प्रचार कहते हैं, ऐसा कोई भी साधन उनके पास नहीं है। पास बैठने के लिये वे भक्तों के आगे कोई आकर्षण भी नहीं रखते। और प्रलोभन देना न वे जानते हैं न कभी उस पर बल देते हैं। आगत-स्वागत का हाल यह है कि जब कभी कोई भक्त फल या मिठाई ले आता है तो रुपये में एक आने भर घर के अन्दर भेज देते हैं और शेष सारा भाग उन लोगों में बाँट देते हैं जो वहाँ उपस्थित रहते हैं। ऐसी दशा में आगत व्यक्तियों को अगर कोई आश्वासन नहीं देते और अगर उन आश्वासनों का भी कोई व्यावहारिक रूप नहीं बनता तो ये लोग फिर उनके पैर क्यों पूजते हैं? जबकि उनमें से अधिकांश लोग पढ़े-लिखे हैं। बड़े-से-बड़े वकील, डॉक्टर और जज; विज्ञान के रीडर और प्रोफेसर, राजनीति के विभागाध्यक्ष, क्षेत्रीय नेता और संसद सदस्य भी उनके पास आते-जाते बने रहते हैं। अगर इनमें कोई शक्ति नहीं है तो फिर ये सब लोग इन्हें क्यों घेरे रहते हैं?

कुछ दिन तक मंभले भैया उनके विषय में कुछ ऐसा ही विचार रखते थे, किन्तु इस घटना ने उनके मन का सारा भ्रम, शंका और सन्देह

सदा के लिये निवारण कर दिया। आँखों से आँसू पोंछते हुये धीरे-धीरे वे बड़े भैया के पास चल दिये।

महीने भर बाद की बात है।

छोटे भैया की मुद्रा बड़ी गम्भीर थी। जेब से रुमाल निकालते हुये उन्होंने कहा—“ऐसा नहीं होगा उर्वी। मुझे विदेशी छात्रवृत्ति के लिये प्रयत्न करना ही होगा। तुम्हीं सोचो, अगर कहीं प्रयत्न सफल हो गया, तो मेरी पद-मर्यादा कितनी बढ़ जायगी !”

छोटी बहू ने काजल की पतली रेखाओं से अंकित बड़ी-बड़ी आँखों से स्वामी की टाई अपलक निहारते हुये उत्तर दिया—“पर मेरी समझ में नहीं आता कि मेरे बिना तुम अकेले रहोगे कैसे ?”

छोटे भैया हँस पड़े। बोले—“तुम अब भी कितनी भोली हो उर्वी ! साल दो साल क्या हम बाहर रह नहीं सकते ? साथ ले चलने की बात, मैं सोच भी नहीं सकता, क्योंकि रुपया इतना कहां से आयेगा ?”

“क्यों ? चार सौ रुपये की छात्रवृत्ति है। इतने में दो आदमी क्या अपना निर्वाह नहीं कर सकते ?”

“नहीं उर्वी।

“तो फिर जैसी तुम्हारी मर्जी।”

उर्वी ने कह तो दिया, पर उसे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे कोई उसका कलेजा कुरेद रहा हो।

कथन के साथ छोटी बहू उदास हो उठी। पर उसने कोई कमजोरी नहीं दिखलाई। स्वामी के वस्त्रों पर बहू लोहा करती ही रही।

इतने में छोटे भैया बोले—“अच्छा उर्वी, तुम मेरे साथ इस इण्टरव्यू के सिलसिले में दिल्ली नहीं चलोगी ?”

‘दिल्ली ? हाँ-हाँ, ले चलो न ?’

“मगर यह बात मैं बड़े भैया से कहूँगा कैसे ? अच्छा हो, बड़ी भाभी से मिल-मिलाकर काम बना लो, अभी कई दिन हैं।”

रात और प्रभात

“मगर मैं भी उनसे कैसे कह सकती हूँ ?”

“अच्छी याद आयी। मेरा खयाल है यह काम विमला कर सकती है।”

“हाँ, कर तो सकती है और उससे मैं कह भी सकती हूँ।”

“अच्छी बात है, तो फिर यही तय रहा। आज शाम तक तुम यह मामला पक्का कर लेना।”

“तो फिर रहने दो।”

“और तो कोई बात नहीं है। केवल यही सोचता हूँ कि ऐसे प्रयत्न की पुण्य बेला में हम लोग एक साथ थोड़ा धूम जो लेंगे, तो फिर विदेश में उसकी स्मृति ताजी बनी रहेगी।”

“और इस मकान, कश्म और जीवन की स्मृतियाँ बासी पड़ जायेंगी !”

कथन के साथ छोटी बहू का हृदय कम्पित हो उठा। धुकधुकी तीव्र गति से घड़कने लगी। एक आशंका के साथ वह बोल उठी—“यह तुम कभी-कभी अन्यथा क्यों सोचने लगते हो ? मालूम तुम्हारे मन में क्या है ?”

“मेरे मन में कुछ नहीं है उर्वी। मैं प्रायः अपने से ही डरने लगता हूँ। इसके सिवा कभी-कभी कुछ ऐसा जान पड़ता है कि विदेश-यात्रा की जिन अनुभूतियों का आकर्षण मेरे लिये एक प्रलोभन है, मैं तुम्हें उनसे वंचित रखकर तुम्हारे साथ अन्याय तो नहीं कर रहा हूँ।”

“तभी तो मैं कहती हूँ मुझे संग ले चलना। अच्छा, मेरे साथ जाने में भला कितना रुपया अधिक लगेगा ?”

“अपने खर्च के अतिरिक्त दो हजार रुपये भी और हमें मिल जायें, तो किसी तरह काम चलाया जा सकता है।”

“मंभले भैया की दूकान अगर चलती होती, तो मैं जिज्जी से कह सकती थी। वैसे अगर चाहूँ तो देवकी से भी ले सकती हूँ, मगर चूँगी नहीं।”

“क्यों ?”

“क्योंकि उसमें फिर आत्म-सम्मान नहीं रहता ।”

इतने में दरवाजे के पर्दे को थोड़ा खोलती हुई विमला जो भाँकने लगी, तो छोटी बहू ने मुस्कराते हुए कह दिया—“आम्रो रानी ।”

विमला ने अन्दर जाते हुए सहसा प्रश्न कर दिया—“यह मैं रानी कब से हो गयी ?”

छोटी बहू ने उत्तर दिया—“पगली ! इतना भी नहीं मालूम कि हमारे घरों में हर एक लड़का राजा बेटा होता है और हर एक लड़की रानी बिटिया ।”

छोटे भैया कमरे से बाहर हो ही रहे थे कि सहसा कीर्ति को आता हुआ देख, उनके मुँह से निकल गया—“ओः गुड । तुम बिलकुल ठीक समय पर आ गये !” और इस कथन के साथ वे पुनः अन्दर जाकर बोले—“देखो, मेरे भाग्य से कीर्ति भी आ गया—उर्वी !”

कीर्ति छोटे भैया के साथ जो अन्दर गया, तो विमला को वहाँ पाकर प्रमुदित हो उत्साह से क्षिप्त हो उठा । बोला—“अच्छा, बड़ी तैयारियाँ हो रही हैं !”

विमला उस समय छोटे भैया के कपड़े इकट्ठे करके ट्रंक में रख रही थी ।

छोटे भैया कीर्ति की ओर उन्मुख होकर बोल उठे—“क्यों, ईर्ष्या हो रही है ?”

कीर्ति ने उत्तर दिया—“अकेला एक फूल पुलिन दुकूल पर कभी ईर्ष्या नहीं करता ।”

कथन तो उसका छोटे भैया के प्रति था, किन्तु उसके पलक विमला की ओर उठे हुए थे । अतः वह कथन के बाद तुरन्त कीर्ति की ओर उन्मुख हो उठी ।

रात और प्रभात

छोटे भैया बोल उठे—“कीर्ति, मैं तुम्हारी मामी को ले तो जाना चाहता था, लेकिन पैसे की कमी के कारण मेरी यह कामना पूरी नहीं हो रही है।”

कीर्ति ने मुस्कराते हुए हुये दिया—“रुपया एक जगह से मिल सकता है।”

प्रसन्न होकर छोटे भैया ने पूछा—“कहाँ से?”

कीर्ति ने उत्तर दिया—“बड़े मामा जी से।”

छोटे भैया ने आश्चर्य से पूछा—“उनके पास रुपया कहाँ से आया?”

कीर्ति ने उत्तर दिया—“दो हजार रुपये तो मुझे ही आज उनसे मिलने वाले हैं।”

“तुमको ? किसलिए?”

“बेकारों को काम सिखलाने वाले एक विद्यालय के लिए।”

“पर यह काम तो सरकार के विकास-विभाग का है। करना भी उसीको चाहिये।”

कीर्ति हँस पड़ा। बोला—“तुम अभी जानते नहीं हो उनको। उनकी सरकार बहुत बड़ी है। उनका कोई काम कभी रुकता है? जब वे किसी व्यक्ति को कुछ रुपया दिलाना चाहते हैं, तब तत्काल कहीं न कहीं से उतना रुपया उसके यहाँ पहुँच जाता है। वे अपने लिए कुछ नहीं चाहते, लेकिन दूसरों के लिए सब कुछ करते हैं।”

छोटे भैया के मुँह से निकल गया—“इसका मतलब तो यह हुआ कि अपनी की अपेक्षा, दूसरे उनके अधिक निकट हैं।” फिर इस कथन के साथ वह बड़े भैया के पास चला गया।

विमला अब तक चुप खड़ी थी। अब वह यकायक बोल उठी—
“मेने तो जहाँ तक उनको समझा है, मैं इतना ही कह सकती हूँ कि वे कुल के लिए व्यक्ति का, गाँव के लिए कुल का, देश के लिए गाँव का

रात और प्रभात

और आत्मा के उत्कर्ष के लिये सर्वस्व त्याग सकते हैं। ऐसा व्यक्ति कुबेर को भी अपना दास बना सकता है। लेने वाले में सत्य इतना प्रबल होना चाहिये जो उन्हें प्रभावित कर सके।”

कीर्ति विचार में पड़ गया—“क्या, यह बात मुझे छोटे मामा से न कहनी चाहिए थी?”

इतने में उर्मिला आ गयी। बोली—“मेरे नक्शे की कॉपी नहीं मिल रही है। मैं यहीं रख गयी थी। पानी लगाकर छापने वाली तस्वीरें उसी के साथ थीं।”

कीर्ति अपनी एक पुस्तक खोजने लगा—‘जीवन-निर्माण में गोपनीय वार्ताओं का महत्त्व।’

छोटी बहू ने सिर उठाकर कह दिया—“यहाँ तो कहीं है नहीं उर्मिली। होती, तो कहाँ जाती।”

इस समय अलमारी के पीछे चुपके से छिपी हुई बिल्ली एक चुहिया का नाश्ता कर रही थी।

आँगन से किसीके गिरने की आवाज पाकर बड़ी बहू चिल्ला उठी—“हाय विमला गिरी।”

रात के नौ बजे होंगे। बड़े भैया घूमने चले गये थे। मंझने दूकान में थे और छोटे घूमकर अभी लौटे न थे। कीर्ति केवल ऐसा था, जो दीड़ पड़ा।

इधर कुछ दिनों से स्नानागार के निकट काई जम जाने से उसके सामने की भूमि चिकनी हो गयी थी और अभी उर्मिला ने वहाँ पानी फैला दिया था। वहीं फूल की एक थाली पड़ी हुई थी। संयोग की बात, रपटकर विमला ऐसी गिरी कि थाली की कोर पर ही उसकी हथेली पूरे जोर से जा पड़ी। परिणाम यह हुआ कि उसमें अंगूठे, के नीचे १२४

रात और प्रभात

लगभग एक इंच गहरा और दो इंच बंकिम घाव हो गया ।

बड़ी बहू ने जो विमला को सम्हालकर उठाया, और सहारा देकर उसे जो अन्दर ले जाने लगीं, तो रक्त की एक धार गिरती हुई कमरे तक चली । कदम बढ़ाते हुए विमला का सिर कभी दायें गिरता, कभी बायें । यद्यपि विवश चेतना में दायें हाथ से बायें हाथ को वह भरसक दाबे हुए थी, किन्तु पीड़ा उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही थी । छोटी और मंझली दोनों बहुएं दौड़कर उसी कमरे में आ गयीं ।

विमला की यह दशा देखकर मंझली बहू बोली—“हाय अब क्या होगा । जीजी, कुछ उपाय करो ।”

छोटी बहू यह सोचकर उस हाथ में एक पट्टी कसकर बाँधने लगीं कि रक्त का बहना तो किसी प्रकार बन्द हो । किन्तु रक्त-प्रवाह किसी प्रकार बन्द न हो रहा था ।

बड़ी बहू ने कहा—“डॉक्टर को बुला लो कीर्ति । इस तरह से कुछ न होगा ।”

कीर्ति ने उत्तर दिया—“बड़ी भाभी, यहाँ बुलाने से काम न चलेगा । हास्पिटल में ही ले जाना ठीक होगा ।”

“तो फिर हास्पिटल में ही ले चलो । जल्दी करो कीर्ति ।”

अब विमला की आँखें भपक रही थीं । उसका सिर छोटी बहू की गोद में था और उस हाथ को वह दायीं ओर करवट लिये हुए, बायें हाथ की पाटी के नीचे भुकाये हुये थी ।

रक्त अब भी गिर रहा था—‘टप-टप ।’

कीर्ति ने विमला के कन्धे को हिलाते हुये पुकारा—“विमला ! विमला !!”

विमला की आँखें भपकी हुई थीं । क्षीण कण्ठ से उसने कह दिया—“हाँ ।”

बड़ी बहू ने पूछा—“बिटिया, कैसा जी है ?”

विमला ने कोई जवाब नहीं दिया ।

बड़ी बहू रो पड़ीं । बोलीं—“हाय, अब क्या होगा !”

कीर्ति ने जवाब दिया—“मैं सवारी लिए आता हूँ ।”

और कीर्ति मकान के नीचे सड़क पर आकर चौराहे की ओर बढ़ गया । दो-तीन मिनट के अन्दर वह एक रिक्शा ले आया ।

अब कन्धे के नीचे हाथ डालकर एक तरफ छोटी बहू ने साधा, और दूसरी ओर बड़ी बहू ने ।

विमला जब मकान के बाहर आयी, तब वह धीरे-धीरे अपने पैरों चल रही थी, पर सिर उसका अब भी कभी दायें ढुलकता, कभी बायें ।

किसी तरह वह रिक्शा के पास तक तो चली आयी । पर अब उसको उस पर बिठाला कैसे जाए ?

बड़ी बहू बोली—“अरे कीर्ति बेटा, सहारा लगाओ, संकोच मत करो ।”

कीर्ति ने झट आगे बढ़कर विमला को दोनों हाथों पर उठा लिया—और उसे रिक्शे पर बैठाते हुए कह दिया—“बड़ी, मामी, तुम्हीं विमला को लेकर बैठो ।”

छोटी बहू मकान के द्वार पर खड़ी रहीं । बड़ी बहू उस रिक्शे पर बैठ तो गयीं, पर थोड़ी ही दूर चलने पर उन्होंने कह दिया—“कीर्ति, अब तुम्हीं इसको सम्हाल सकते हो । मैं नहीं सम्हाल सकूंगी । आ जाओ—आ जाओ बेटा ।”

वैसे तो कीर्ति साइकिल पर था । विमला को रिक्शे पर बैठाकर वह घर के अन्दर से मंझले भैया की साइकिल ले आया था । किन्तु अब दूसरा रिक्शा ले आया । जब वह स्वयं विमला के सिर को गोद में रखकर बैठने लगा, तभी दूसरे रिक्शे पर बड़ी बहू चली गयीं ।

दोनों रिक्शे साथ-साथ चल पड़े ।

रात और प्रभात

थोड़ी देर बाद ज्यों ही विमला के शरीर में हवा लगी,—कीर्ति ने पूछा—“विमला ! विमला !! विमले ! विमल !!”

विमला ने आँखें खोल दीं । वह कीर्ति की गोद से पृथक होकर, किसी तरह उसका सहारा लिये बिना, बैठने की चेष्टा करने लगीं, परन्तु फिर अपने को सर्वथा अशक्त समझकर पुनः उसी की गोद में जा गिरी ।

कीर्ति ने पूछा—“कैसी तबीयत है विमला ?”

विमला की आँखें झपी हुई थीं । पुनः खोलते हुए उसने उत्तर दिया—“वैसे तो अब ठीक है, लेकिन दर्द बहुत हो रहा है ।”

बड़ी बहू का रिक्शा पीछे से चला आ रहा था ।

कीर्ति ने कहा—“बस, अब हम दस मिनट के अन्दर हास्पिटल पहुँच जायेंगे ।”

उसने रिक्शे वाले से कहा —“खूब तेज़ ले चलो । चाहे पैसे और ज्यादा ले लेना ।”

घड़ी उसके हाथ में बैठी थी । उसने कह दिया,—“देखो, नौ बजने में पाँच मिनट कम हैं । तारीफ़ तब है कि दो मिनट के अन्दर पहुँचा दो ।”

“फिर उसने पुकारा—विमला !”

विमला बोली—“हाँ !”

कीर्ति ने कह दिया—“कैसा भी संकट आये, धैर्य तो कभी छोड़ना ही न चाहिये ।”

विमला के हाथ में पीड़ा बहुत थी, फिर भी उसने उत्तर दिया—“तुम मेरा हाथ पकड़े रहना, इसी तरह । मैं भी धैर्य न छोड़ूंगी ।”

कीर्ति ने उत्तर दिया—“बस, अगर तुम इतना साहस मन में बना रखोगी, तब तो फिर कोई चिन्ता की बात है नहीं । तुम्हारा हाथ और जहाँ घाव हुआ है उसकी रेखायें—इस वक्त चाहे जितनी धुँधली हों, किन्तु शीघ्र ही घाव भर जायगा । जब वह ज्यों-का-त्यों ठीक हो जायगा, तब उसकी धुँधली रेखाएँ भी स्पष्ट हो जायेंगी ।”

पीछे बड़ी बहू का रिक्शा चला आ रहा था ।

आसपास लैम्प पोस्ट की बत्तियाँ जल रही थीं । यद्यपि दोनों और सड़कों पर दूकानें बन्द हो चुकी थीं किन्तु किसी-किसी दूकान के आगे का लैम्प अब भी जल रहा था । रास्ते में जब सामने से कोई सवारी आती तो रिक्शा बायीं ओर घूम जाता ।

विमला चुप थी । उसकी आँखों के पलक मुँदे हुये थे ।

कीर्ति ने कहा—“माना कि बहुत दर्द है । यह भी माना कि रक्त बहुत गिर जाने के कारण कमजोरी तो आ ही गयी होगी । लेकिन इतना धैर्य जरूर बनाये रखना कि चेतना बनी रहे । क्योंकि टीके तो लगाने ही पड़ेंगे ।”

विमला बोली—“अच्छा, जबसे तुमने मेरा यह हाथ अभी पकड़ लिया है, तबसे रक्त का बहना भी रुक-सा गया है ।”

बड़ी बहू का रिक्शा पीछे से चला आ रहा था ।

इतने में हास्पिटल आ गया और कीर्ति ने कह दिया—“अब हम हास्पिटल पहुँच गये । विमला, वह देखो ! आँखें खोलो ! वह जो लाल रोशनी वाला लैम्प दिखलाई पड़ता है न, बस वही दरवाजा है जिससे हम अन्दर जायेंगे । दरवाजा एक ही है, मगर यही जीवन का है और यही मृत्यु का । उसके अन्दर प्रवेश करते हुये जीवन हमारे साथ रहता है । लेकिन कभी-कभी ऐसा भी होता है कि कुछ ही घड़ियों के बाद जब हम इससे बाहर आते हैं, तब यही द्वार मृत्यु का बन जाता है । हमारे जीवन में जो परीक्षा की घड़ियाँ आती हैं, उनमें भी प्रायः ऐसा ही होता है । विमला, इसलिये तुम धैर्य मत छोड़ना कभी ! अच्छा चलो, हमको यहीं उतरना है ।”

इतने में बड़ी बहू का रिक्शा भी वहाँ आकर खड़ा हो गया ।

अब कीर्ति ने विमला के बायें हाथ को अपने कन्धे पर रक्खा और अपने दायें हाथ को उसके दायें हाथ के ऊपर ।

रात और प्रभात

विमला रिश्ते से नीचे उतरते हुये कुछ लटपटाने लगी। अतः उसने कह दिया—“मुझे अच्छी तरह मजबूती से पकड़े रहना। कई सीढ़ियाँ पार करनी हैं। गिर न पड़ूं, इसी से कहती हूँ।”

कीर्ति अनुभव करने लगा, जैसे स्वर्ण-प्रभात की पहली किरण उसके आनन पर आ पड़ी है।

बड़ी बहू साथ-साथ चलने लगी।

“यह आपात-कक्ष है। संकट-ग्रस्त अवस्था के रोगी पहले यहीं आते हैं।” कीर्ति ने बड़ी बहू को सुनाते हुये कह दिया। फिर वह सोचने लगा जैसे वह किरण यह कहलाने के लिये फूटी हो।

बड़ी बहू ज्यों ही अन्दर पहुँची, त्योंही यह देखकर सहम गयीं कि वहाँ कई तरह के मरीज बैठे हुये थे। एक लड़की का पेट बुरी तरह फूल गया था; चौबीस घण्टे से उसकी पेशाब बन्द थी। लड़की चुपचाप बेंच पर लेटी हुई थी। उसके साथ में उसकी माँ और दादी थीं। दादी कह रही थीं—डॉक्टर साहब, हमारा भी पर्चा बना दीजिये। परन्तु वहाँ टेबिल-कुर्सी पर जमे हुये जो साहब बैठे थे वे डॉक्टर न थे। उनका काम था—रोगी का नाम, रोग का विवरण देकर एक पर्चा बनाना, रजिस्टर की खाना-पूरी करना और उसे डॉक्टर के पास भेजना। एक आराम कुर्सी खाली पड़ी थी। कीर्ति ने विमला को उसी पर लिटा दिया। जिस बेंच पर वह बड़े हुये पेट वाली लड़की लेटी हुई थी, उसमें एक तिहाई जगह खाली थी। उसी पर बड़ी बहू और कीर्ति दोनों बैठ गये।

कीर्ति ने तुरन्त उस बाबू के पास जाकर कहा—“देखिये हमारा केस बहुत जरूरी है। इसलिये इस तरफ आपको पहले ध्यान देना चाहिये। यों तो आपका हर एक कार्य बहुत जरूरी है; मगर कोई काम तुरन्त करने का होता है और कोई ऐसा भी होता है कि उसे चार घण्टे बाद किया जाय, तो भी कोई अन्तर नहीं पड़ेगा।”

बाबू कीर्ति की बात से कुछ प्रभावित हुआ, किन्तु जिस रोगी का

विवरण वह लिख रहा था उसको आध-आध मिनट पर हिचकियाँ आ रही थीं ।

इतने में एक ओर से किसी स्त्री के चीखने की आवाज इतने जोर से आयी कि बड़ी बहू बोल उठीं—“कीर्ति बेटा, जल्दी करवाओ । यहां तो मुझसे बैठा न जायगा, मेरी तबीयत बहुत घबड़ा रही है ।”

बेंच से उठकर वे विमला के पास चली आयीं और उसके मुख की ओर झुकती हुई बोलीं—“विमला ! विमला !!”

विमला के पलक बन्द थे । एक बार आँखें खोलकर उसने बड़ी बहू की ओर देखा और कहा—“हाँ, मौसी ।” फिर कथन के साथ आने सिर को एक बार बाईं तरफ दुलका दिया और फिर क्षण भर बाद दायीं तरफ ।”

बाबू ने उस समय तो कीर्ति की बात सुनकर रजिस्टर पर कलम चलाते हुए कुछ नहीं कहा था;—परन्तु अब वह बोला—“हाँ, अब आप इधर आ जाइये ।” और दो-तीन सम्बन्धित प्रश्न करने के अनन्तर उसने विमला का पर्चा बनाकर रजिस्टर के साथ कार्य-वाहक डॉक्टर के पास भेज दिया ।

धीरे-धीरे दस मिनट बीत गये, पन्द्रह मिनट बीत गये, बीस मिनट बीत गये । ऊबती-सी बड़ी बहू बोलीं—“अरे कीर्ति, मुझे तो ऐसा जान पड़ता है, विमला को ज्वर भी हो आया है ।”

कथन के साथ बड़ी बहू का हाथ विमला के दायें हाथ पर था ।

कीर्ति भी अपनी जगह से उठकर विमला के पास जा पहुँचा ।

इस समय विमला की पलकें झुकी हुई थीं । बायें ओर की चोटी भीनी साड़ी के साथ अंक पर पड़ी हुई थी । केशों की एक लट, कान के नीचे आकर, छल्लों के रूप में, क्रमशः छोटी होकर लटक रही थी ।

रात और प्रभात

ग्रीवा के नीचे रेशमी नीली भूमि पर हरी बूदों का रुमाल था। नाक में सोने की कील में विजड़ित हीरे की कनी दमक रही थी। कीर्ति की आँखें केवल हीरे की कनी पर थीं। यकायक मन में आया—दुर्घटना के माध्यम से ऐसे असाधारण अवसर भी भगवान् देता है। उसने दायें हाथ की उँगलियों को उलटकर विमला के मस्तक पर रखते हुये कह दिया—
“हाँ, थोड़ा-सा ज्वर है।”

इतने में विमला ने आँखें खोल दीं।

कीर्ति ने पूछा—“कैसा जी है?”

बड़ी बहू निकट खड़ी हुई थी; बोल उठीं—“बस अभी डॉक्टर साहब आये जाते हैं। फिर सारी तकलीफ दूर हो जायगी। अच्छा!”

विमला ने जरा-सा सिर हिला दिया और आँखें बन्द कर लीं।

कीर्ति सोच रहा था—उसने कहा था—“सीढ़ियाँ कई हैं। मुझे अच्छी तरह पकड़े रहना; कहीं गिर न जाऊँ!”

इस समय जिस लड़की का पेट बढ़ा हुआ था, उसने जीभ बाहर निकालकर होठों पर फेरते हुये कह दिया—“अम्मा, पानी!”

इस समय इञ्चार्ज बाबू सिगरेट की टुकड़ी को ऐशट्रे में कूँच रहे थे और पास के कक्ष का कम्पाउण्डर कह रहा था—“विमला किसका नाम है?”

कीर्ति पास आ गया। बोला—“क्या है?”

कम्पाउण्डर ने उत्तर दिया—“इस आदमी के साथ आपरेशन थियेटर चले जाइये।”

दोनों हाथों पर कीर्ति ने विमला को पुनः उठा लिया।

रिक्शे अभी खड़े हुये थे—एक पर कीर्ति और विमला आगे-आगे चले और दूसरे पर पीछे-पीछे बड़ी बहू। कीर्ति के मन में आ रहा था—
इस संयोग के द्वारा तुम कहीं मुझको तौल तो नहीं रहे हो?

रात और प्रभात

इस समय रात के साढ़े दस बज रहे थे। निकट के स्टेशन से एंजिन की ह्विसिल की धावाज आ रही थी। सड़क की बत्तियाँ पूर्ववत् जल रही थीं। यकायक बड़ी दूर से आता हुआ कुत्ते का ऐसा कुछ चीत्कार सुनाई पड़ा, जैसे वह बस से दबकर प्राण त्याग कर रहा हो।

ज्योंही ये दोनों रिक्शे आगे बढ़े, त्योंही मृत्यु रोगी के कमरे में एक साथ कई-कई स्त्री-पुरुषों के क्रन्दन का सम्मिलित चीत्कार स्वर निकट आ पहुँचा।

बड़ी बहू ने कहा—“कीर्ति बेटा, डॉक्टर साहब से कहना—अब देर न करें। मेरा जी घबरा रहा है। कोई बार-बार भीतर से कह उठता है—कहीं ऐसा न हो...? और इतना कहते-कहते बड़ी बहू की आँखें भर आयीं।

कीर्ति ने कह दिया—“बड़ी मामी, घबड़ाओ मत। चिन्ता की कोई बात नहीं है।”

कथन के साथ उसने विमला से भी कह दिया—“तुम जरा भी घबड़ाना नहीं विमला। अच्छा ! प्रत्येक क्षण जीवन अपना काम करता रहता है। यहाँ एक बात मैं तुमको और बतला देना चाहता हूँ कि ऐसे भी व्यक्ति इस धरा-धाम पर उत्पन्न हुये हैं, मृत्यु जिनके द्वार पर आ-आकर कई-कई बार चुपचाप लौट गई है। मैं सोचता हूँ, इस परम्परा की एक कड़ी तुम भी हो।”

भीतर ही भीतर सिहर उठी विमला। उसी समय सीढ़ियों की ओर बढ़ता हुआ कीर्ति पुनः सोचने लगा। ‘सीढ़ियाँ कई हैं, मुझे अच्छी तरह पकड़े रहना। कहीं गिर न जाऊँ।’

आपरेशन थियेटर की सीढ़ियों पर कीर्ति के सहारे से चढ़ती हुई विमला सोच रही थी—‘पता नहीं, आज की इस घटना—और घटना के साथ कीर्ति के इस सान्निध्य—का भगवान की दृष्टि में क्या महत्त्व है?’

इसी समय बड़ी बहू ने कहा—“बेटा कीर्ति, जल्दी करना। मुझे

रात और प्रभात

कुछ ऐसा जान पड़ता है, जैसे मौत यहीं कहीं छिपी हुई छुपचाप खड़ी है।”

कीर्ति ने कह दिया—“डरो मत मामी, यहाँ मृत्यु नहीं, जीवन का राज्य है।”

आगे बढ़ते हुए ज्योंही कीर्ति विमला को लेकर आपरेशन थियेटर में पहुँचा, त्योंही डाक्टर मल्लिक ने कह दिया—“बस, यहीं लिटा दीजिये और आप लोग बाहर बैठिये।”

बड़ी बहू और कीर्ति दोनों दरवाजे के बाहर आये ही थे कि एक साथ एक-एक हजार कैण्डिल पावर के तीन बल्ब विमला के ऊपर प्रदीप्त हो उठे और मुख्य द्वार का शीशेदार दरवाजा पूरे का पूरा बन्द हो गया।

बाहर पड़ी बेंच पर बैठते हुये बड़ी बहू ने पूछा—“अब यहाँ क्या होगा, कीर्ति ?”

कीर्ति ने उत्तर दिया—“बड़ी मामी, विमला का मामला तो बहुत साधारण है। एक दवा खिलाई जायगी। एक-दो इन्जेक्शन दिये जायेंगे। घाव की घुलाई होकर दवा लगायी जायगी। शायद टाँके भी लगाये जायें। फिर पट्टियाँ बाँधी जायेंगी। यही वह स्थल है, जहाँ जीव नमृत्यु के साथ खेलता है। दोनों की लड़ाई होती है। जो रोते हुये आते हैं, वे हँसते हुये जाते हैं।”

इस समय पार्श्ववर्ती कक्ष में दो रोगी और आ गये। पूछने से विदित हुआ, कहीं कोई बच्चा छत से गिरा गया था। दूसरा एक बुढ़ा था, जिसका सारा पैर प्लास्टर से मढ़ा हुआ था। गाँठ की हड्डी असावधानी से गलत जुड़ गयी थी। यह भी मासूम हुआ, हो सकता है, हड्डियाँ रेती से काटकर जोड़ी जायें।

कीर्ति ने कहा—“जरा चलो बड़ी मामी उधर, जान पड़ता है, तीन डाक्टर मिलकर विमला के हाथ के घाव कौं साफ कर रहे हैं। चलो-चलो, देखो चलकर।”

रात और प्रभात

काँपती हुई बड़ी बहू बोलीं—“नहीं-नहीं, मेरा जी यहाँ बड़ा घबरा रहा है। चलो कहीं दूर जाकर बैठें, जहाँ से कुछ भी दिखलाई न पड़े, कुछ भी सुनाई न पड़े।”

तब दोनों बरामदे के दूसरे छोर पर जा बैठे।

९

रामरतन रामप्रसाद के पास ही रहता था । कभी-कभी वह उसके घर भी आता-जाता था । उस दिन जो वह रामप्रसाद के घर गया तो उसके मकान का दरवाजा भीतर से बन्द था । रामरतन ने बाहर की कुन्डी जो खटखटाई, तो पहले तो भीतर से कोई उत्तर नहीं मिला । फिर उसने पुकारा—“रामप्रसाद ! ऐ रामप्रसाद !!”

दमयन्ती उस समय चूल्हे के निकट बैठी थी और अँगीठी पर पानी खील रहा था । नाश्ते के लिए खाद्य-सामग्री निकालकर उसने पास ही रख ली थी । रामप्रसाद भोला लेकर साग-पात लेने के लिए बाजार चला गया था । दाल बीनती हुई दमयन्ती उसकी प्रतीक्षा कर रही थी । हिंदी का एक दैनिक पत्र दालान के दरवाजे के पास रखा हुआ था, जिस पर गोरैया बैठी हुई फुदक रही थी ।

दमयन्ती ने उत्तर दिया—“बाजार गये हैं ।”

स्वर उसका परिचित था । एक बार उसके मन में आया—“वह उठकर बैठक का दरवाजा खोल दे और उनसे कह दे—“आप बैठिये, वे

साग लेने गये हैं। अभी आते हैं।” किन्तु अब घड़ी-घड़ी उठने की स्थिति में वह न थी।

रामरतन लौट गया। वह अपने घर अभी पहुँचा भी न था कि उसने देखा—दो सिपाही रामप्रसाद को घेरे हुए हैं। हथकड़ी उसके दोनों हाथों में पड़ चुकी है। एक सिपाही कह रहा है—“कोतवाली पास ही तो है, सवारी-अवारी नहीं होगी।”

संभव था कि बात आगे बढ़ती और रामप्रसाद अकड़कर कह देता—बिना सवारी के मैं एक कदम न आगे बढ़ूँगा किन्तु इसी समय दिखाई पड़ गया रामरतन। पहले तो उसने उसे पुकारा। फिर जब उसने देख लिया, तब हाथों के बजाय उसने मुख को झटके के साथ नीचे करके पास आने का संकेत किया।

रामरतन तुरन्त पास आकर बोला—“ऐसा कुछ होने जा रहा है, इसकी सूचना देने ही मैं तुम्हारे घर अभी गया हुआ था।”

उसकी इस बात पर सिपाही हँस पड़ा। उसने कह दिया—“मगर जनाब ये मिलते कैसे? इनको तो बीच बाजार में इसी वक्त गिरफ्तार होना था। घर पर ये हज़रत अगर कहीं आपको मिल जाते, तो फिर इनकी शक्ल देखने को भला कैसे मिलती?”

दूसरा सिपाही बोल उठा—“चलिये-चलिये, देर मत कीजिये।”

रामप्रसाद का सर नीचा हो गया था। साग से भरा हुआ झोला सिपाही के हाथ में था। उसी की ओर आँख से संकेत करते हुए, उसने केवल इतना कह दिया—“यह झोला घर में दे देना और हो सके तो जमानत का इन्तजाम करना।”

रामरतन ने पूछा—“मगर मामला क्या है?”

सिपाही ने उत्तर दिया—“दफा ४२० का।”

रामरतन पहले तो सोच में पड़ गया। जमानत के लिए किसके पास जाना होगा?

रात और प्रभात

इतने में एक खाली इक्का सामने आ पड़ा और रामप्रसाद ने कह दिया—“ठहरो ।”

इक्का खड़ा हो गया । पहले रामप्रसाद उस पर बैठा, फिर दोनों सिपाही । इक्का चल पड़ा । और इसी समय सिपाही ने साग वाला भोला रामरतन को दे दिया ।

इस समय साग का भोला लेकर जब रामरतन रामप्रसाद के घर चलने लगा, तब वह यही सोच रहा था—“कितना अच्छा होता कि रामप्रसाद घर पर मिल जाता ।”

सब्जी मण्डी में ही सेठ बुलाकीदास के मुनीम ने उसे बतलाया था कि कल दूकान पर एक आदमी कंगन बेचने आया था । जब उसे मालूम हुआ कि इसमें तो रत्ती भर भी सोना नहीं है तब वह फूट-फूटकर रो पड़ा था । दूकान पर दस-बीस आदमी जमा हो गये थे । उसने अपना नाम ‘सूरजप्रसाद’ बतलाया था । उसने रामप्रसाद की पूरी हुलिया सेठ जी को बतला दी थी । सेठ जी खुद उसके साथ कोतवाली गये थे ।

रामरतन स्वयं भी बहुत लज्जित था । वह रामप्रसाद का मित्र था । यह तो वह जानता था कि रामप्रसाद चालाक आदमी है । मगर यह वह नहीं जानता था कि वह अन्धा भी है । उसे खाई-खन्दक का ज्ञान नहीं है, उसे अपनी बदनामी का भी डर नहीं है । यहाँ तक कि दूसरे को धोखा देने में भी वह अपना गौरव समझता है ।

‘अब किया क्या जाय ? सवाल यह है ।’ सोचता हुआ रामरतन रामप्रसाद के द्वार पर खड़ा था । उसे अब मकान की कुण्डी खटखटाने का साहस नहीं हो रहा था । वह रामप्रसाद की स्त्री से कहेगा क्या ? अभी-अभी वह जिस आशंका की सूचना देने आया था, वह कुछ ही मिनटों में पूरी हो गयी ।

स्वयं उसका हृदय धक-धक बोल रहा था—अणभर वह स्थिर

रात और प्रभात

रहा, फिर साहस करके उसने द्वार की कुण्डी खटखटायी । साथ ही कह दिया—“जरा खोलियेगा ।”

दमयन्ती ने उत्तर दिया—“बाजार गये हैं ।”

रामरतन अब जोर से बोल उठा—“मालूम है, फिर भी किवाड़ तो खोलिये ।”

दमयन्ती ने जवाब दिया—“थोड़ी देर ठहरकर आइये, जब वे आ जायें ।”

अब दमयन्ती के पेट में कुछ ऐसी पीड़ा होने लगी थी, जो मांगलिक होती है, जिसका प्रसन्नतापूर्वक आह्वान किया जाता है ।

दमयन्ती के मन में आया कि अब भी वह यही उत्तर दे दे—‘मेरी तबीयत ठीक नहीं है । आप तभी आइयेगा, जब वे आ जायें ।’ पर क्षणभर वह चुप रही ।

इतने में रामरतन फिर बोल उठा—“जल्दी खोलिये दरवाजा, काम बहुत जरूरी है ।”

अब दमयन्ती को उठना पड़ा ।

रामरतन ने दरवाजा खुलते ही भोला भीतर रख दिया और साथ ही इतना और कह दिया—“रामप्रसाद एक जरूरी काम से अटक गये हैं । बारह बजे तक तो आ नहीं सकते । संभव है और भी देर लग जाय ।”

दमयन्ती ने समझा, किसी ग्राहक का काम होगा । सिर नीचाकर उसने कह दिया—“मगर हमको तो इसी समय हास्पिटल जाना पड़ेगा ।”

“हास्पिटल जाना पड़ेगा । क्यों, ऐसी क्या तबीयत खराब है ?”

दमयन्ती सिर पर पड़ी हुई धोती को आगे खिसकाती हुई किञ्चित् हँस पड़ी । यही उसका उत्तर था ।

रामरतन को बात समझने में देर न लगी—“ऐसी बात है तो

रात और प्रभात

चलिये, मैं भरती करवाये देता हूँ। बल्कि अपनी स्त्री को भी साथ लिये चलता हूँ। आप चिन्ता न करें, यह तो बड़ी खुशी की बात है।”

रामरतन सोच रहा था—“एक तरफ ऐसी खुशी की बात है जिसे दूसरे लोगों को बताने में सभी लोगों को प्रसन्नता होगी। दूसरी तरफ इतनी लज्जा की बात कि मैं इनको भी न बता सकूँगा, जो उसकी धर्म-पत्नी हैं।”

इसके बाद रामरतन ने कह दिया—“मैं अभी टैक्सी लेकर आता हूँ। कार में ही ले जाना ठीक होगा।”

थोड़ी देर बाद जब रामरतन अपनी स्त्री के साथ दमयन्ती को गाड़ी में बिठालकर निकट के ही ‘मिशनरी हास्पिटल’ ले जाने लगा, तब वह सोच रहा था—कितना अच्छा होता कि रामप्रसाद ने हँसी-खुशी के साथ समझौता कर लिया होता। मगर अब क्या हो सकता है।

हास्पिटल से लौटकर रामरतन एक ऐसे मित्र के पास गया, जो रामप्रसाद से परिचित था, जिसके साथ उसके लेन-देन का सम्बन्ध भी चलता था। उसका नाम था—‘किशोरीलाल’। उसकी कोई दूकान तो न थी, पर वह कोठीवाला अवश्य था। वह सीधा उसी के पास जा पहुँचा।

अब बारह बज चुके थे और उसकी भूल भी जग उठी थी। फिर भी सोचने लगता था कि अब तो रामप्रसाद के साथ ही बैठकर भोजन करूँगा।

लाला किशोरीलाल उस समय मसनद के सहारे बैठे हुए एक समाचार-पत्र पढ़ रहे थे। आँखों पर चश्मा था और पान का बीड़ा मुँह में भरा हुआ था।

रात और प्रभात

रामरतन ने जाते ही कहा—“लाला जी, आज एक जरूरी काम से आया हूँ।”

लाला जी सामने दृष्टि डालते हुए बोले—“आओ बैठो। अ० मुनीम जी, दो बीड़े पान तो मँगवान् ”

इतने में नौकर सामने आ गया और तब यही आदेश उन्होंने तुरन्त उसे भी दे दिया।

मुनीम जी ने लाला जी की तरफ़ देखा और फिर सिर नीचाकर बालूदानी उठाते-उठाते समक्ष रखी हुई बही पर उसका प्रयोग करने लगे। महारा पान लेने चला गया था।

रामरतन ने पूरी कथा न कहकर प्रारम्भ में केवल इतना ही कहा—
“एक आदमी की जमानत करनी है।”

“जमानत ! किसकी जमानत ? मैं किसीकी जमानत-वमानत नहीं करता।”

“अरे लाला जी, बिल्कुल अपना आदमी है।”

“ओ, अपने आदमी की जमानत कभी करनी ही न चाहिए। धोखा हमेशा अपने ही आदमियों से होता है।”

“नहीं लाला जी, वह ऐसा आदमी नहीं है। मैं जिम्मेदार हूँ, अगर कोई गड़बड़ी हो।”

“तुम जिम्मेदार हो, तो तुम्हीं जमानत कर दो न।”

“मेरी ऐसी हैसियत होती, तो मैं आपके पास आता ही क्यों।”

“सवाल हैसियत का नहीं—साख़ का है। मैं आपकी जमानत कर सकता हूँ। मुझे विश्वास है कि आपसे धोखा नहीं होगा मगर जिसको मैं नहीं जानता, उसकी जमानत कैसे कर सकता हूँ।”

रात और प्रभात

इतने में पान आ गये और लाला जी बोले—“लो पान खाओ ! चप्पू, आपको सिगरेट ले आओ । और कुछ ? मिठाई मँगवाऊँ ? अच्छा जाने दो, समोसे खाओ । चप्पू, तुम बस चार समोसे ही ले आओ इनको ।”

रामरतन बोले—“लाला जी—मैं तब तक कुछ नहीं खाऊँगा, जब तक आप मेरी बात नहीं मानेंगे । एक भले आदमी की इज्जत कः सवाल है ।”

“मगर वह भला आदमी है कौन ? उसका नाम भी तो मालूम हो ।”

रामरतन ने सोचा—‘बिना नाम बतलाये तो काम चलेगा नहीं ।’

बोला—“आप उसे जानते हैं । उसका नाम है—रामप्रसाद ।”

नाक पर बल देकर, लाला जी ने पूछा—“कौन रामप्रसाद ? रामप्रसाद-जगन्नाथ, या रामप्रसाद-चेतराम ?”

रामरतन ने उत्तर दिया—“फर्म ‘ज्ञानचन्द-ध्यानचन्द’ का साझीदार ।”

“ओः, जिसका बंटवारे का झगड़ा चल रहा है वह ! तो यह कहो कि गबन का मामला है । न बाबा, ऐसे मामले में मैं जमानत नहीं करता ।”

रामरतन ने अब थोड़ा झुककर लाला जी ने निकट आते हुए कहा—“मामला गबन का नहीं—घोखेबाजी का है और सिर्फ दुश्मनी के ह्याल से चलवा दिया गया है । वरना उसमें कुछ दम नहीं है ।”

लाला जी ने सामने रखे हुए कैशबाक्स पर झुकते हुए उत्तर दिया—“देखो रामरतन, मुझसे कोई बात छिपी नहीं है । रामप्रसाद की साख नष्ट हो गयी है । उसकी जमानत एक मैं क्या, बाजार में कोई नहीं करेगा । सभी यही कहते हैं, जो अपने बहनोई का न हुआ, वह

किसी और का क्या होगा ? इसलिए मैं उसकी जमानत किसी तरह न करूँगा । अधिक कहना बेकार है ।”

रामरतन का पेट खाली था । जलपान तो उसने किया, पर हर एक कौर को ग्रहण करते क्षण वह यह बराबर सोचता रहा—‘मैं तो जलपान कर रहा हूँ पर न जाने रामप्रसाद पर क्या बीत रही हो ।’

हवालात में बन्द रामप्रसाद के मन में एक युद्ध चल रहा था । क्या अकेला मैं ही अपराधी हूँ ? बाजार में जो अनाज बिकता है, उसमें मिट्टी, कंकरी और बजरी मिली हुई बिकती है । कोई नहीं पूछता कि यह क्यों मिलाई जाती है । गेहूँ के आटे में जुआर का आटा मिलाकर बेचा जाता है । हर चक्की वाले मिलाते हैं । मगर उन पर मामला चलते हुए कभी देखा नहीं गया । ऐसा कौन-सा शहर है जहाँ विशुद्ध घी में वनस्पति वाला तेल मिलाकर न बेचा जाता हो ? कितनी बार सुनने में आया कि इस वनस्पति वाले घी में कोई ऐसा रंग मिला दिया जायगा, जिससे मिलावट की फिर कोई सम्भावना न रहेगी । मगर मिलावट तो हमारे नेताओं की नस-नस में घुसकर रक्त तक में घुल-मिल गयी है । इन पर क्यों नहीं मुकदमा चलाया जाता ? पुराने ब्लेड्स बाजार में सरे-आम बिकते हैं, इंजक्शंस और औषधियों में मिलावट और धोखा-धड़ी की पचासों मिसालें सामने हैं । किन्तु कहीं रोक-टोक नहीं है । रेल के मुसाफिर टिकट इन्सपेक्टरों की जेब गरम करते हुए कलकत्ता से दिल्ली-कालका तक की सैर करते हैं । अदालतों में हाकिमों की आँख बचाकर कौन पेशकार रुपया नहीं उड़ाता-खाता ? कहीं-कहीं तो हाकिम देखकर भी अन-देखी कर देते हैं । मिलों के अन्दर मिस्त्री लोग किस नये आदमी से नज़राना नहीं लेते ? इनकम टैक्स और सेल-टैक्स के मामलों में क्या घूसखोरी नहीं चलती ? ठेकेदार लोग सम्बन्धित अधिकारी को बिना कुछ चटाये हुए घड़ी भर भी खड़े रह सकते हैं ? कहते हैं, इंजीनियरों को वे जो कुछ देते हैं, उसका हिसाब पहले लगा देते हैं । कौन नहीं

रात और प्रभात

जानता कि लोक सभा, विधान सभा तथा राज्य सभा के चुनाव में खड़े होने वाले अवैध अपव्यय किये बिना विजय-लाभ नहीं कर पाते ? और पार्टी के नाम पर कोट्याधीशों से चंदा माँग-माँगकर इकट्ठा की हुई निधि से ही दस-दस रुपये में वोट खरीदना—पैसे के प्रलोभन से जनता के अधिकार की हत्या करना—अपराध नहीं है ? और इन पूँजीपतियों को यदि अनुचित आश्वासन नहीं दिये जाते, अगर इनको अवैधानिक रूप से लाभ नहीं पहुँचाया जाता, तो ये लोग लाखों रुपये क्यों सहर्ष उठा देते हैं ? फिर जनता जिन लोगों का समर्थन नहीं करती, 'देश का गौरव' कहलाने वाले जो लोग, उन्हीं का पक्ष लेकर जनता के साथ मनमानी करते हैं, वे कम अपराधी हैं ! ऐसे लोगों को क्षमा करने का क्या अर्थ होता है ?

अब दिन के दो बज रहे थे और रामप्रसाद के मुँह में पानी भी नहीं गया था । उसके मस्तिष्क में पीड़ा हो रही थी, उसके पेट की अंतर्द्विर्भा कुलबुला रही थीं । फिर भी एक के बाद एक दूसरा विचार उसके मन में आ ही जाता था ।—'कौन जाने दमयन्ती की क्या स्थिति होगी ! रोटी तो बना ही ली होगी । खाना हो सकता है, पेटभर न खाया गया हो ।—लेकिन यह रामरतन मौके पर मिला खूब । अगर यह भी न मिलता, तो क्या होता ?—पर जमानत के लिए अब तक कोई नहीं आया !'

इस स्थल पर उसकी आँखें भर आयीं । अगर बड़े भैया ने हमारे सम्बन्धों के बीच में अन्तर न डाला होता, तो क्या आज मैं इस स्थिति में होता ? खैर जी, कोई बात नहीं । कोई तो जमानत करेगा ही । हो सकता है कोई आ ही रहा हो । मगर अब तक क्यों नहीं आया ?—गोपीनाथ से कह तो दिया होगा उसने ।

यों तो सभी सीखचों के ऊपर तारों की जाली थी, किन्तु मुख्य द्वार पर केवल सीखचे थे । सन्तरी पहरा दे रहा था । रामप्रसाद कंबल बिछाये हुये अभी बैठा था अब उठकर खड़ा

रात और प्रभात

हो गया ।—कितनी देर से वह रामरतन की प्रतीक्षा कर रहा है । पर अब तक न वह खुद आया, न कोई और । ऐसा भी तो हो सकता है कि जमानत करने को कोई राजी न हुआ हो ।—ठीक तो है । जब मैं आखों से ओझल हो गया हूँ, तब मेरे विरुद्ध परोक्ष में कोई कुछ भी सोच सकता है—कुछ भी कह सकता है ।—लेकिन यह रामरतन है पूरा उल्लू । यह सीधा किशोरीलाल के पास क्यों नहीं चला गया । अभी महीना भर भी तो नहीं हुआ । मैंने उनका एक काम किया था । उनके लड़के का तिलक चढ़ रहा था । संध्या के छैं बज रहे थे और लाउड स्पीकर वाला आया न था । मैं जो सामने पड़ गया तो लाला जी ने मेरी ठुड्डी पकड़कर कहा था—भैया, जरा जनरलगंज तक चले जाना ।.....इलेक्ट्रिक कम्पनी वाले अभी तक नहीं आये । दरवाजे की सारी शोभा समाप्त हुई जा रही है । पर मेरी समझ में नहीं आता कि यह गोपीनाथ कहाँ मर गया ! क्या उसकी दूकान—लाला किशोरीलाल, भरोसेलाल के मालिक पन्ना बाबू ने भी जमानत करने से इनकार कर दिया ?'

इतने में तीन का घंटा बज गया और सीखचों को छोड़कर रामप्रसाद सिर लचाकर कम्बल पर आँवे मुँह लेट गया ।—अच्छा, ऐसा भी तो समय आ सकता है कि कोई मेरी जमानत ही न करे ! जब मैंने बाजार का विश्वास खो दिया, तब अगर उसका यही नतीजा हो, तो इसमें आश्चर्य क्या है ?

—मगर मैंने बाजार के सेठों का विश्वास तो खोया नहीं । मैंने किसी सेठ को धोखा नहीं दिया ।

—ओ: तो यह बात है । धोखा मैंने उनको दिया है, जो मूर्ख, भोले और बहुत मामूली स्थिति के आदमी हैं । गरीब और किसान हैं—किसी तरह अपनी मुँदी-ढपी गृहस्थी का भार ढो रहे हैं । जिनके जीवन में न १४४

रात और प्रभात

शान्ति है, न संतोष । तभी तो वे बेचारे प्रलोभन के जाल में फँस जाते हैं ।

तब तो मैं क्षमा के योग्य किसी तरह नहीं हूँ । कितना अच्छा हो कि मौत मुझे दैत्य बनकर चबा जाय या यह हवालात अजगर बनकर मुझे निगल जाय !

जब मँझले भैया ने सुना कि रामप्रसाद हवालात में है और अपराधी है धारा ४२० का, तो उन्होंने प्रकट रूप से कुछ नहीं कहा । बड़े भैया वहाँ बैठे ही हुए थे, और रामरतन के साथ था—‘गोपीनाथ ।’ अतः गोपीनाथ ने ही मुंह खोला था । रामरतन ने केवल समाचार दिया । जमानत के सम्बन्ध में प्रस्ताव किया गोपीनाथ ने, साथ में इतना और कह दिया कि बड़े भैया आप ही पन्ना बाबू से इस सम्बन्ध में कह दें तो वे जमानत कर देंगे । मँझले भैया डरते थे कि अगर इस विषय में मैं कुछ कहूँगा तो कहीं मेरी परिस्थिति विचारणीय न हो उठे ।

गोपी बाबू ने कहा—‘बड़े भैया, विचारणीय दो बातें हैं—दूकान के बंटवारे का मामला न्यायालय के अधीन हो जाने के अनन्तर रामप्रसाद की आर्थिक स्थिति चिन्ताजनक हो गई थी । उस बार जब मैं आया था तो चिन्ता का यही रूप मैंने आपके मन में भी देखा था । इसलिए रामप्रसाद जो विपथगामी बन गया है वह कम से कम हम लोगों के लिए दुःखद भले ही हो किन्तु आश्चर्यजनक नहीं ।’

गोपी बाबू के इस कथन पर मँझले भैया कुछ नहीं बोले—और रामरतन ने कह दिया—“बड़े भैया, यह समय इस तरह बहुत सोच-समझकर, एकदम ठण्डे दिल से, धीरे-धीरे विचार करने का नहीं है । अगर हम घण्टे भर में कोतवाली नहीं पहुँच जाते हैं तो रामप्रसाद की

रात और प्रभात

हालत खराब भी हो सकती है। इसलिए मेरे ख्याल से जमानत तो तुरन्त कर ही देनी चाहिए। उसके बाद फिर हम आगे का कार्यक्रम सोचने में, तय करने में स्वतंत्र तो रहेंगे ही, अधिक सुविधा में भी होंगे।

इसी समय गोपी बाबू बोल उठे—“बस-बस, बिल्कुल यही बात मैं भी कहने जा रहा था। मेरा मतलब यह है कि पाप से तो घृणा होना श्रेयष्कर है ही, साथ ही साथ पापी के साथ सहानुभूति रखना भी वांछनीय है।”

बड़े भैया ने उत्तर दिया—“देखो भाई, भविष्य की रूपरेखा चाहे घुँघली भी जान पड़ती हो, परन्तु हमें तो सबसे पहले उसी कर्तव्य की ओर ध्यान देना चाहिए जो इस समय हमारी आंखों के सामने है।”

इसी तरह जब बड़े भैया चलने को तैयार हो गये, तो मंभले भैया बोले—“बड़े भैया, मेरे चलने की तो कोई आवश्यकता है नहीं।”

इतने में छोटे भैया प्रकट हो गये। बोले—“मगर मेरे चलने की आवश्यकता है। मेरा दाहिना हाथ दोनों कामों के लिए तत्पर रहता है। आवश्यकता होने पर इसी से धक्का देकर मैं नीचे गिरा देता हूँ और नीचे गिरे हुए आदमी को फिर इसी हाथ से पकड़कर ऊपर भी ले आता हूँ।”

छोटे भैया की इस बात पर सब लोग हँस पड़े। बड़े भैया ने मंभले से कह दिया—“जैसी तुम्हारी इच्छा।”

रामरतन ने अब तक एक बात छिपा रखी थी, अब उसे वहीं प्रकट कर दिया। बोला—“हाँ, एक बात तो मैं भूल ही गया। रामप्रसाद की स्त्री दमयन्ती इस समय हास्पिटल में है। उसके बच्चा होने वाला है।”

इस पर बड़े भैया बोल उठे—“यह बड़ी प्रसन्नता की बात सुनाई तुमने। हमको उधर भी देखना चाहिए। अरे छोटे, तुम जाओ अन्दर यह १४६

रात और प्रभात

समाचार सुना दो । अगर किसी को जाना हो तो चला जाय ।”

मँझले सोचने लगे—“भगवान को इसी समय चित्र के दोनों पहलू एक साथ दिखलाने थे । कैसी विचित्र बात है ।”

छोटे क्या सोच रहे थे—“मैंने अक्सर यही देखा है कि जब किसी मुहल्ले में कहीं आग लगती है, तो पड़ोस में ही कहीं-न-कहीं बच्चा जन्म लेकर पहले रोता और फिर खेलने लगता है । अच्छा इसी भाव पर यदि एक कविता लिखी जाय, तो कैसा हो ?”

बड़ी बहू ने जब यह सब हाल सुना तो आँगन में खड़ी होकर आकाश की ओर हाथ उठाकर बोल उठीं—“हे भगवान, सबके घर में मंगल करना” और झट से मँझली के पास आकर कहने लगी—“मुझे ऐसा जान पड़ता है कि अब सब ठीक हो जायगा । सब ठीक हो जायगा मँझली ।”

“सब चिन्ता दूर हो गई हमारी ।”

मँझली गोविन्द को दूध पिला रही थी । बोली—“मन तो मेरा भी करता है कि इस समय दुलहिन के पास मुझे होना चाहिए था । मगर.....” इतना कहते-कहते उसकी आँखें भर आयीं ।

इस समय बड़ी बहू बोल उठी—“दुलहिन, ऐसे समय हमारे मन में पिछली बातों की कोई कचोट नहीं होनी चाहिए । अरे उर्मिला—रानी, जरा विमला को भी तो बुलाना ।”

विमला झट दौड़कर आ पहुँची और बोली—“मौसी, चलती हूँ मैं अभी ।”

इस प्रकार एक तांगे पर बड़े भैया, गोपी बाबू और रामरतन चले कोतवाली की ओर; उसके थोड़ी देर बाद बड़ी बहू, विमला, उर्मिला छोटे भैया चले हास्पिटल की ओर ।

रात और प्रभात

इतने में रामरतन, गोपीनाथ और पन्ना बाबू वहाँ आ पहुँचे । साथ में थानेदार भी थे ।

संतरी ताला खोलने लगा और रामरतन ने कह दिया—“उठो, रामप्रसाद, कैसे आँचे मुंह पड़े हो ? चलो अब घर चलो ।”

उठते हुये रामप्रसाद सोच रहा था—“प्रायश्चित्त की भावना आते ही ऐसा हो सकता है, ऐसा तो कभी सोचा न था ।”

बायें पैर में दर्द होने के कारण बड़े भैया बैठे-बैठे जब उठने लगते तो गाँठ पर हाथ लगा लेते और थोड़ा-सा लंगड़ाते भी थे। कीर्ति गोविन्द के आकार के अनुरूप बड़ई-मिस्त्री से एक छड़ी बनवा लाया था। बड़े भैया किस तरह छड़ी हाथ में लेते हैं, कैसे लंगड़ाते और कमर झुकाकर चला करते हैं, उधर गोविन्द को उसकी अनुकृति दिखलाने का अभ्यास हो गया था और दिनानुदिन वह इसमें रस लेने लगा था।

अब दिन ढल रहा था और घूप पूर्वी दीवार के ऊपरी भाग पर तिरछी होने लगी थी। परिवार के सभी सदस्यों से घर भरा हुआ था, और सबके मुख पर एक नये उल्लास की छाप थी। जिस चारपाई पर बड़े भैया बैठे हुए थे, उसी पर एक तरफ कीर्ति फर्श पर पैर लटकाये बैठा था। मंभले भैया पश्चिमी दालान में थे और पीतल के सराँते से छालियाँ काट रहे थे। छोटी बहू दक्षिणी दालान में थी और एक तकिया के आवरण पर रेशमी डोरों से वे जो बुनाई कर रही थीं, उनसे 'स्मृति-लोक' शब्द बन रहा था। वहीं बैठी हुई मंभली बहू के हाथ में

दो सलाइयाँ थीं, जिनसे वे स्वेटर बुन रही थीं। छोटे भैया आरामकुर्सी डाले एक मासिक पत्रिका में किसी अंगरेज का जो लेख पढ़ रहे थे, उसका विषय था—‘ब्रिटेन में पाकिस्तान का, काश्मीर के मामले में, भारत-विरोधी प्रचार’ विमला के सामने बापू की एक जीवनी थी, जिसमें एक अध्याय था—‘संसार के नारी-समाज को बापू की देन’। वह छोटी बहू के निकट दरी पर बैठी हुई थी। एक रुमाल उसके हाथ में था, जिसे वह कभी-कभी लाल हो रही नासिका पर लगा लेती थी। इधर कल से उसे जुकाम था। श्वेत भूमि पर हरे-पीले बूंदों वाली साड़ी के ऊपर वह एक स्कार्फ डाले हुए थी और केश-राशि की दो चोटियों में से एक बाईं ओर ग्रीवा को छूती हुई वक्ष पर लटक रही थी। उमिला अपनी माँ के निकट बैठी हुई एक चित्र बना रही थी।

बड़ी बहू ने हँसते-हँसते कहा—“गोविन्द, जरा दिखलाओ तो दादा कैसे चलते हैं।”

कीर्ति ने इसी अवसर के लिए जो छड़ी बनवाई थी, उसे गोविन्द के हाथ में देते हुए कहा—“हाँ, अब बतलाओ।”

प्रमुदित गोविन्द खड़ा होकर किलकने लगा। बड़ी बहू ने गोद में लेकर उसकी चुम्मी ली और कह दिया—“हाँ अब दिखलाओ, दादा कैसे चलते हैं।”

जब कीर्ति ने देखा कि अब वास्तव में गोविन्द बड़े मामा जी की अनुकृति प्रदर्शित करने को तत्पर है, तो उसने खड़े होकर इस दृश्य का उद्घाटन करते हुए कहा :

“आदरणीय मातुल-मातुली-जन तथा अन्य स्नेह-संचारी, युवा-किशोर, बाल-गोपाल,

“गीता का वचन है कि श्रेष्ठ किंवा ज्येष्ठ लोग जो कुछ करते हैं, कनिष्ठ प्रायः उसी का अनुसरण करते हैं। ध्यान से देखें तो यह प्रवृत्ति इतनी स्वाभाविक है कि मानवोत्तर पक्षियों और चतुष्पदों में भी पाई

रात और प्रभात

जाती है। सांगोपांग जीवन की अभिव्यक्ति के हेतु कला और संस्कृति के क्षेत्र में अनुकृति का महत्त्व निर्विवाद है। पर विज्ञान के क्षेत्र में तो अनुसरण और अनुगति के बिना किसी भी आविष्कार की परिलब्धि में क्रमिक प्रगति सम्भव ही नहीं है।”

विमला का ध्यान लेख के जिस स्थल पर था, उसमें बापू का एक कथन उद्धृत था। उसका अभिप्राय यह था कि बीमारी-मात्र मनुष्य के लिए शर्म की बात है। वह किसी दोष की सूचक है। जिसका तन और मन स्वस्थ है, उसे बीमारी होनी ही न चाहिये।

इस कथन पर वह एक बार विचार में पड़ गयी। तबियत लग नहीं रही थी अतएव उसने पुस्तक उठाकर एक ओर रख दी। अब उसका ध्यान पूर्णतया कीर्ति के मुख और विशेष रूप से उसके कथन पर केन्द्रित था। पर संयोग से ज्योंही उसकी बात पूरी हुई, त्योंही उसे छींक आ गयी और अनायास सभी लोग उसे देखने लगे।

इसी समय गोविन्द ने कमर झुकाई, बायें पैर की गाँठ पर हाथ रक्खा और छड़ी दायें में लेकर जो लँगड़ा-लँगड़ाकर चलना आरम्भ किया, तो बड़ी बहू ने ताली बजा दी। फिर एक साथ सभी लोगों की तालियों का स्वर घर-भर में गूँज उठा! बड़ी बहू ने गद्गद होकर गोविन्द को गोद में उठा लिया फिर उसकी चुम्मी ली। और चारपाई से उठते हुये बड़े भैया बोले—“भुके तो ऐसा जान पड़ता है कि यह सारा जगत् एक सरोवर है। उसमें खिले हुये कमलमात्र बच्चे हैं और नाल-भाग में पुरुष-वर्ग।”

बड़ी बहू बोल उठी—“और हम स्त्रियाँ कहाँ जायँगीं?”

बड़े भैया ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया—“उनका मायालोक ही अलग है?”

“अलग तो है, मगर है कहाँ?” बड़ी बहू से पूछे बिना न रहा गया।

रात और प्रभात

बड़े भैया बाहर जाते हुए अब द्वार तक जा पहुँचे थे। बिना रुके हुए बोले—“अब भी तुम्हारी समझ में नहीं आया ! नाल-भाग के नीचे वाला जो पङ्क-लोक है, वह किसका है ?” फिर आप-ही-आप हँस पड़े।

उत्तर यद्यपि बड़ा कठोर था; विशेष रूप से नारी-जाति के लिए। फिर भी जब किसी ने कुछ नहीं कहा, तो विमला के मुँह से निकल गया—“बात सही भी हो सकती है पर एक बात इसमें बड़ी गड़बड़ी है।”

मँझली बहू बड़ी देर से चुप थीं। बोलीं—“उसे भी अब कह ही डालो विमला।”

कीर्ति को भी मँझली भाभी का प्रस्ताव उत्तम और सामयिक प्रतीत हुआ। उधर छोटी बहू ने धीरे-से कह दिया—“हाँ, ठीक तो है। कहो-कहो।”

विमला ने एक बार रूमाल को नाक से लगाया और कह दिया—“पङ्कलोक है, तभी पुरुषों की नाक बनी हुई है। वह अगर न होता तो—उनको शर्म फिर से उठाने की भी गुंजाइश न रहती। यह पंक् ही की शक्ति है, जो जीवन की अक्षय निधियाँ भी गुप्त, प्रच्छन्न और सुरक्षित बनी रहती हैं।”

विमला का यह कथन यद्यपि बड़ी बहू के जीवन को छू न पाता था, फिर भी उन्होंने उत्तर दिया—“देखती हूँ, आजकल बात बहुत करने लगी है विमला।”

मँझले भैया बोले—“भाभी, बात तो वह बावन तोले पाव रत्ती सही कह रही है। मैं सोचता था, रामू की दुलहिन न जाने किस स्थिति में होगी। लेकिन छोटे भैया से मालूम हुआ, बच्चा क्या पैदा हुआ है, एक तरह से उसका भाग्य ही उदय हो गया है। उर्मिला की माँ को बिना बुलाये दुलहिन की तबियत न मानी। फिर उत्साह दिखलाने में कोई कोर-कसर नहीं रक्खी। ग्राम्लेट बनवा देने का वादा किया है। जरूर उसके पास गहरा माल-ढाल होगा।”

रात और प्रभात

छोटे भैया का मन बड़ा दुखी था । जबसे उन्होंने सुना कि बड़े भैया कीर्ति को दो हजार रुपये दिलवा रहे हैं, तबसे यह विचार किसी तरह उनके मन से हटता न था कि कीर्ति उनके लिए सगा है और मैं पराया हूँ । क्या यही रुपया वे मुझको नहीं दिलवा सकते थे ? फिर इस अवसर पर विमला ने जो यह बात कही कि स्त्रियाँ धन-सम्पत्ति को छिपाना खूब जानती हैं, तब तक कोई बात न थी । पर बड़ी बहू ने जो इसी बात पर विमला को डाँटने की चेष्टा की, तो छोटे भैया को विश्वास हो गया कि विमला बिलकुल ठीक कहती है । बड़ी भाभी के पास वास्तव में रुपये की कमी नहीं है ।’

यह विचार छोटे भैया के मन में आया ही था कि वे तुरन्त बाहर चले गये ।

“क्या बात करते हो !” दाँतों तले जित्ना दबाती हुई मँझली बहू ने कह दिया—“कम-से-कम भगवान से तो डरा करो । संकट के समय भी आपस में लाग-डाँट और वैर-विरोध को जो दबा नहीं पाते, वे आगे चलकर कभी न कभी ऐसे जाल में पड़ ही जाते हैं कि दुनिया उन पर हँसती है ।”

कीर्ति देख रहा था । गोविन्द छड़ी को बार-बार देख रहा है और उसे बड़ी भाभी को दिखलाता हुआ कह रहा है—‘अम्मा’ ! ऐसा प्रतीत होता है कि उसके लिए अम्मा को छोड़कर जगत में कुछ नहीं है । यह संसार-भर उसके एक शब्द में समाया हुआ है—‘अम्मा !’ तो अम्मा है ही, अन्य जिन लोगों का प्यार उसे मिलता है वे सब—‘अम्मा’ हैं । कभी-कभी तो यहाँ तक भान होता है कि सभी वस्तुएँ अम्मा हैं । वह कीर्ति की गोद में आ गया और बोला—“अम्मा !” फिर उसने छड़ी उठा ली और हँसते हुये कह दिया—“अम्मा !”

रात और प्रभात

गोविन्द को गोद में लेते हुये कीर्ति बोल उठा—“और भी एक बात है मंझने मामा । ऐसा नहीं है कि हमारे कार्य-कलाप को कोई देखता न हो । प्रकृति जन-जन का लेखा रखती है । मनुष्य इसी जीवन में सब कुछ भोग लेता है । आज ही मैंने सुना कि रामप्रसाद मामा पता लगाते-लगाते कंगन वाले के पास गये और उसका रुपया उसे दे आये ।”

विमला बोली—“इसको मैं प्रायश्चित्त नहीं मानती । सबसे बड़ा प्रायश्चित्त तो यह है कि आदमी फिर कभी वैसे पाप के पंक में न पड़े । पर मुझे तो ऐसा लगता है कि रामप्रसाद मामा अवसरवादी हैं । आज कंगन वाले को मिलाने के लिए उसके आगे रोने और गिड़गिड़ाने में भी उन्हें संकोच नहीं, लाज नहीं । पर कल ही किसी बड़ी रकम के लोभ में पड़कर वे पुनः किसी न किसी भोले और भलेमानस आदमी को हानि पहुँचाये बिना न मानेंगे ।”

कीर्ति बोला—“मनुष्य को समझने में यही लोग भूल कर बैठते हैं । कौन कह सकता है कि मार्ग एक ही है । उस दिन बड़े मामा कह रहे थे कि उसके मन्दिर के अनेक द्वार हैं । कोई किसी द्वार से उसके चरणों के निकट पहुँचता है, कोई किसी द्वार से । ये धर्माचार्य लोग अपनी-अपनी डफली चाहे जितनी बजाते रहें कि ईश्वर को प्राप्त करना है तो हमारे ही निकट आओ । एकमात्र यही मार्ग है । यह कहना सही नहीं है कि पापी सदा के लिए पापी है । पाप स्वयं एक प्रतिक्रिया है । ऐसा भी तो हो सकता है कि पापी एक विशेष स्थिति में आते ही धर्मात्मा बन जाय । जैसे पाप किसी अभाव की प्रतिक्रिया है वैसे ही धर्म भी पापाचारों के दुष्परिणामों की प्रतिक्रिया है । दुष्परिणाम भी अन्ततोगत्वा प्रभाव ही तो है ।”

अब विमला हँसने लगी । बोली—“यह तो आप मेरी बात कह रहे हैं । इससे तो यही सिद्ध होता है कि चाहे आदि हो चाहे मध्य हो, और चाहे अन्त, मार्ग एक ही है । जैसे सत्य के अनेक रूप हैं किन्तु आधार-भूत १५४

रात और प्रभात

सत्य सभी रूपों में समाविष्ट बना रहता है। वैसे ही मार्ग रूपाकारों में पृथक्-पृथक् लगने पर भी मूल परिख्याति में एक ही रहेगा। आप यह क्यों भूल जाते हैं कि सब धर्मों का एक ही रूप है। सब मार्गों का एक ही मार्ग है। सारे प्रश्नों का एक ही प्रश्न है। सारे समाधानों का भी एक ही समाधान है। सत्य की अनुभूति।”

अब कीर्ति हँसता-हँसता उठ खड़ा हुआ। बोला—“सत्य तो यह है कि तुम इस समय रुग्ण हो, तुम्हारी देह में दर्द है, सिर में दर्द है, कंठ में दर्द है; हो सकता है हाथ में भी दर्द हो ?”

संभव था कि कीर्ति आगे भी कुछ और कहता किन्तु उसी समय छोटी बहू ने विमला के कान से लगकर मुसकराते हुए कह दिया—
“और हृदय में दर्द है।”

छोटी बहू का इतना कहना था कि मँझने भैया वहाँ अपनी उपस्थिति अनावश्यक समझकर उठकर चल दिये और विमला ने कह दिया—“बात चाहे जितनी विचित्र लगे, पर भगवान की यह रचना बीमारी, पीड़ा और संकट से न केवल हमारा शोध करती है, वरन् हमारे भविष्य को सुखी और सम्पन्न भी बनाती है। आप यह क्यों भूल जाते हैं कि चाहे शारीरिक हो चाहे मानसिक, किसी प्रतिक्रिया के बिना कोई भी स्वस्थ मानस किसी व्यक्ति पर रोग-दोष का आरोप किया नहीं करता। आप को शायद यह भी मालूम नहीं है एक ऐसा भी कीड़ा होता है, जिसको गुलाब की गन्ध में भी रोग और दोष के कीटाणु मिल जाते हैं।”

कीर्ति विमला की यह बात सुनकर हँस पड़ा। बोला—“इस समय तो मुझे ऐसा जान पड़ता है कि मेरे कान में दर्द शुरू हो गया है। डर है कि कहीं कोई कीड़ा न जा पहुँचा हो।”

विमला भी उठकर खड़ी हो गई। बोली—“झूठ मत बोलो, झूठ मत बोलो। उस दिन कंघा और शीशा चुरा ले गये थे। आज मेरी एक पुस्तक

गायब है। अपने सूटकेस में देखो तो हो सकता है उसी तरह कहीं इधर-से-उधर हो गयी हो।”

कीर्ति का हँसना अभी बन्द नहीं हुआ था कि वह फिर पकड़ गया। बोला—“शक की मेरे पास कोई दवा नहीं है। तुम्हीं देख लो जाकर; ताला खुला होगा; चाभी मैं उसी में छोड़ आया हूँ।”

इतने में छोटी बहू ने दो-तीन तालियों का एक गुच्छा विमला के आगे फेंक दिया।

बड़ी बहू गोविन्द को लेकर रसोई की ओर चल दीं। उनके पीछे उर्मिला हो ली। भँकली बहू ने कह दिया—“जोजी देखो, स्वेटर तैयार हो गया।” और विमला ने कह दिया—“मुझे कभी शक नहीं होता। और ऐसे आदमी पर तो शक मैं कभी कर ही नहीं सकती जो स्वयं इतना असावधान है कि अपनी ही चीजों का पता नहीं रहता है। उस बार भी तो तहमद छोड़ गये थे।”

कीर्ति ने होंठ दबाकर कह दिया—“कौन जाने तहमद छोड़ गया था कि तोहमत। अच्छा जाओ, तुमको अधिकार देता हूँ। जैसा चाहो, तै कर लो।” इतने में छोटे भैया ने आकर कहा—“अरे कीर्ति, मैं तो इस समय बड़े संकट में हूँ। मेरी वह कविता, जिसे मैंने तुमको दिखलाया भी था, ‘स्वर्णप्रभात’ से वापस आ गयी। अब ?”

अब उस कविता को चुपचाप एक फायल बनाकर रख लो। दस वर्ष बाद भी वह यदि तुमको सुन्दर प्रतीत हो, तो उसे पुनः उसी ‘स्वर्णप्रभात’ को भेज देना। मेरी धारणा है, तब वह अवश्य छप जायगी।

बड़े भैया धीरे-धीरे इस विचार के हो गये थे कि अगर किसी के हित में वह कोई कार्य करते, तो उसका प्रचार बिल्कुल न करते थे। एक तो इसमें कार्य-सिद्ध में विघ्न और व्याघात उपस्थित होने की

रात और प्रभात

आशांका न रहती थी दूसरे सम्बन्धित व्यक्तियों की तात्कालिक प्रतिक्रिया से भी उनका बचाव हो जाता था ।

अभी उस दिन की बात है । जब रामरतन ने गोपी बाबू के पास जाकर कहा कि रामप्रसाद हवालात में हैं, अपने सेठ से कहो कि जमानत कर दें तो गोपीनाथ ने जवाब दिया—“खैर जमानत के लिए मैं कहूँगा पर यह तो बताओ कि मामला क्या है ? कौन-सी धारा के अनुसार उसकी गिरफ्तारी हुई है ?”

रामरतन ने उत्तर दिया—“मामला चार सौ बीस का है ।”

गोपी बाबू बोल उठे—“बाजार में जैसी हवा बह रही है, तुमसे छिपी नहीं है । मुझे विश्वास नहीं है कि सेठ जी रामप्रसाद की जमानत को तैयार होंगे । फिर भी मैं कोशिश करके देखूँगा ।”

“देखेंगे कब ? अभी मेरे सामने कहिए ।”

“जरा सोच लूँ, थोड़ी देर बैठना पड़ेगा ।”

“मेरी समझ में नहीं आता कि इसमें सोचने की क्या बात है ? आपको मालूम होना चाहिए कि उसकी पत्नी हास्पिटल में है । उसके बच्चा होने वाला है । मैं उसको वहाँ भरती करवा करके लाला किशोरी-लाल के यहाँ गया था । मैंने उनसे बहुत अनुनय-विनय की, पर वे किसी तरह न माने । मैं निराश होकर अब तुम्हारे पास आया हूँ । और तुम कह रहे हो जरा सोचना पड़ेगा । जिस आदमी पर इतना संकट हो उसके परोक्ष में ऐसी दुलमुल नीति दिखलाते हुए, तुमको शरम नहीं आयी ? जबकि तुम उसके मित्र बनने का दावा करते हो । सच्चा मित्र वह है जो मुँह पर चाहे जितनी तीव्र आलोचना करे, पर संकट के समय सदा उसकी सहायता करने को तत्पर रहे ।”

“बाज आया मैं ऐसी मित्रता से,” गोपीनाथ ने कुछ स्थिर होकर उत्तर दिया—“जो व्यक्ति धर्म और आचार से हीन है, उससे जितनी जल्दी सम्बन्ध टूट जाय, उतना ही अच्छा है ।”

रात और प्रभात

अब रामरतन उठकर खड़े हो गये और आवेश में आकर बोले—
“अच्छी बात है, तुम देखोगे कि रामप्रसाद को मैं छुड़ाता हूँ कि नहीं और तुम यह भी देख लोगे कि संकट के समय ऐसा आदर्शवाद छौंकने वाला आदमी आज के समाज में कितने दिन टिक सकता है !”

अब गोपी बाबू ताड़ के भाड़ से गिर कर धरती पर आ पहुँचे । बोले—“बैठो-बैठो, नाराज मत हो । जमानत तो करवानी ही पड़ेगी । मगर पहले यह सोच लो कि अगर लाला जी ने इनकार कर दिया, तो फिर क्या करोगे ?”

अब रामरतन पुनः गद्दी पर बैठ गये और बोले—“तुम पहले कहो तो उनसे । तुम तो बिना प्रयत्न किये ही अशुभ सोचने लगते हो । इसी को कहते हैं—‘पराजित मनोवृत्ति’ ।”

“अच्छी बात है ।” कहकर गोपी बाबू भीतर चले गये ।

लाला पन्नालाल भोजन करने के बाद थोड़ी देर आराम करते थे । सीधे उन्हीं के पास पहुँचने में उन्हें कुछ देर बाहर रुकना पड़ा । अन्त में ज्यों ही उन्होंने रामप्रसाद की जमानत के लिए उनसे कहा, त्योंही उन्होंने जवाब दिया—“मुझे सब मालूम है । मैं उसकी जमानत एक ही शर्त पर कर सकता हूँ कि जिनसे उसका विरोध है, जिनसे उसकी दुश्मनी है, वह ज्ञानचन्द बाबू स्वयं इसके लिए मुझसे कहें । इस सम्बन्ध में मैं और किसी की बात न मानूँगा । आदमी मैं उसी को समझता हूँ, ऐसा समय आने पर शत्रु भी जिसकी सहायता करने से मुँह न मोड़े । इतना तो तुम मानोगे कि लड़ाई होने पर भी ज्ञानचन्द बाबू कभी उसका बुरा न चाहेंगे ।”

गोपी बाबू ने जवाब दिया—“मैं अभी प्रयत्न करता हूँ ।” और इस कथन के साथ वापस लौटकर उन्होंने जब रामरतन के सामने परिस्थिति का वह मोड़ रक्खा, तो वह हक्का-बक्का रह गया । ‘ओः, अब समझा कि हमारे समाज का यह रूप है । ये बड़ी नाक वाले प्रायः एक ही स्वर’

१५८

रात और प्रभात

पन्ना है ।”

मन में तो आया, वह स्पष्ट कह दे, फिर इसकी जमानत का उपकार लादने की आवश्यकता ही क्या ।

अब रामरतन पेंसिल से कागज पर कुछ लिखता-लिखता बोला—
“गोपी बाबू, मुझे यह बात कुछ जंच नहीं रही । रामप्रसाद सुनेगा, तो क्या कहेगा । मुँह दिखाने का कहीं अवसर न रहेगा । कहेगा कि कोई जमानतदार नहीं मिल रहा था, तो अपनी शक्ल न दिखलाते, नतीजा चाहे जो होता ।”

गोपी बाबू ने उन्हें पान देते हुए उत्तर दिया—“यहीं तुम गलती कर रहे हो रामरतन । पन्ना बाबू फिर भी बाहरी आदमी हैं । बड़े भैया अगर उनसे कह दें तो मिनटों में काम बन जायगा । और छूट जाने के बाद फिर कौन उनसे यह कहने जायगा कि असली जमानत तो बड़े भैया की ही थी, उन्हींने पन्ना बाबू से कहा था । रह गये पन्ना बाबू—सो जब वे जमानत करने पर तैयार हो जायेंगे, तब भला रामप्रसाद से यह कहने जायेंगे कि ज्ञानचन्द बाबू के अनुरोध से मैं जमानत करने आया हूँ । बोलो क्या कहते हो ?”

अब रामरतन बाबू की समझ में आया कि गोपी देखने में जरूर नाटा है; मगर कौड़ी दूर की लाता है । होठों पर मुस्कराहट दौड़ गयी । बोला—“बस, काम बन गया ।”

और जमानत पर छूट जाने के बाद फिर बात आई-गई हो गई । न रामप्रसाद ने इस विषय में खोद-खोदकर पूछने की चेष्टा की और न रामरतन ने अपनी ओर से कुछ बतलाने की आवश्यकता समझी ।

इसका एक कारण था । रामरतन रामप्रसाद से यह नहीं बतलाना चाहता था कि उसके सम्बन्ध में गोपी बाबू के कैसे विचार हैं । क्योंकि अन्त में काम उसी के सुझाव से बना था और वह बात यदि वह

रात और प्रभात

उससे कह देता, तो फिर उसे यह भी बतलाना पड़ता कि बड़े भैया के ही सहारा लगाने से छूट पाये हो। परन्तु पाप के विष की तीव्रता का पता तब तक नहीं लगता, जब तक वह प्रतिक्रियाओं, अभिसन्धियों और उनकी हीन परिकल्पनाओं के रूप में सारे समाज में फैल नहीं जाता।

रामरतन ने तो रामप्रसाद से इस सम्बन्ध में कुछ नहीं बतलाया लेकिन जब रामप्रसाद गोपी बाबू के घर आया, तो उसने सारी कथा कह सुनाई। उन्होंने बतलाया कि यह बहुत अच्छा हुआ, जो रामरतन मेरे यहां चला आया। भई सच्ची बात यह है कि परिस्थिति बड़ी नाजुक हो गई। कोई जमानत करने के लिए राजी न होता था। बल्कि पहले तो मैं बिल्कुल घबरा ही गया लेकिन फिर ऐन वक्त पर भगवान ने मेरी सहायता की। मैंने ऐसी तरकीब ढूंढ़ निकाली कि पन्ना बाबू इनकार न कर सके।

रामप्रसाद ने पूछा—“कौन-सी तरकीब ? जरा मैं भी तो सुनूँ।”

गोपी बाबू ने अब बिना किसी भूमिका के कह दिया—“तुम को मालूम ही है कि होम्सोपैथी में चिकित्सा प्रारम्भ करने से पूर्व एक ऐसी दवा दी जाती है जिससे पुरानी दवाइयों का प्रभाव नष्ट हो जाय।

“मैं सीधा बड़े भैया के पास चला गया। मैं जानता था वे कितने उदार हैं। मुँह खोलते ही उन्होंने तुरन्त स्वीकार कर लिया। भाई रामप्रसाद, तुम मानो चाहे न मानो। वह आदमी नहीं, देवता है। लेकिन फिर मैंने सोचा कि जमानतदार की हैसियत से अगर मैं उनको थाने में ले जाऊँगा, तो तुम्हारे स्वाभिमान को बड़ा आघात लगेगा। यह भी सम्भव है कि तुम उनकी जमानत पर छूटना स्वीकार ही न करो। तब मैंने उनसे कह दिया कि आपका तो घरू मामला है। आप ही जरा-सा पन्ना बाबू से कह दीजिये। बस, काम बन जायगा। इस तरह लाज रह गई उस दिन तुम्हारे साथ हमारी भी। उधर पन्ना बाबू भी कृतार्थ हो गये। और उस दिन से मुझे भी मानने लगे।

रात और प्रभात

गोपी बाबू की बात सुनकर रामप्रसाद का चेहरा उतर गया। प्रतिहत होकर उसने कह दिया—“यह तुमने बुरा किया। यह तुमने बहुत बुरा किया। तुमने मेरी लाज रखी नहीं, लूट ली। अच्छा होता कि मैं इस समय जेल में होता। मैं तो कहीं का न रहा। अब अगर मुकदमा लड़कर मैं छूट भी जाऊँ, तो उसका महत्व क्या है। अब उनके सामने मेरा मत्था कभी ऊँचा न होगा।”

इतना कहते-कहते रामप्रसाद की आँखों में आँसू आ गये। वह रो पड़ा।

बैठक में तख्त बिछा हुआ था। गद्दे के ऊपर चद्दर-मसनद और गाव-तकिये रखे हुये थे। रामप्रसाद रोते-रोते वहीं गिर पड़ा और फिर सिसकियाँ लेता हुआ इस तरह से तड़पने लगा, जैसे जलाशय से बाहर पड़ी हुई मछली हो।

गोपी बाबू स्तब्ध हो उठे। उन्होंने इस दृश्य की कभी कल्पना भी न की थी। पहले तो वे चुप रहे, परन्तु थोड़ी देर बाद जब रामप्रसाद कुछ सोचकर उठा तो गोपी बाबू ने कहा—“ठहरो, कितने दिन मैं आये हो, कम-से-कम चाय तो पीते जाओ।”

रामप्रसाद ने व्यंग्य के साथ उत्तर दिया—“मैं तुम्हारे यहाँ चाय पिऊंगा ? जो पाप में पड़ता है, मैं उसे आदमी समझता हूँ। लेकिन जो पापी के साथ मज्जाक करता है, मैं उसे शैतान समझता हूँ। तुमने मेरे गौरव के साथ मज्जाक किया है। तुमने मेरे साथ बहुत हीन वृत्ति का परिचय दिया है। मैं तुमसे घृणा करता हूँ।”

रामप्रसाद के भावुकता-पूर्ण उद्गार सुनकर गोपी बाबू संज्ञाहीन और जड़ीभूत हो उठे। पहले तो उनकी समझ में न आया कि अब क्या कहें। फिर उनके मुँह से निकल गया—“तुम मुझको बहुत गलत समझ रहे हो रामप्रसाद।” आवेश के साथ बोले—“अगर तुम्हारा यह ख्याल है कि किसी के घर में आग लगवा देना और फिर दूर खड़े होकर तापना कोई

रात और प्रभात

समझदारी है, तो मैं अपराधी हूँ। अगर तुम्हारा यह विचार है कि दो सगे आदमियों में सदा के लिए वैर-विरोध स्थिर बनाये रखने वाला आदमी ही सच्चा मित्र होता है तो भी मैं अपराधी हूँ। सचमुच मैं उन व्यक्तियों में से नहीं हूँ, जो अपने दुखी और संकटापन्न-मित्र का विनाश केवल इसलिए देखते रहते हैं कि उसके सामने सच्ची बात कहने में डरते हैं। मैं साफ कहना चाहता हूँ कि सदा हाँ में हाँ मिलाने वाला आदमी कभी मित्र नहीं होता। और अगर तुमको मुँह पर सच्ची बात सुनना सहन नहीं है, तो तुम मूर्ख हो। और किसी मूर्ख आदमी को मित्र कहने में मैं अपना अपमान समझता हूँ। ठीक: एक तो तुम अपराध करते हो, दूसरे फिर अकड़ते हो। सच्चे-सीधे और उचित मार्ग की ओर ले जाने वाले आदमी से अगर तुम घृणा करते हो, तो मैं तुम्हारी शक्ल नहीं देखना चाहता। मैंने ही तो तुम्हारी जमानत करवायी और मुझी को तुम अपमानित करने का साहस कर रहे हो। शर्म करो रामप्रसाद शर्म करो ! अगर मैं सहायता न करता, तो तुम अब भी जेल में तसला बजाते होते ! और मैं कहता हूँ, तुम अगर मर भी गये होते तो इस दुनिया में तुम्हारी परवाह करता कौन ? जाइये आप उन्हीं लोगों से मिलिये, जो आपकी हाँ-मैं-हाँ मिलाने हों। मैं देखूँगा, आप घर से बाहर निकलते कैसे हैं ? सैकड़ों लड़कों को पीछे लगवा दूँगा और नारे लगवाता हुआ कहलवाऊँगा— 'चोर है, बेईमान है, उठाईगीर और बदमाश है।' आपको खुली चुनौती है कि इसके बाद आप जहर खाकर मर जाइयेगा ! और कुछ ?”

इस प्रकार अब रामप्रसाद के दम्भ, अहंकार, और मिथ्याभिमान का सारा नशा उतर गया, उसके मुख पर एक क्षीण मुस्कराहट दौड़ गयी। वह चुपचाप गोपी बाबू के समीप बैठ गया।

इतने में कोमल-कोमल दो हाथ परदे के भीतर से बाहर निकले और दूँ में चाय आ गयी।

रात और प्रभात

गोपी बाबू ने जब प्याला बनाकर रामप्रसाद के सामने रखा तो उस को होंठों से लगाते-लगाते उसके मुंह से निकल गया—“शायद तुम ठीक कहते हो।”

और जिस समय छोटे भैया बड़े भैया के कमरे में पहुँचे, उस समय रामप्रसाद उनके पास बैठा हुआ था। उसकी आँखों से आँसू भर रहे थे।

बड़े भैया रामप्रसाद को देर तक समझाते रहे ।

वे पलंग के ऊपर लिहाफ को तहाकर, पीठ की ओर रखे हुए उसके सहारे बैठे थे । दायें और तिपाई पर पान का डिब्बा रखा था । सामने एक अलमारी थी, जिसमें डेढ़ फीट चौड़ा और पाँच फीट लम्बा दर्पण लगा हुआ था । बैठे वे कुछ इस तरह थे कि अलमारी का दर्पण उनके ठीक सामने पड़ता था । दरवाजे पर चिक का स्थान परदे ने ले लिया था । दीवार में लगी हुई घड़ी दस बजा रही थी और पड़ोस के मकान पर एक साथ बैठे हुए दो कबूतर परस्पर कोई मन्त्रणा-सी करते जान षड़ते थे ।

बड़े भैया बोले—“देखो रामप्रसाद, कई वर्ष पूर्व मैंने एक स्वप्न देखा था । आज मुझे दुःख के साथ कहना पड़ता है कि तुमने उस स्वप्न को भंग कर दिया है ।”

रामप्रसाद मन-ही-मन सोच रहा था—“मैं बोलूँगा नहीं । जो कुछ ये कहेंगे, उसे केवल हृदयंगम करता जाऊँगा ।”

बड़े भैया कह रहे थे—“तुम बड़े भ्रम में हो ! तुमने इस संसार की

रात और प्रभात

रचना को नहीं समझा और आश्चर्य की बात तो यह है कि तुमने अपने आपको भी नहीं समझा। मैं मानता हूँ कि अपने को ही समझना सबसे अधिक कठिन है। कुछ ऐसी बात है कि जिसका मन राग-द्वेष में अत्यधिक लिप्त होता है, वह अपने को नहीं समझ पाता। तुम्हें पता होना चाहिए कि जो सारे जगत को अपना बनाना चाहता है, उसे सबसे पहले अपने को देना पड़ता है। एक बार अपना सर्वस्व समर्पण कर दो, फिर देखो, विश्व की सारी वसुधा तुम्हारी बन जायगी।”

रामप्रसाद अब ऐसी स्थिति में था कि कुछ बोल नहीं सकता था। उसका मन आँधियों से घिरा हुआ था। बारम्बार उसके मन में एक समुद्र गर्जन कर उठता। क्रमशः एक के बाद एक उत्ताल तरंगें उठतीं और तट के पाषाण-खण्डों से टकराने लगती थीं।

यह एक ऐसा संताप था, जो न शान्त होता था, न भीतर से निकाले निकलता था।

यह एक ऐसी पीड़ा थी जो भीतर उठकर ही भीतर थोड़ी देर में विलीन-सी होती हुई जान पड़ती थी, किन्तु पुनः आप ही आप नस-नस, शिरा-शिरा, अस्थि-अस्थि और रन्ध्र-रन्ध्र से उत्थित होकर लोम-लोम से फूट पड़ती थी।

उसमें ग्लानि थी, इतनी भयंकर कि कभी-कभी आत्म-हनन की बात भी सोचने लगता था।

उसमें अग्नि की ऐसी भट्टियाँ थीं कि उसे कभी-कभी ऐसा प्रतीत होता, मानो वह इस धरा-धाम से सदा के लिए उठ गया है, समाप्त हो गया है, विदा हो गया है। रक्त जल रहा है, अस्थियाँ चटक रही हैं और चिता से लाल-लाल लपटें उठ रही हैं। पर फिर थोड़ी ही देर में उसे ऐसा जान पड़ता कि वह चिता महासागर के तट पर बनी है और एक के बाद एक टकराने वाली लहरें क्रमागत छपाकों से आ-आकर सब कुछ समापन्न कर गयी हैं।

रात और प्रभात

बड़े भैया खाँसते हुए बोले—“देखो रामप्रसाद, अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है। तुम चाहो तो आदमी बन सकते हो। जितना भी कष्ट तुमने संचय किया है, सहज ही तुम उसे धो सकते हो, मिटा सकते हो। कलंक चाहे जितना गहरा हो, दृढ़ इच्छा-शक्ति से उसी प्रकार धुलकर अंतरिक्ष में लीन हो जाता है, जैसे धरती पर छाया हुआ कोहरा सूर्य के उत्तरोत्तर उदय और उत्थान से। जैसे-जैसे तुम कामनाओं से ऊपर उठोगे, वैसे-वैसे तुम्हारे जीवन की सुदूरगामी इच्छायें सिमिटकर तुम्हें खोजती हुई आ पहुँचेंगी।

इसी समय उर्मिला ने आकर कहा—“ताऊ जी, आप को बड़ी अम्मा बुला रही हैं। कोई बहुत जरूरी काम है।” उसके हाथ में एक हरा रेशमी डोरा था, जिसे वह अपनी अँगुली में बाँधे हुए थी। उसकी चोटी पर जो फीता था, उसका तितली-नुमा कुँदना भी आज हरा था।

बड़े भैया कोई उत्तर न देकर कहते रहे—“तुम्हें पता होना चाहिए कि ऐसा समय सबके जीवन में आता है, जब हमारी इच्छायें जीवन के कोहरे और आप को इतने रंगों से समाच्छन्न कर देती हैं कि सारा का सारा अभ्र-मण्डल इन्द्रधनुषमय हो जाता है। तुम्हारे सम्बन्ध में भी मैं यही सोचता हूँ। रामप्रसाद, तुम चाहे जो समझो, पर मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि ऐसा समय अब आ गया है।”

इतने में भंभले भैया ने आकर कहा—“बड़े भैया, भगवान की क्या इच्छा है, मेरी तो कुछ समझ में नहीं आ रहा है?”

आश्चर्य के साथ बड़े भैया बोले—“क्या बात है? साफ़-साफ़ कहो न?”

भंभले भैया ने कहा—“इधर आइये, अन्दर चलिये जरा।”

बड़े भैया उठकर अन्दर की ओर जाते हुए बोले—“मैं अभी आता हूँ रामप्रसाद; अभी जाना नहीं।”

रात और प्रभात

बड़े भैया ज्योंही अन्दर गये, त्योंही क्या देखते हैं कि छोटे भैया अपने कमरे के द्वार पर खड़े हुए, कह रहे हैं—“मैं इस घर की एक भी चीज़ अपने साथ नहीं ले जाऊँगा। जैसी तुम इस समय बैठी हो, बस उसी तरह मेरे साथ चल दो। अब इस घर के साथ मेरा कोई सम्बन्ध नहीं रह गया।”

इस समय बड़ी बहू कह रही थीं—“हाय, यह सब हो क्या रहा है। दुल्हन, छोटे से तुमने कुछ कहा है क्या?”

छोटी बहू आंसू पोंछती हुई बोलीं—“जीजी, मैंने तो कुछ नहीं कहा।”

इसी समय विमला बोल उठी—“किसी ने कुछ नहीं कहा, मैंने कहा है। इधर कई दिनों से आपस में जो खिचड़ी पक रही थी, उसकी खुद-बुद जब मेरे कानों में पड़ी, तब इतना मेरे मुँह से निकल गया था कि पढ़ने के लिये आज हमारे देश के एक-दो नहीं, सैकड़ों लड़के प्रतिवर्ष विदेश जाते हैं। आये-दिन समाचार-पत्रों में इसकी सूचनायें छपती ही रहती हैं। लेकिन ऐसे कितने हैं, जो अपने साथ नव-विवाहिता पत्नियों को भी ले जाते हैं। हाँ, जिनके घर अथाह सम्पत्ति भरी है, अथवा जहाँ वयोवृद्ध सास-जेठानियाँ नहीं हैं, उनकी बात मैं नहीं कहती। यह ठीक है कि इस घर की व्यवस्था के विषय में हस्तक्षेप करने की क्षमता मुझमें नहीं। पर मेरी अमर्श में नहीं आता कि छोटे भैया को ऐसी हिम्मत पड़ कैसे गयी। इस संबंध में बोलने का अधिकार भले ही मेरा न हो, पर छोटी मौसी के लिये मेरे मन में जो स्थान बन गया है, उसका मैं एक अधिकार मानती हूँ। किसी भी दशा में मैं उन्हें कहीं जाने न दूँगी।”

कथन के साथ विमला की आँखों में आंसू आ गये।

बड़ी बहू बोल उठी—“मुझे तो विमला की बात में कहीं कोई बुराई नहीं जान पड़ती। सच पूछो तो विमला ने मेरे मन की बात कही है। खुद मेरी भी यही राय है। मैं दुल्हन को छोटे के साथ कभी न

रात और प्रभात

जाने दूँगी। हैह, नया-नया इसी का ब्याह हुआ है। जैसे हम लोगों का ब्याह कभी हुआ ही नहीं था। तेरा ही दुलहिन पर बहुत बड़ा हक है, मेरा कोई हक ही नहीं।”

इसी समय मंभली उठकर बड़ी बहू के पास जा पहुँची और उनके कान के पास मुँह ले जाकर मन्द स्वर में ऐसा कुछ फुसफुसाने लगी कि बड़ी बहू प्रसन्नता से उछल पड़ी। छोटे को सम्बोधन कर बोलीं—“देखो छोटे, तुम दुलहिन को साथ ले जाने की जिद मत करो। कहा मानो। कितनी मनीतियों के बाद तो ऐसा दिन देखने का अवसर आ रहा है। मैं अब एक घड़ी के लिये दुलहिन को बाहर नहीं निकलने दे सकती। बल्कि अच्छा तो यह होगा कि इस समय तुम भी न जाओ।”

बड़े भैया मन-ही-मन गद्गद हो उठे और छोटे भैया की ओर देखकर बोले—“तुम इतने शिक्षित होने पर भी अब तक मूर्ख बने हुये हो, यह मुझे आज ही मालूम हुआ।”

आकाश पर छाये हुये मेघ अब हट गये थे।

छोटे भैया के भीतर का सारा विद्रोह कपूर की भाँति उड़ गया। मन में आया कि वह अपने कमरे में जाकर चुपचाप कहीं छिप रहे। अतः सिर नीचा किये हुये एक ओर चल दिया। प्रकट रूप से उससे तो कुछ कहते न बना, पर मन-ही-मन उसने अवश्य कह लिया—“सचमुच मुझे अपनी मूर्खता का ज्ञान नहीं था। पर मुझे अपनी इस मूर्खता से कुछ-न-कुछ सीखना अवश्य चाहिये। अच्छा, अगर इसी मूर्खता पर एक कविता लिखी जाय तो कैसा हो ! कितना नया विषय है ?

अब ज्योंही बड़े भैया बैठक में आये, त्योंही रामप्रसाद ने मकान के अन्दर जाकर पहले बड़ी बहू के पैर छुए, फिर अपनी सगी बहन के। और मंभले भैया के पास आकर कह दिया—“चलो; दूकान खोलो।”

मंभले भैया ने कहा—“मैं कुछ नहीं जानता। तुम्हें जो कुछ कहना है बड़े भैया से कहो।”

रात और प्रभात

छोटे भैया बैठक में दायें हाथ पर अपना मस्तक टिकाये हुये कुछ सोच रहे थे और बड़े भैया दरवाजे में खड़े हुये रामप्रसाद की सब बातें सुन रहे थे ।

वहीं से बोल उठे—“क्या बात है ?”

मंझले भैया बोल उठे—“ये दूकान खोलने के लिये कहते हैं । पर जब तक अदालत से कोई निश्चय नहीं हो जाता, तब तक दूकान खुल ही कैसे सकती है ?”

रामप्रसाद बोल उठा—“मैंने अदालत से अपने बंटवारे का दावा वापस ले लिया है ।”

“बंटवारा तो अब होकर रहेगा ।”

“नहीं होगा ।”

“होगा ।”

“नहीं होगा, नहीं होगा ! किसी तरह नहीं होगा । कभी नहीं होगा । मेरे मर जाने के बाद भी नहीं होगा ।”

बड़े भैया खड़े-खड़े चुपचाप सुनते रहे, कुछ बोले नहीं । पहले वह गम्भीर थे; पर अब उनके होंठों पर विकास झलक रहा था ।

मंझले भैया इसी समय बोल उठे—“बड़े भैया, आप बोलते क्यों नहीं ?”

अब बड़े भैया के मुँह से निकल गया—“अभी मैंने देखा था कि छोटे भैया मूर्ख हैं, लेकिन अब मुझे ऐसा दिखाई पड़ता है कि तुम भी मूर्ख हो । तुम समझ रहे हो कि अभी तुमसे जो भी कोई बोल रहा था, वह रामप्रसाद था । पर तुम इतना भी न समझे कि वह रामप्रसाद नहीं, मैं था । जाओ दूकान खोलो । और रामप्रसाद तुम हमारे पास इधर आओ ।”

बड़े भैया के पास पहुँचते-पहुँचते रामप्रसाद बोला—“बड़े जीजा, मैं समझ गया, आप मुझसे क्या-क्या कहेंगे ।”

रात और प्रभात

इसी समय कुन्दन ने आकर कहा—“सरकार, अब असनान कर लें।”

बड़े भैया ने उत्तर दिया—“ओः स्नान ! अच्छा।”

इस समय छोटे भैया अपने कमरे की चौखट पर खड़े हुये कह रहे थे—“तुमने मुझे बेवकूफ बना दिया उर्वी ?”

उर्वी का मुख आंगन की ओर था । आसमानी भीनी साड़ी के भीतर ऐसा जान पड़ा, जैसे पूनम का चाँद हँस रहा हो ।

इसी समय पड़ोस की दीवार की मुँडेर पर बैठा हुआ कबूतर बोल उठा—“गुटर-गूँ ।”

फिर रविवार आ गया ।

आज प्रातःकाल आँगन में पूरी सभा जमा हुई थी । गोविन्द छड़ी हाथ में लिए बड़े भैया की अनुकृति दिखा रहा था और सब लोग हँस रहे थे । बड़ी बहू ताली पीट रही थीं । मँझली आँखों के नीचे तक अवगुण्ठन लटकाए हुए प्यालों में चाय ढाल रही थीं । छोटी बहू तश्तरियों में नमकीन लगा रही थी । मँझले भैया बही लिए बैठे थे । चश्मा नाक पर था और कलम कान पर । बालूदानी सन्दूकची के नीचे रखी थी और बही उसके ऊपर । चश्मा नाक के कुछ नीचे खिसक आया था । आँखें गोविन्द की ओर थीं ।

इस समय विमला चाय का प्याला कीर्ति के पास ला रही थी । उसने आँखें उठाकर ज्योंही उसकी ओर देखा, त्योंही साधारण रीति से कीर्ति ने पूछा—“हाथ ठीक हो गया, विमला ?”

होंठ दबाते हुए विमला ने उत्तर दिया—“अभी बिलकुल ठीक तो नहीं हुआ ।”

“क्यों ? अब क्या कसर रह गयी देखें ! देखें ।”

रात और प्रभात

विमला निकट आ गई। बोली—“इस जगह थोड़ा-थोड़ा दर्द होता है।”

कीर्ति ने इंगित किए हुए स्थल पर अँगूठा दबा दिया।

विमला बोल उठी—“बस, बस, बस यहीं—यहीं।”

“तब तो एक बार हास्पिटल फिर जाना पड़ेगा।”

बड़े भैया ने कह दिया—“ऐसा ही है तो आज दिखला दो।”

कथन के साथ उन्होंने बड़ी बहू की ओर जो देखा, तो वे बोल उठीं—“अब मैं तो साथ जाऊँगी नहीं, मँझली चली जायँ। उसी दिन मैंने वहाँ का जो रंग-ढंग देखा, तो मेरा जी काँप उठा। ऐसा जान पड़ा कि हर दरवाजे, दीवार, कमरे, बरामदे, जीने और पेड़ के नीचे से मृत्यु आ रही है और जा रही है। सफ़ेद-सफ़ेद कफन के कपड़े का चदरा उसके बदन पर है। सफ़ेद उसके पैर हैं, सफ़ेद हाथ-पाँव : सफ़ेद ही मुख और दाँत। सोचती हूँ, तो अब भी रोंगटे खड़े हो जाते हैं।”

बड़े भैया बोले—“अगर यह बात सही है तो हास्पिटल जाने से तुम्हें डरना नहीं चाहिए। क्योंकि कहते हैं—मृत्यु आती है उसी के पास जो उससे डरता है।”

इतने में रामप्रसाद आ पहुँचा। मुद्रा इतनी उतरी हुई थी कि मालूम होता था—अभी-अभी रोककर उठा है। बोला—“बड़े भैया, मुन्ना की तबीयत बड़ी खराब है। ज़रा चलकर फूँक डाल दीजिए उस पर।”

आश्चर्य के साथ बड़े भैया ने कहा—“अरे, तुमने हमको क्या समझ लिया है भाई !”

रामप्रसाद पैरों पर गिर पड़ा। बोला—“आपको चलना ही पड़ेगा। मुझे विश्वास है यदि आप एक बार उसको आशीर्वाद दे देंगे, तो उसकी जान बच जायगी। बस, उठिए, चलिए।”

बड़ी बहू बोल उठी—“हाँ, हाँ, ठीक तो है। चले जाओ, चले जाओ।”

रात और प्रभात

मँझली उठकर खड़ी हो गई और चदरिया ओढ़कर, चप्पल पैरों भो डालकर तैयार हो गई। गोविन्द को उन्होंने स्वामी के सामने कर दिया और कहा—“इसको तुम देखना।”

मँझले बोले—“अरे तो लेती जाओ न साथ में !”

मँझली बहू पास आकर धीरे से बोली—“वहाँ मैं किसी तरह गोविन्द को न ले जाऊँगी। मालूम नहीं, कौन बीमारी उसको हो गई हो। वही उसको लग जाय, तो ! तुम कुछ समझते तो हो नहीं।”

मँझले भैया जानते थे कि कुछ बीमारियाँ छूत की होती हैं, जो एक बच्चे से दूसरे बच्चे को लग जाती हैं परन्तु रूढ़ि के रूप में यह बात उन्हें स्वीकार न थी। न वे यही मानने को तैयार थे कि बच्चों को एक दूसरे के सम्पर्क से, इस सीमा तक, दूर रखना आवश्यक है। किन्तु पत्नी के इस कथन में उनको माँ की ममता का भी एक मधुर आभास मिला। उन्होंने कह दिया—“पहले तो नहीं समझता था, पर अब समझ गया कि प्यार का अनुशासन परस्पर के व्यवहारों में भी आदमी को कितना सतर्क बना देता है।”

रामप्रसाद बड़े भैया को तो साथ में ले ही गया, मँझली बहू भी साथ हो लीं। बड़े भैया उसके यहाँ पहुँचे। मुन्ना की हालत वास्तव में बड़ी खराब थी। देखकर बड़े भैया को भी कुछ आशंका हो उठी। दमयन्ती रो रही थी। मुन्ना की आँखें बन्द थीं और होठों पर कालिमा दौड़ गई थी। हाथ-पैर के नाखून सफेद हो रहे थे।

फिर भी स्वभावानुसार प्रवचन के रूप में बड़े भैया ने यह नहीं कहा कि जो आता है, सो चला जाता है। इसमें रुदन की गुञ्जाइश कहाँ है ? एक मोह ही तो है, जो इन दुःखों का जनक होता है। इसके विपरीत उन्होंने कहा—“रोओ, भगवान् के चरणों पर सिर रखकर। जहाँ से उसके जीवन की भीख माँगो। अभी कुछ बिगड़ा नहीं है।

नाशा तो कभी त्यागनी ही नहीं चाहिए। प्रयत्न करो, विश्वास रखो, भगवान की कृपा पर।”

रामप्रसाद ने उत्तर दिया—“बड़े भैया, आप अगर चाहें, तो मुझा बच सकता है।”

मँझली बहू ने कहा—“दुलहिन, रोओ नहीं, भगवान चाहेगा तो मुझा का बाल भी बाँका न होगा।”

सिसकियों के क्रम में रामप्रसाद बोल उठा—“भगवान चाहेगा, तब? मगर यह कौन कह सकता है? कौन जानता है कि उसके मन में क्या है और वह क्या चाहता है।”

“ठीक है, ठीक है।” बड़े भैया ने सिर हिलाते हुए कहा—“कुछ भी हो, तुमको यह सोचने का अधिकार नहीं है कि भगवान इसकी मृत्यु चाहता है। तुमको तो सदा यही सोचना चाहिए कि जिसने तब जीवन दिया था, वही अब जीवन देगा। इस विश्वास को खोने का अधिकार तुम्हारे अन्दर कहाँ से पैदा हो गया?—‘संशयात्मा विनश्यति।’ एक संशय ही तो है जो विनाश को निकट ले आता है।”

“यह सब मैं कुछ नहीं जानता,” रामप्रसाद बोला—“हर हालत में आपको अच्छा करना पड़ेगा। जब एक बार मैं आपकी शरण में आ गया हूँ, तो रक्षा का हाथ तो आपको इसके सिर पर रखना ही पड़ेगा। रखिए, इसके सिर पर अपना हाथ।”

बड़े भैया ने जब अपना दाहना हाथ मुझा के सिर पर रक्खा, तो यकायक उनके पलक मुँद गए और क्षण भर मौन रहने के अनन्तर उन्होंने कह दिया, “तथास्तु”। बँद्यजी जो दवा दे गये हैं, उसे विधिवत देते रहना।...और मूलगंज के चौराहे के पास जो भी भूखा-टूटा मिले, उसे घर लाकर भोजन करवा देना। और तब तक नित्य करवाना जब तक इसकी तबीयत ठीक न हो जाय, अच्छा चलता हूँ! हरिश्चरणम्।”

एक दिन बीता, दो दिन बीते, बड़े भैया को ज्वर हो आया—सौ,

रात और प्रभात

एक-सौ एक, एक-सौ-दो, एक-सौ-तीन, ओह—एक-सौ-चार भी हो गया ।

इधर दमयन्ती की गोद में दूध पीता हुआ मुन्ना खेल रहा था, उधर रागप्रसाद आसुओं से बड़े भैया के चरण भिगोता हुआ, कह रहा था—“बड़े भैया, यह आपने क्या किया ?” बहुतेरे लोग रो रहे थे । लेकिन बड़े भैया सबको सान्त्वना दे रहे थे—“जाओ, अपने-अपने काम में लग जाओ । मेरी भी तबीयत अब ठीक हो जायगी । चिन्ता मत करो । चिन्ता का अब कोई काम नहीं है ।”

इतने में बड़ी बहू की गोद से उतरकर गोविन्द बड़े भैया पास आकर कहने लगा—“अम्मा,” और फिर दरवाजे की ओर तर्जनी उठाकर संकेत भाषा में बोला—“अम्मा ।” अर्थात् बड़े भैया भी अम्मा हैं और गोद में लेकर खेलने की क्रिया का नाम भी अम्मा है । बड़े भैया मुस्कराते हुए बोले—“वाह, गोविन्द, वाह !”

कथन के साथ पलक झपक गए । कीर्ति थरमामीटर का प्रयोग करता हुआ, तापमान देखता-देखता प्रसन्नता के साथ बोल उठा—“अरे बड़े मामा, सचमुच, तापमान घट चला ।”

दूसरे दिन सवेरे बड़े भैया नित्य नियम के अनुसार भगवान् अंशुमाली को अर्घ्यदान कर रहे थे और रामप्रसाद आकर इस दृश्य को देखता हुआ मन ही मन कह रहा था—इनको समझने में मैंने कितनी भूल की थी ।

रामप्रसाद ने झोला तो आँगन में खम्भे के पास रख दिया । कमरे के अन्दर दो रस्सियों में पालना पड़ा हुआ था । उसमें पड़ा हुआ मुन्ना आपने हाथ-पैर चलाता हुआ किलकारी भर रहा था । उसकी ओर दृष्टि डालते हुए रामप्रसाद बोला—“अब इसके लिए एक लकड़ी का पालना लाना पड़ेगा ।”

रात और प्रभात

आनन्द से विहँसती हुई दमयन्ती ने उत्तर दिया—“पालना बाद को लाना । बड़े भैया को एक दिन बुलाकर भोजन तो करवा दो । अपने चरणों की धूल इस घर में छोड़ जायेंगे तो हमारा कभी कोई अनिष्ट न होगा ।”

“हाँ, यह बात तुमने बिलकुल ठीक कही दमयन्ती । मैं आज ही उन्हें निमन्त्रण दे आऊँगा ।”

इधर यह बात हो रही थी, उधर गोपी बाबू कमरे के द्वार पर पुकार रहे थे—“रामप्रसाद ! रामप्रसाद !! अरे ओ रामप्रसाद !!!”

रामप्रसाद ने सुनते ही उत्तर दिया, चले आओ न । किवाड़ खुले हुए हैं ।”

गोपी बाबू अन्दर आ गए ।

रामप्रसाद अब भी उस कमरे की देहली पर खड़े हुए थे, जिसमें मुन्ना पालने में भूल रहा था ।

गोपी बाबू ने कहा—“अरे, यह तो मुन्ना पड़ा हुआ है—” और जेब से दो रुपये का नोट निकालकर मुन्ना के हाथ में रख दिया ।

रामप्रसाद ने नोट गोपी बाबू के हाथ में वापस करते हुए कहा—“रुपया नहीं, आशीर्वाद चाहिए, शुभ कामना चाहिये ।

गोपी बाबू बोले—“यह उसका अधिकार है । इसमें आपको बोलने का अवसर नहीं है ।”

“लेकिन आपकी कृपा से अब कोई कष्ट तो है नहीं और आगे भी रहेगा नहीं । इसलिये अब यह रुपया तुम रहने ही दो भाई । इस बच्चे को आशीर्वाद दो बस ।”

“अब यह रुपये मैं वापस नहीं लूँगा रामप्रसाद और आशीर्वाद तो मेरा उसके लिए है ही । इस वक्त मैं तुमको एक सूचना देने आया था । सूरजप्रसाद को मैंने पटा लिया है । कल की पेशी में मैं यह कहलवा दूँगा कि धोखा इन्होंने मुझे नहीं दिया, बल्कि इन्होंने स्वयं धोखा खाया है ।

रात और प्रभात

मैं यह नहीं कह सकता कि कंगन का जोड़ा इन्हीं ने सड़क पर रख दिया था। मैं यह भी नहीं कह सकता कि इनको इस बात का ज्ञान था कि यह कंगन सोने के नहीं, पीतल के हैं। जब मैं स्वयं लोभ में पड़ गया, तब इनका भी लोभ में पड़ जाना स्वाभाविक था। मुझे इनसे कोई शिकायत नहीं। मैं अपनी गलती स्वीकार करता हूँ।”

रामप्रसाद ने इसका कोई उत्तर न दिया। वह केवल कुछ सोचत रहा।

गोपी बाबू पुनः बोल उठे—“मैं यही कहने आया था कि अब चिन्ता का कोई कारण नहीं रह गया है। मैं पूरा प्रयत्न करूँगा कि तुम बेदाग छूट जाओ।”

रामप्रसाद फिर भी कुछ नहीं बोला।

गोपी बाबू को अब कुछ आश्चर्य हो रहा था। उन्होंने कहा—“तुम बोलते क्यों नहीं हो?”

रामप्रसाद ने उत्तर दिया—“इसमें मेरे बोलने की क्या बात है? अगर भगवान् मेरी रक्षा करना चाहेगा, तो सूरजप्रसाद के बयान से मेरी रक्षा हो जायगी। और अगर सूरजप्रसाद अपनी बात पर स्थिर रहा तब फिर मैं क्या कह सकूँगा; क्या कर सकूँगा?”

“यह तुम कह रहे हो?”

“हाँ, यह मैं कह रहा हूँ।”

“तुम मजाक तो नहीं कर रहे?”

“नहीं! मैं अपने हृदय की भावना ही आपके सामने रख रहा हूँ।”

“देखो रामप्रसाद, मैंने तुम्हारा वह रूप भी देखा है, जब तुम मेरे घर आकर मुझे अपमानित करके चाय पिये बिना लौटे जा रहे थे। उस समय भी मुझे तुम पर आश्चर्य हुआ था, वह आश्चर्य उस समय और भी बढ़ गया था, जब मेरी भर्त्सना पर तुमने कुछ नहीं कहा। एक लम्बे मीन के बाद चाय के प्याले को मुँह से लगाते हुये एक मुस्कराहट के

रात और प्रभात

साथ इतना ही कह दिया था, शायद तुम्हीं ठीक कहते हो गोपी बाबू ! मुझे अच्छी तरह से याद है तुम्हारे इस कथन के साथ एक निःश्वास था और आज भी मैं देख रहा हूँ, तुम्हारे इस कथन के साथ एक लम्बा निःश्वास है। तुम जो कुछ कह रहे हो, वह एक पापी की वाणी का स्वर नहीं प्रायश्चित्त-दग्ध धर्मात्मा का उद्गार है। और मैं समझता हूँ इतना ही बहुत है। मुझे आशा है, तुम भावुकता में पड़कर पागल नहीं बनोगे।”

रामप्रसाद के मन में आया कि वह कह दे—‘काश इस प्रायश्चित्त की अग्नि के द्वारा झुलस-झुलसकर मैं पागल का स्वर पा सकता।’

उसके होठों पर एक मुस्कराहट दौड़ गई।

गोपी बाबू चलने लगे। रामप्रसाद ने उत्तर दिया—“आज मेरे बड़े भाग्य से तुम यहां आए हो। चलो, बैठक में बैठो। जलपान करो।”

“मैं घर से जलपान करके ही आ रहा हूँ।”

“यह तो ठीक है कि तुम घर से जलपान करके ही आए हो लेकिन मेरे मन का सुख भी तो कोई चीज होती है। मेरी इच्छा का भी तो कोई महत्व होना चाहिए। समाज में जितने भले लोग हैं, इष्ट-मित्र और बन्धु-बान्धव हैं, वे जब तक स आंगन में बैठकर एक दो-बार नहीं, दस बार नहीं, सौ-सौ बार तृप्ति की डकार नहीं लेंगे, तब तक मेरी यह कुटिया कैसे पवित्र होगी। आओ, आओ, ...”

कथन के साथ रामप्रसाद गोपी बाबू का हाथ पकड़कर बैठक के अन्दर ले गया।

गोपी बाबू शीतल पाटी पर बैठते-बैठते यकायक बोल उठे—“आज मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है, रामप्रसाद। मैं अक्सर सोचा करता हूँ कि तुमको हो क्या गया है? मैंने आज तक किसी भी पापी और अपराधी का ऐसा हृदय-परिवर्तन नहीं देखा। क्या बात है? सच बतलाओ?”

रामप्रसाद हँसने लगा। उसकी आँखों में आंसू आ गये। बोला—

रात और प्रभात

“केवल एक बात है, जो मेरी सम्पत्ति में आई है, जिसका मेरे पास कोई जवाब नहीं। तुमको तो मालूम है कि सांभेदारी के प्रश्न को लेकर मैंने ही बंटवारे का दावा दायर किया था। मैंने ही जीजा की दूकान में अलग से एक ताला डाल दिया था। उसका परिणाम यह हुआ कि जीजा की आमदनी बन्द हो गई। मेरी बहिन को कष्ट पहुँचा, मेरे भानजे को भी सम्भव है किसी-किसी दिन भरपेट दूध न मिला हो। लेकिन तुमने जब बड़े भइया से मेरी जमानत के लिए कहा, तो उन्होंने इन्कार नहीं किया। वे इसके लिए तुरन्त तैयार हो गए। अब मैं आपसे पूछता हूँ, ऐसे आदमी से बड़ा भला कौन होगा, जो बुराई का बदला भलाई से ही देना जानता है। आई गोपीनाथ, बस, केवल यही एक बात है, जिसके आगे मेरा सिर लाज से गड़ गया है। उनके पैरों के नीचे जो धरती है, उसमें धंस गया है। मैं अपना जीवन भी उनकी सेवा में समाप्त कर दूँ तो भी उनके इस उपकार का प्रतिदान कभी पूरा नहीं होगा।

“और भी एक बात है, जो तुमको शायद मालूम नहीं है।” रामप्रसाद ने कहा—“अभी बहुत दिन नहीं हुए, मेरा मुन्ना अचानक बहुत बीमार पड़ गया था। जीवन की कोई आशा नहीं रह गई थी। यह उन्हीं की साधना का फल है, उन्हीं के पावन आशीर्वाद का बल है, जो मेरा मुन्ना आज हँस रहा है, खेल रहा है। मालूम नहीं, उनकी वाणी में कौन-सा ऐसा जादू है, कि जो कुछ भी ज्ञान या अज्ञान, इच्छा या अनिच्छा से उनके मुँह से निकल जाता है, वह पूरा होकर रहता है।”

इतने में परदा हिल उठा। दो गोरे-गोरे हाथ उसके कोने से बैठक की ओर निकले और नमकीन, दाल-भोठ, मठरी और बिस्किट के साथ चाय की ट्रे सामने आ गई।

गोपी बाबू बोल उठे—“वाह ! ऐसी सुव्यवस्था तो मेरे घर में भी नहीं है।”

रामप्रसाद हँस पड़ा। उसने कह दिया—“मेरी गृहिणी देवी है।”

वह अपनी है, अतः उसकी प्रशंसा भी प्रकारान्तर से अपनी ही हो जाती है। इसलिये अधिक नहीं कहता हूँ।”

परदे के उस पार दमयन्ती हँस रही थी। एक बार तो उसके मन में आया कि वह कह दे—“देवी हूँ कि गुलाम।”

वह अन्दर की ओर धीरे-धीरे पैर बढ़ाती हुई जा रही थी। रसोई के द्वार की देहली पर दो गोरैयाँ बैठी फुदक रही थीं और पालने में खेलता हुआ मुन्ता अँगूठे को मुँह में डाले दूध चूसने का अभिनय कर रहा था।

इतने में कीर्ति ने आकर कह दिया—“बिल्कुल बदतमीज है यह विमला। उस दिन तो रोई नहीं, जब टांके लगाये गये और आज वहाँ दो ढाई सौ स्त्री-पुरुषों के बीच तुम्हारी यह लली जब रो पड़ी, तो मैं लाज से बिल्कुल गड़ गया।”

फैली हुई साड़ी तहाती-तहाती मँझली बहू बोल उठी—हकीकत में जीजी, विमला सिर्फ बात करने में वीर है।”

छोटी बहू बोल उठीं—“बात करने में भी कहां ? उस मुए सम्पादक के सामने तो इसका मुँह तक नहीं खुला।...अरे सामने न सही, पीठ पीछे सही। दो एक खरी खोटी तो सुना दी होती। बदमाश यहां फोटो लेने आया था।”

विमला का हाथ पट्टी से बंधा हुआ था। झट सामने आकर गरज उठी—“अरे हटो बुआ, बात यह हुई कि जब टांके लगाये गये थे, तब जगह सुन्न कर दी गई थी, लेकिन जब टांके काटे और निकाले गये, तब हाथ को सुन्न करने वाली किसी दवा का प्रयोग तो हुआ नहीं। यकायक मुझे ऐसा जान पड़ा, मानो जान निकली जा रही हो और इनकी वीरता की कथा सुनो। मुझको डाक्टर के पास छोड़कर फौरन वहाँ से भाग खड़े १८०

रात और प्रभात

हुये । ऐसे आदमी का क्या भरोसा ? मैं अब कभी इनके साथ नहीं जाऊंगी, मेरे प्राण भले ही निकल जायें ।”

सुभद्रा विमला को एकटक देखती-देखती मुस्करा उठी ।

मँझली बहू बोल उठी—“बस जीजी, दोनों रास्ते भर इसी तरह लड़ते आये हैं । यह कीर्ति को बेवकूफ कहती थी और कीर्ति इसको ।”

कीर्ति पहले तो हँसता रहा, फिर बोला—“भाई बात यह थी कि वह कमरा था स्त्रियों का और टांके निकाले भी एक लेडी डाक्टर ने । मेरा वहां क्या काम था ! बेकार बिगड़ रही है मुझ पर । मैंने अनेक बार कहा कि इससे अगर ऐसा ही है तो मुझसे बोलने की क्या आवश्यकता है ? मगर यह उसी आदमी की बुराई करती है, जो संकट के अवसर पर इसका साथ देता है । कृतघ्न कहीं की ?” और इतना कहकर वह तुरन्त छोटे भैया के कमरे में चला गया ।

कीर्ति को आता हुआ देखकर छोटे पुलकित होकर बोले—“कीर्ति, मेरी वह कविता इस वर्ष की कविताओं में सर्वश्रेष्ठ समझी गयी, जो ‘स्वर्णप्रभात’ से वापस आ गई थी ।

छोटी बहू बोलीं—“जीजी, बस इसी तरह दोनों रात-दिन लड़ते रहते हैं ।”

बड़ी बहू मुस्कराने लगीं । बोलीं—“मुझे तो यह लड़ाई बिल्कुल बनावटी जान पड़ती है बिटिया ।”

कीर्ति की मां ने कहा—“सुनती हूँ, पढ़ी-लिखी तो बहुत है ।”

विमला अब तक निकट बैठी हुई थी । अब उठकर चल दी ।

कीर्ति बोला—“बस, इसी उदाहरण से समझ लो, आज के पत्र-प्रकाशन में सम्पादकीय स्वर किस सीमा तक गिर गया है ।”

कीर्ति ने दो पुस्तकें, लाल-नीली पेन्सिल, रूमाल, दाल-मोठ की पुड़िया, एक छोटी रंगीन दूँ आदि सामग्री विमला के पास आकर पटक दी ।

साथ में इतना और कह दिया—“लो, तुम्हारी कोई चीज़ अपने पास न रखूंगा।”

कथन के साथ वह तुरन्त बड़े भैया के पास जा पहुँचा, जहाँ वे कमर पर दोनों हाथ बांधे हुये कमरे में टहल रहे थे। कीर्ति ने आते ही कहा—“बड़े मामा, लो, हिसाब देख लो। तीन हजार सात सौ नवासी रुपए तो वेतन की मद में खर्च हुए हैं। एक हजार-बहत्तर रुपये पीने पन्द्रह आने भोजन की मद में। पाँच-सौ रुपये साढ़े चार आने फुटकर। इस तरह अब कुल एक-सौ तीन रुपये बाक़ी बचे हैं।”

इसी समय विमला बहाँ आ पहुँची और बड़े भैया के पास आकर बोल उठी—“भौसिया, आपने हिसाब देख लिया?”

बड़े भैया ने उत्तर दिया—“क्यों? तुमको इस हिसाब के बारे में कुछ कहना है क्या?”

“हाँ, बहुत कुछ कहना है। इनसे पूछो, जो विवरण इन्होंने दिया है, उसकी रसीदें कहाँ हैं?” कथन के साथ उसने कीर्ति के मुख की ओर देखा।

कीर्ति ने कह दिया—“बड़े मामा, कुछ रसीदें तो हैं और कुछ अभी लेने को हैं।”

“यह हिसाब है कि पोल खाता! एक सार्वजनिक संस्था के आय-व्यय का वार्षिक चिट्ठा है कि कुँजड़े का गल्ला?” कथन के साथ रूमाल विमला ने मुँह से लगा लिया।

“बस, बड़े मामा एक बात बताइए, आप मुझ पर विश्वास करते हैं कि नहीं?” कीर्ति झट बोल उठा।

बड़े भैया बोले—“देखो कीर्ति, बुरा मानने की बात नहीं। हिसाब-किताब चाहे आपस का हो, चाहे सार्वजनिक हो, होना चाहिये प्रामाणिक! इसमें विश्वास और अविश्वास का प्रश्न नहीं उठता। विश्वास आत्मिक होता है, किन्तु हिसाब लौकिक। उसका एक रूप १८२

रात और प्रभात

होता है, एक आकार होता है। विश्वास को हम आँखों से नहीं देख पाते। चेतना में ही उसका अनुभव करते हैं। लेकिन हिसाब-किताब को तो हमें स्वयं देखना पड़ता है और आवश्यकता पड़ने पर हमें उसे चार आदमियों को दिखलाना भी पड़ता है। उस समय यह कहने की हमें गुंजाइश कहाँ है कि जो रसीदें नहीं हैं, वे भी बाद में आ जाएंगी !”

कीर्ति का मुख आवेश से एकदम लाल हो उठा। उसने कहा—
“बड़े मामा, यहाँ आप मेरे साथ अन्याय कर रहे हैं।”

बड़े भैया हँस पड़े। आश्चर्य के साथ बोले—“मैं और अन्याय ? कर्तुंगा भी, तो तुम्हारे साथ ? तुमको क्या हो गया है कीर्ति ? यह बात तुम किससे कर रहे हो ?”

“जो रसीदें इसमें नहीं हैं, उसका एक कारण है।”

बिना रुके विमला बोल उठी—“कारण तो हर एक अपराध का होता है। कोई अपराध अकारण नहीं होता।”

“देखिये, देखिये, मामा जी, हमारे बीच में पड़कर अगर यह इस तरह हमारा अपमान करेगी, तो आप जानते हैं, इसका क्या परिणाम होगा।”

बड़े भैया ने विमला से स्वाभाविक ढंग से कह दिया—“विमला, तुम इस समय चुप रहो। हाँ, तुम कहो कीर्ति, क्या कारण है ?”

विमला ने चलते हुये एक बार उसे घूमकर देखा, थोड़ी रुकी, फिर चल दी। बात यह है कि जिन रकमों की रसीदें नहीं हैं, वे हमारी बैठक में नहीं दी गईं। जहाँ हिसाब-किताब के कागज-पत्र, फाइलें और रजिस्टर रहते हैं। जैसे एक टेलर मास्टर छेदीलाल हैं, वह मुझको लाटूश रोड पर पीपल के वृक्ष के नीचे त्रिवेदी भवन के सामने, महावीर जी की मठिया के पास, ठीक सन्ध्या समय, पाँच बजे, सो भी अचानक मिल गया था।”

“मैंने पूछा—कहाँ जा रहे हो ?

“उसने कुछ भराई हुई आवाज में उत्तर दिया—जा तो आप ही के यहाँ रहा हूँ ।

“और दिन-भर कहाँ गायब रहे ?

“इतने में उसकी आँखें भर आयीं । बोला—अचानक बाबू जी की तबीयत इतनी खराब हो गयी कि उनका देहान्त हो गया । मुझे कुछ रुपये की जरूरत है । इसलिये आपके पास दौड़ना पड़ा ।’

“मैंने पूछा—कितने रुपये चाहिये ?

“वह बोला—जितने भी आप दे सकें । पहली तारीख आने को तीन ही दिन तो रह गये हैं ।

“संयोग की बात, पुरानी रजाइयों के रुआड़ से बनी हुई दरियों के दाम मुझे एक घंटा पूर्व मिले थे । उसी के तिरासी रुपये मेरी जेब में पड़े थे । उन्हीं में से मैंने उसके पूरे बेतन के साठ रुपये वहीं दे दिये । अब मैं आप ही से पूछता हूँ—क्या उसी समय, उसी स्थान पर, उससे रसीद के लिये कहना उचित था ?”

बड़े भैया बोले—“माना कि नहीं था, लेकिन इस कार्य को फिर बाद में तो पूरा कर लेना चाहिये था । हिसाब तुम्हारा सही है, इसमें कोई सन्देह नहीं । लेकिन इस हिसाब के साथ विवरणात्मक जो कथा तुमने अभी सुनाई उसका परिचय तो तुम्हारे मन के अन्दर था न ? बिना पूछे और बतलाये इस बात का पता कैसे चल सकता है ? बुरा न मानना । सत्य चाहे जितना बड़ा हो, उस पर ज्ञान या अज्ञान से परदा डाले रखना भी असावधानी का ही एक लक्षण है । और सार्वजनिक जीवन में थोड़ी-सी भी असावधानी एक अपराध है । जाओ, हिसाब मैंने देख लिया ।”

अभी यह बातें चल ही रही थीं कि मँझले भैया ने भट कमरे के अन्दर जाकर कह दिया—“बड़े भैया, बड़ा गड़बड़ हो गया ! रामप्रसाद को छै महीने की सजा हो गई ।”

रात और प्रभात

“क्यों ? तुमने तो कहा था कि सूरजप्रसाद के बयान से वह साफ छूटे जायगा ।” बड़े भैया ने पूछा ।

“आशा तो यही थी, लेकिन रामप्रसाद ने उसी अवसर पर कुछ कहने की अनुमति लेकर अपना अपराध स्वीकार कर कह दिया—“सूरज ने अभी जो बातें कही हैं, वे केवल मेरी रक्षा के लिये कहाई गयी हैं । लेकिन मैं अपना अपराध स्वीकार करता हूँ ।”

तब बड़े भैया ने बाएँ हाथ से अपना मुँह ढक लिया । कुछ कहा नहीं ।

इस समय कीर्ति का मुँह भी उतर गया था । घर की ओर वापस होते-होते वह मन-ही-मन कहने लगा—‘मामा जी का ही कथन सही है । इस समय विमला ने मुझको लज्जित करने में कोई बात उठा नहीं रखी, उसका भी अभिप्राय यही है कि सत्य की उपासना में न प्रेम का कोई महत्व है, न मान-सम्मान का, न आत्मीयता का ! सत्य सबसे बड़ा है । सबसे बड़ा है ।’

फिर कीर्ति अपने आप से उलझ उठा ।

‘झूठ—बिल्कुल झूठ । जिस घट में प्रेम नहीं, वह घट मरघट का है । जो शब्द प्रेम से नहीं निकलते, वे सत्य होकर भी अमृत नहीं बन सकते ।

—अच्छा, यदि सत्य और प्रेम—तुम्हें दो में से किसी एक को लेना हो, तो तुम किसे लेना चाहोगे ?

—प्रेम को ।

—तो तुमको प्रेम नहीं मिलेगा । अरे मूर्खराज, तुम यह क्यों नहीं कहते कि सत्य को; क्योंकि वही प्रेम की आत्मा है । जिस प्रेम में सत्य नहीं, उसकी आँखें फूट गयी हैं, वह अन्धा है ।

—मुझे अन्धा प्रेम नहीं चाहिये—मुझे फूटी आँखें नहीं चाहियें ।

प्रातःकाल जब रायसाहब चलना चाहते थे, तभी उन्होंने बड़े भैया से कहा—“बड़े भैया, इस बार मैं विमला को साथ लिए जाता हूँ।”

कुछ चौंकते हुए बड़े भैया बोले—“ऐं क्या कहा ! हाँ, अच्छा तो है। केवल इस बात का ध्यान रखना कि कभी, किसी भी कारण, उसका जी न दुखने पाये। मैं कभी यह भूल नहीं पाता कि समय-समय पर अनेक बार, और अनेक ढंग से उसने यही व्यक्त किया है कि जिसके माँ नहीं होती, उसके जीवन में प्यार भी नहीं होता।”

“यह उसकी भूल है बड़े भैया। अन्यथा ऐसी बात कभी उसके मुँह से निकल नहीं सकती थी। मुझे खेद है, उसने यह क्यों नहीं सोचा कि मैं इस समय उसकी माँ पहले हूँ, पिता बाद में ! द्वितीय विवाह जो मैंने कर लिया, उसका भी एक कारण है। आप जानते हैं, प्रत्येक व्यक्ति की एक सीमा होती है। इसीलिए असीम को छूने की चेष्टा में न पड़ मैंने मानसलोक को कभी अन्तस के घूम से विकीर्ण होने का अवसर नहीं दिया है।”

“और भी एक बात है रायसाहब ! आप कभी अपने मन में यह

रात और प्रभात

न सोचियेगा कि इसका विवाह आपको करना है। वह जब कभी होगा, उसे करूँगा मैं ही और वह सम्पन्न भी इसी घर में होगा।”

चकित रायसाहब बोल उठे—“नहीं बड़े भैया, ऐसी क्या बात है ! यह तो मेरा कर्तव्य है, पालन भी इसका मैं ही करूँगा।”

“तुमने केवल उसे पैदा किया है। जिसको जीवन कहते हैं, उसका निर्माण यहाँ हुआ है, इस घर में हुआ है। मेरा तो यही ख्याल है कि दस-पाँच दिन के बाद वह स्वयं यहाँ आने को उत्सुक हो उठेगी। आप लाख प्रयत्न करेंगे फिर भी उसका मन वहाँ लगेगा नहीं। हो सका तो मैं स्वयं आकर उसे ले आऊँगा।”

ताँगा खड़ा हुआ था। कमरे और भीतर के दरवाजे के बीच में रायसाहब मँझले भैया से कह रहे थे—“मँझले भैया, आज चलते-चलाते गोली नहीं चलेगी ?”

मँझले भैया ने धीरे से जवाब दिया—“धीरे से बोलो... धीरे से बोलो, इधर मेरे साथ चले आओ।” दुव्यसन को छिपाने के लिये युक्ति चाहिये युक्ति ! और कमरे के अन्दर जाकर पत्नी की ओर उन्मुख हो कह दिया—“अरे गोविन्द की माँ, उस गोली में से आधी रायसाहब को दे देना।”

बड़ी बहू गोविन्द की अँगुली पकड़े हुए बड़े भैया के पास खड़ी थीं और कीर्ति दरवाजे पर आकर विमला से कह रहा था—“अभी तुम्हारे हाथ का घाव अच्छी तरह से भर नहीं पाया। हो सकता है, कुछ अशक्त भी हो। सावधानी से रहना और कोई वजनी चीज एक-ब-एक उठाने की चेष्टा न करना।”

विमनस्क विमला कह रही थी—“अच्छा, अच्छा, सुन लिया। झुपचाप जाकर अपना सूटकेस देखो।... अगर भूल से भी कोई मेरी चीज छिपाकर रख ली हो, तो अभी अवसर है, लौटा सकते हो। ज्ञान से हो

या अज्ञान से, मैं तुम्हारे पास कोई ऐसी-वैसी चीज नहीं छोड़ जाना चाहती...।”

यकायक कण्ठ भर आया और कथन अधूरा ही रह गया। विमला स्पष्ट रूप से यह न कह सकी कि...‘जो तुमको मेरा स्मरण दिलाने का कारण बने।’

इस समय रायसाहब पुनः बड़े भैया के निकट आकर धीरे-धीरे कुछ कह रहे थे। छोटी बहू विमला के पास जा पहुँची। कीर्ति वहाँ से हटकर बड़े भैया के पास चला गया। वह सोच रहा था, ‘तुमने उससे यह क्यों नहीं कह दिया कि अविकल प्रेरणा-लोक में स्मरण मात्र ही ऐसा संकेत है, जिससे देवता भी जाग उठते हैं। मैं तो एक साधारण मनुष्य हूँ।’

इतने में गोपी बाबू आ गये और उनके साथ चल दिये।

बड़ी बहू की आँखों में आँसू भरे हुये थे और गोविन्द विमला की गोद से नहीं उतर रहा था जब कि वह ताँगे पर बैठ चुकी थी। जब उसे ताँगे से उतारा गया, तो वह रोने लगा। आँचल से आँसू पोंछती हुई बड़ी बहू द्वार मंच की सीढ़ी पर खड़ी हुई बोल उठी—“विमला बेटी, पहुँचते ही चिट्ठी-डाल देना, अच्छा।”

ताँगा चल पड़ा। विमला आँखों में आदर भरे द्वार-मंच की सीढ़ियों की ओर देखने लगी।

उस समय बड़ी बहू बोली—“अरे कीर्ति बेटा, रायसाहब को भेजने स्टेशन तक नहीं जायगा !”

कीर्ति दूसरे लोक में था। विमला का यही कथन उसे बार-बार स्मरण आ रहा था—मुझे ठीक से पकड़े रहना। कहीं गिर न जाऊँ। अकस्मात चौंककर बोला—“ऐं क्या कहा ? हाँ जाता हूँ—अभी जाता हूँ।”

आगे ताँगा जा रहा था, पीछे साइकिल पर कीर्ति !

हृदय में एक द्वन्द्व था, एक विकर्षण। इसी ने तो कहा था, ‘एक सार्वजनिक संस्था के आय-व्यय का वार्षिक चिट्ठा है कि कुंजड़े का

रात और प्रभात

गल्ला ।’ और अभी-अभी कह रही थी—‘ज्ञान से या अज्ञान से, मैं तुम्हारे पास कोई ऐसी-वैसी चीज़ नहीं छोड़ जाना चाहती...’।’ हूँ, इसको अपने रूप का इतना अभिमान हो गया है कि उसके बल पर मेरा अपमान करेगी ! और ऐसे समय मैं उसे विदा करने जाऊँ !’

साइकिल लेकर वह थोड़ी दूर ही पीछे-पीछे गया होगा कि आगे पथ का मोड़ आ गया । वह वहीं रुक गया ।

एक मकान का चबूतरा, एक खड़ी साइकिल और चबूतरे को ही भाड़-भूड़कर उसी पर पैर लटका कर बैठा कीर्ति ।

—फिर आया एक सामुज्य ।—ओ अश्वारोही, थोड़ा रुको न ? मेरी गति भी वही है जो तुम्हारी । हम दोनों ही युद्ध-विराम की स्थिति में हैं । कुछ भी हो, वह है तो अन्ततोगत्वा सत्तान्तरित प्रदेश ही । वहाँ तुम्हें अभी इतनी आतुर-त्वर शोभन न होगी ।

—फिर हुआ एक शर-सन्धान ।—‘यह हिसाब है कि पोल खाता !’

यह कुण्ठा नहीं, शूरम्मन्य वितुष्णा है । वैदग्ध्य नहीं, अपरूप बेलक्ष्य है ।

—फिर आयी एक मलय-भङ्गोर ।—राय मामा स्टेशन तो पहुँच ही गये होंगे । गाड़ी आ गयी होगी । यों ही लौट जाऊँगा, तो मामी से झूठ बोलना पड़ेगा । चलो कीर्ति : कुछ भी हो—‘सीढ़ियाँ कई हैं ।’

कीर्ति ने साइकिल पकड़ी । एक दो तीन ।

अब कीर्ति पहले पूर्वीय पुल पार करते हुए एक कुली से भिड़ गया, कुछ इस प्रकार, जैसे होली में लोग मिलन-भेंट करने को आगे बढ़ जाते हैं—‘ओ: सारी ।’ फिर नीचे जो उतरा तो प्लेटफार्म पर ‘चाय गरम’, ‘बीड़ी-पान’ वाले को बचाता-बचाता खोंचे वाले से जा टकराया । पर इस बार खोंचे वाले को ही कहना पड़ा—“बचाना बाबू ! गरीब आदमी हूँ ।”

कीर्ति यकायक ठिठककर बहुत सम्हल गया ।

रात और प्रभात

गार्ड के मुँह में सीटी थी, हाथ में हरी झंडी । कीर्ति की दृष्टि क्रमशः सभी द्वितीय श्रेणी वाले डिब्बों पर जा रही थी ।

सीटी बराबर बज रही थी । एकाएक गाड़ी चलने लगी । डिब्बों में बैठे यात्रियों की आँखें कीर्ति की सतृष्ण दृष्टि से टकराने लगीं । उसका हृत्पिण्ड द्रुतगति से डोल रहा था ।

क्या राय मामा दिखाई न देंगे—क्या विमला की कटूक्ति सुनने को न मिलेगी !

इतने में विमला खिड़की के निकट आकर झाँकने लगी ।

—ओः कीर्ति ! मेरा दर्पण तो तुम्हारे ही सूटकेस में रह गया । अब उसे तोड़कर फिकवा देना । मुझे उसकी आवश्यकता नहीं है ।

गाड़ी और तेज होने लगी ।

विक्षिप्त-सा कीर्ति अवाक् हो उसे देखता रह गया । बोल कुछ न सका । पर तभी विमला का रूमाल मानो यह कहता हुआ यकायक आँखों पर आ गया ।—‘मुझे पकड़े रहना ।’

कीर्ति भी जेब से रूमाल निकालकर हाथ ऊँचा करके हिलाने लगा—‘सीढ़ियाँ कई जो हैं ।’

।

कीर्ति ने जो उद्योग-मंदिर के अन्दर प्रवेश किया, तो उसने देखा, जहाँ पुस्तकों के छपे फर्शों की भँजाई का काम होता है, वहाँ सोनेलाल दफ्तरी जिसकी टाँग टूटी हुई थी, उन फर्शों को भी भाँजता चला जाता है, जो रही हैं । कोई तिरछे छपे हुए हैं; किसी पर स्याही पुत गयी है और किसी का कोना सिकुड़ जाने के कारण इतना उपयोग-हीन हो गया है कि उसकी पंक्तियाँ गायब हैं । तुरन्त कीर्ति आवेश में आ गया और बोला—“तुम बिल्कुल उल्लू हो । तुम्हारी टाँगें टूटी हैं, तो क्या आँखें भी फूटी हुई हैं । तुमको दीख नहीं पड़ता कि यह १६०

रात और प्रभात

तुम क्या कर रहे हो ? अभी तुमने जो कागज मोड़ा है, वह कैसे पढ़ा जायगा ?”

सोनेलाल ने आँखों के पलक मूंदते और खोलते हुए उत्तर दिया—
“बाबू जी, बाबू जी, अगर इस कागज को निकालकर रद्दी कर दूँ, तो फिर किताबें न कम हो जायेंगी। आप ही शिकायत करेंगे कि इतनी किताबें कम कैसे हो गयीं।”

कीर्ति ने जवाब दिया—“अरे मूर्ख ! आगे की शिकायत के डर से तू पहले से ही शिकायत पैदा क्यों कर रहा है ? बाद में जब किताबें कम पड़ेंगी, तब तुझे यह समझाने का अवसर तो रहेगा कि देख लीजिये रद्दी होने के कारण इतने कागज निकाल देने पड़े हैं।”

सोनेलाल इतना सिटपिटा गया कि फिर कोई उत्तर न दे सका।

उसे चुप देखकर कीर्ति बोला—“ऐसे जितने कागज मोड़ डाले हों, उन्हें निकालकर अलग रख दो और फिर कभी भविष्य के डर से, प्रारंभ में ही कोई भूल न करना।”

कथन के साथ कीर्ति उस जगह जा पहुँचा, जहाँ सिलाई हो रही थी। एक ग्राहक खड़ा हुआ कह रहा था—“आपने मेरा यह पैंट बिल्कुल रद्दी कर दिया। देखिये-देखिये, यहाँ पर यह कितना छोटा हो गया है।”

छेदीलाल ने उत्तर दिया—“आप इसको छोड़ जाइये। मैं ठीक कर दूँगा।”

ग्राहक लौटने को तत्पर हुआ था कि उसी समय कीर्ति बोल उठा—
“हाँ-हाँ, छोड़ जाइये, ठीक हो जायगा।”

ग्राहक तो चला गया। लेकिन कीर्ति बोल उठा—“देखो छेदीलाल, अगर यह पैंट ठीक न हुआ, तो मैं तुमको सदा के लिए ठीक कर दूँगा। तुम जनता को धोखा देते हो, उसकी आँखों में धूल भोंकते हो ! जब वह

पैन्ट छोटा हो गया, तो अब बड़ा कैसे होगा ?”

छेदीलाल ने उत्तर दिया—“बाबू जी, बात यह है कि...”

“बात-बात कुछ नहीं है। यह तुम्हारी लापरवाही है। इसका नाप तुमने कहाँ लिखा है, दिखलाओ तो।”

छेदीलाल ने आदेश की कापी निकालकर सम्बन्धित पृष्ठ कीर्ति के सामने रख दिया। कीर्ति बोला—“इस नाप के अनुसार अब इस तैयार पेंट को नापकर देखो। जहाँ वह छोटा हुआ है उस स्थान को देखो और छोटे होने का कारण समझाओ।”

छेदीलाल ने पेंट के उस स्थल को जो नापकर देखा तो सचमुच इंच भर से अधिक छोटा निकला। तभी उसके मुँह से निकल गया—“बात यह है बाबू जी, यह पेंट साधारण आदमी के नाप के अनुसार ही मैंने काट डाला है। आप जानते हैं, हर एक आदमी तो इतना तगड़ा होता नहीं। बस यही मुझसे भूल हो गयी।”

“मगर भूल हो कैसे गयी ? खाना खाने में भूल नहीं होती ! समय हो जाने पर तुरन्त घर जाने में भूल नहीं होती। वेतन लेने और दबाव डालकर उसे बढ़वाने में भूल नहीं होती ! और काम करने में भूल हो जाती है। अगर ग्राहक ने पेंट न लिया तो उसका दाम तुम्हारे वेतन से कटेगा। और फिर कभी ऐसी भूल हुई तो कान पकड़कर बाहर निकलवा दूंगा। तुम सोचते हो, यहाँ कोई देखने-सुनने वाला नहीं है। उस दिन हमने सहानुभूति दिखलाकर, लाट्रश रोड पर, पूरे वेतन का रुपया तुमको दे दिया और तुम्हारी यह हिम्मत कि तुम फिर रसीदी टिकट पर हस्ताक्षर करके मुझे रसीदी टिकट भी नहीं दे गये। जन-सेवा-कार्य को तुम समझते क्या हो ? सार्वजनिक संस्था में ऐसे असावधान लोगों की शकल देखना भी मैं पसन्द नहीं करता।”

छेदीलाल कम्पित हो गया और गिड़गिड़ाता हुआ बोला—“बाबू जी, हमसे भूल हुई है तो हम इसका संशोधन भी कर लेंगे। सीवन उधेड़कर १६२

रात और प्रभात

फिर से सी देंगे । मेरा ख्याल है इस तरह फिर ग्राहक को कोई शिकायत न रहेगी । मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि अब आगे कभी मैं शिकायत का मौका न दूंगा । और बाबू जी, रसीद तो मैंने फिर दे ही दी थी ।”

“बको मत छेदीलाल ! रसीद दे दी थी ।...रसीद भ्रष्टाचारकर तुम ने तब दी थी, जब मैंने तुमसे माँगी थी । उस दिन के बाद जब तुम यहाँ आये थे, उसी वक्त इस कारखाने के अन्दर कदम रखते-रखते तुमको सब से पहले यही काम करना चाहिए था । तुमने तो कह दिया—“हम भूल गये” मगर उसका परिणाम हमारे लिए कितना अपमानजनक हो सकता है, यह तुमने क्यों नहीं सोचा ? मैं गलत आदमियों से काम लेना पसन्द नहीं करता, मगर सही आदमियों को सवाया वेतन देना पसन्द करता हूँ ।”

कोठी के उस नीचे वाले भाग में यकायक सन्नाटा छा गया । लोग आपस में कानाफूसी करने लगे ।

“आज मैनेजर साहब का मिजाज कुछ गरम जान पड़ता है । कहीं खटपट हो गयी होगी । हो सकता है, मेम साहब से ही झगड़ा हो गया हो ।”

“अरे हट, अभी विवाह भी किया है !”

“बाप रे बाप ! यह लाल सेब-सी उमर और विवाह नहीं किया । माता-पिता किसी बड़ी रकम के फेर में होंगे या फिर इन्हीं का मन कहीं हरी घास पर चरने लगा होगा ।”

अब उद्योग-मन्दिर में बढईगीरी का भी एक विभाग खुल गया था । कुर्सियाँ और टेबिलें बनने लगी थीं । पर एक विशेषज्ञ मिस्त्री इसकी व्यावहारिक शिक्षा देने के लिए नित्य कुछ देर करके आता था ।

उस समय सायंकाल के छः बज रहे थे, संयोग से विशेषज्ञ मिस्त्री उसी समय आ पहुँचा ।

कीर्ति ने सामने आते ही उससे पूछा—“आप कितने बजे आये हैं ?”

मिस्त्री ने जवाब दिया—“बाबू, जी आज मुझे आने में देर हो गयी ।”

“हूँ, आज देर हो गयी ! देर से काम पर आने वालों को मैं कभी क्षमा नहीं कर सकता ।”

मिस्त्री बोला—“बाबू जी, मैं जहाँ काम करता हूँ, वहाँ मालिक उसी वक्त काम देखने आ पहुँचते हैं, जब हमारी छुट्टी का समय होता है ।”

“यही बात तुम उनसे मुँह खोलकर कहते क्यों नहीं ?”

मिस्त्री ने जवाब दिया—“अब बाबू जी, मैं आपको क्या बताऊँ । यह जालिम पेट सब कुछ करा लेता है । किसी तरह खींचकर एक घण्टा जो अधिक बीत जाता है तो उसका पैसा भी अलग से मिल जाता है ।”

“ओ: किसी तरह खींचकर ! मैं इसे बेइमानी समझता हूँ । साथ ही मैं उस दिन का स्वप्न देखता हूँ कि एक दिन यह संस्था आप लोगों की हो जाय—इसका पूरा-पूरा लाभ कार्य-कर्त्ताओं में ही बाँट दिया जाय ।”

“बाबू जी, तो फिर आप पूरे समय के लिए मुझे क्यों नहीं रख लेते ?”

“देखा जायगा । अभी मैं कोई ऐसा वचन नहीं दे सकता ।”

कीर्ति ने जब उद्योग-मंदिर के अपने मिस्त्री को बुलाया, तो उसने आते ही कहा—“बाबू जी, अगर किसी तरह आप एक मोटर का प्रबन्ध कर दें, तो यह लकड़ी का काम इतना बढ़ सकता है कि अलग से इसका एक कारखाना खोलना पड़ जाय । मुझे पता चला है कि एक जगह एक हज़ार पलंग के पावों की माँग है । हमने पूछा था, तो पता चला कि उसकी दर दस से घटाकर साढ़े नौ रुपये कर दी जाय, तो वह आर्डर हम को मिल सकता है । बाबू जी, इस अवसर से अगर लाभ उठाया जा सके तो बड़ा अच्छा हो ।”

रात और प्रभात

बड़ई मिस्त्री के इस कथन पर कीर्ति विचार में पड़ गया।

इसी समय सीढ़ियों पर किसी के चढ़ने का खटका हुआ। पहले एक छड़ी दिखलाई पड़ी, फिर कपड़े के झूते।

काम करने वाले लोग आपस में कानाफूसी करने लगे। कोई बोला—
“हूँ, होगा कोई ग्राहक। ऐसे लोग तो यहाँ आते ही जाते रहते हैं।”

किसी ने कहा—“यह तो कोई सेठ मालूम पड़ता है। देखते नहीं हो, कैसा भारी-भरकम शरीर है।”

किसी ने कहा—“अरे हटो, मुझे तो बाबू जी के बापू मालूम पड़ते हैं। वह देखो, देखते ही दौड़ पड़े न !”

कीर्ति सचमुच भट से दौड़ पड़ा। निकट जाते-जाते बड़े भैया के चरण-स्पर्श करने को जो झुका, तो उन्होंने हाथ बढ़ाकर रोकते और मुसकराते हुए कह दिया—“नहीं-नहीं कीर्ति, बस इतना बहुत है।”

“मामा जी, भाँजा होने मात्र से श्रद्धा का अधिकार तो नहीं चला जाता।”

“श्रद्धा का अधिकार ! मानता हूँ, होता है। मगर होता है—कर्म में, सेवा में, अनुसरण में, पथ में...।”

“और आरती में नहीं, अर्चना में नहीं, उपासना में नहीं ?”

“आरती, अर्चना, उपासना ! यह सब अन्तः के धर्म हैं। इसलिये यह चरण-स्पर्श का प्रदर्शन मुझे स्वीकार नहीं। चलो अपना कार्य-कलाप दिखलाओ।”

कीर्ति ने एक-एक करके सभी विभाग दिखलाये। चरखा विभाग में कुछ प्रौढ़ा स्त्रियाँ काम कर रही थीं। उनके वस्त्र मलिन थे। किसी के केश बिलकुल शुष्क थे और कोई रुग्ण मालूम पड़ती थी। एक स्त्री काम करते-करते लेट रही थी। पूछने पर मालूम हुआ उसे कई दिन से ज्वर आ रहा है ?”

रात और प्रभात

बड़े भैया ने आश्चर्य से कहा—“ज्वर आ रहा है, तो यह काम पर क्यों आती है ?”

एक स्त्री उस बीमार स्त्री के पास बैठी हुई पोनी बना रही थी । हाथ जोड़कर बोली—“मालिक, आप यह क्या कह रहे हैं ! क्या कोई ऐसा भी घर है, जहाँ बीमार रहने पर हम लोगों को काम न करना पड़ता हो !”

यह ऐसी बात थी कि बड़े भैया को जेब से रुमाल निकालकर आँखों में लगाना पड़ा । बोले—“तुम ठीक कहती हो बहन । हमारे इस पावन महान देश में, शरीर में ज्वर रहने की दशा में स्त्रियों को चक्की पीसनी पड़ती है । बर्तन मलने पड़ते हैं । यहाँ तक कि आग के सामने बैठकर रसोईघर में खाना पकाते हुए जलना, तपाना और अपने शरीर को झुलसाना भी पड़ता है । मगर... ।”

अब बड़े भैया ने कीर्ति की ओर मुड़कर कहा—“कीर्ति, बीमारी की अवस्था में भी हमें इन कर्मचारियों को वेतन देने की व्यवस्था करनी चाहिए ।”

कथन के साथ बड़े भैया आगे-आगे उसी की बैठक की ओर बढ़ने लगे, जहाँ कीर्ति बैठता था ।

कीर्ति ने जवाब दिया—“मामा जी, आपकी यह आशा भी पूरी होगी । मगर अभी नहीं, कुछ दिन बाद ।”

कीर्ति का इतना कहना था कि बड़े भैया गम्भार हो उठे । छड़ी को उन्होंने कक्ष के एक कोने में टिका दिया; फिर छोटी आराम कुर्सी पर बैठते हुए वे बोले—“कीर्ति, किसी भी शुभ काम को हमें कल पर छोड़ना पसन्द नहीं । हमें यह भी स्वीकार नहीं कि जीवन की अन्तिम सांस पूर्ण होते समय एक न एक पश्चाताप हमारे मन में बना ही रहे कि हाय ! अमुक काम तो कर ही नहीं पाये । तुमको यह कार्य आज से ही प्रारम्भ कर देना होगा । मुझे बड़ा आश्चर्य तो इसी बात का है कि एक प्रौढ़ १९६

रात और प्रभात

नारी ज्वराक्रान्त बनी रही—काम भी किसी तरह करती रही—पर तुमको इसका पता भी न चला ! और जब मैंने अपनी एक भावना तुम्हारे सामने प्रकट की, तो प्रशासकीय वचनों की भाँति तुमने उत्तर दिया—‘अभी नहीं, कुछ दिन बाद !’ मैं जानना चाहता हूँ कि इतनी बड़ी संस्था का कार्य-संचालन करते समय तुम्हारे ध्यान में यही प्रश्न इस रूप में क्यों नहीं उपस्थित हुआ कि यहाँ एक आयुर्वेदिक चिकित्सा-विभाग क्यों न खोल दिया जाय ! एक आयुर्वेदाचार्य के निरीक्षण में क्या यह कार्य हो नहीं सकता था ?”

“सब हो सकता है; पर सुदृढ़ आर्थिक पोषण के बिना कुछ नहीं हो सकता ।”

“तो सुदृढ़ आर्थिक पोषण होता क्यों नहीं ? कौन उसे रोक लेता है ?”

“हमारे यहाँ सच्चे जन-नायकों का अभाव है, कर्मठ जन-सेवकों का अभाव है, स्वार्थ-त्यागी कार्य-कर्त्ताओं का अभाव है ।”

“यह अभाव इसलिए है कि सारे के सारे कार्य को प्रायः एक ही योग्यतम आदमी पर डाल दिया जाता है और वह व्यक्ति भी यह समझ बैठता है कि मैं इस काम को कर सकता हूँ, दूसरा कोई इस योग्यता के साथ नहीं कर सकता । वह यह समझने की चेष्टा नहीं करता कि योग्य साथी पैदा करना, उन्हें सम्बन्धित कार्य सौंपना और अवसर आने पर उनका पूरा-पूरा सहयोग प्राप्त करना भी उसी का काम है, उसी की योग्यता का एक लक्षण । मैं जानना चाहता हूँ कि तुमने ऐसे कितने साथी पैदा किये ?”

कीर्ति ने कभी सोचा न था कि कभी ऐसे प्रश्न का उत्तर भी उसे देना पड़ेगा । वह यकायक विचार में पड़ गया और तुरन्त कोई उत्तर न दे सका ।

बड़े भैया कीर्ति की इस दुर्बलता से परिचित थे । अतः उन्होंने

कहा—“मैं जानता हूँ तुम इस संस्था के जन्मदाता हो। इसलिए इसके विकास की हर कड़ी को शृंखला का रूप देना तुम्हारा ही कार्य होना चाहिए। किन्तु अपनी सीमाओं से घिरे रहकर अगर तुम इस योजना को आगे नहीं बढ़ा सकते; तो जनता की प्रगति को रोके रखने का तुम्हें क्या अधिकार है?”

कीर्ति अब तक सिर झुकाये हुए बठा था। पर अब सिर उठाते हुए उसने उत्तर दिया—“मामा जी, आपको विदित ही है कि प्रारम्भ में यह संस्था केवल दान पर चलती थी। वह इस नगर के गौरव के लिए एक नई योजना थी। इसलिये उसके नाम पर लोगों में एक उत्साह था। उसके पीछे एक भावना थी कि हमने एक नये कार्य का श्रीगणेश किया है। हम देश के सामने एक नवीन आदर्श उपस्थित करने जा रहे हैं। मेरी समझ में नहीं आता कि अब उन लोगों में यह भाव क्यों नहीं रह गया। जिन्होंने प्रतिभास एक निश्चित रकम देने का वचन दिया था, वे ही अब हमसे कहते हैं कि संस्था को स्वावलम्बी बनाइये। हमारी भावना के शोषण का प्रयत्न मत कीजिये।”

बड़े भैया बोल उठे—“मुझे तो उनका कहना बिल्कुल स्वाभाविक जान पड़ता है।”

कीर्ति ने उत्तर दिया—“पर कठिनाई यह है कि जिन वस्तुओं का उत्पादन इस संस्था द्वारा होता है, बाजार भाव की दृष्टि से वे प्रायः मंहगी पड़ती हैं। इसके अतिरिक्त गृहों में भी वे उतना आकर्षण नहीं रखतीं, जो पूँजीपतियों द्वारा संचालित कारखानों और मिलों से बनकर आया करती हैं। मेरे विचार में कुटीर उद्योग की सबसे बड़ी दुर्बलता यही है।”

“तुम्हारे इस कथन का स्पष्ट अर्थ यह है कि कुटीर उद्योग का भविष्य अन्धकार में है।”

अब तक तो किसी तरह काम चलता आया। पर अब आगे कैसे काम चलेगा, यह मेरी समझ में नहीं आता। आयुर्वेदिक १६८

रात और प्रभात

चिकित्सा-विभाग खोलने की जो बात आपने कही—वह मेरी समझ में आती है। किन्तु उसके शुभारम्भ के लिए उसमें भी रुपया लगाने की आवश्यकता पड़ेगी। आपको शायद मालूम नहीं है कि हमने ऐसे भी दिन देखे हैं जब चन्दे का रुपया नहीं मिला है और समय पर वेतन बांटने के लिए हमें अपने निजी मित्रों से रुपया उधार लेना पड़ा है। लेकिन अब इस अवस्था में मैं ऐसी कोई जोखिम लेने के लिए तैयार नहीं हूँ।”

बड़े भैया कुरसी से उठकर खड़े हो गये। छड़ी उन्होंने अपने हाथ में ले ली। और उनके मुँह से निकल गया—“यह मेरे किसी सवाल का जवाब नहीं है। किसी समस्या का समाधान नहीं है। किसी आपत्ति का निराकरण नहीं है।” और इन्हीं शब्दों के साथ वे वहाँ से चल दिये।

कीर्ति ने कभी सोचा न था कि ऐसा भी कोई समय आ सकता है, जब बड़े मामा हम पर गम्भीर दोषारोपण करके विरक्त भाव से चल देंगे। पर संयोग से ऐसी ही परिस्थिति सामने थी।

इतने में कोठी के पश्चिम ओर काठ-कबाड़, टूटी-फूटी ईंटों और खरंजों का जो स्तूप-सा दिखलाई पड़ता था, वहीं से एक बिल्ली चीत्कार कर उठी। कीर्ति के कान खड़े हो गये।

बड़े भैया एक सीढ़ी ही उतर पाये थे कि कीर्ति सहमा-सहमा, थोड़ा-थोड़ा आविष्ट और पराभूत-सा होकर उनके पास आ पहुँचा और बोला—“बड़े मामा, बड़े मामा ! यह आप क्या कर रहे हैं ?”

बड़े भैया का मुख अब और गम्भीर हो गया। बरामदे में किबाड़ के पास एक तख्त खाली देखकर वे उसी पर बैठ गये, और बोले—“आज मैं तुमको सबसे अधिक दयनीय दशा में देख रहा हूँ। मुझे ऐसा जान पड़ता है कि तुम्हारे सम्बन्ध में मैंने जो स्वप्न देखा था, वह भाष भंग हो गया है। तुम्हारी प्रतिभा, देश के कामों में लगन और साधना की जो मैंने स्वर्ण-प्रतिमा बनाई थी, उसे स्वयं तुम्हीं ने अपनी प्रतिक्रिया और वर्जनीय कुण्ठा से चूर-चूर कर डाला है। तुम कदाचित् यह सोचने

रात और प्रभात

लगे हो कि अगर तुम उद्योग-मंदिर का काम नहीं करोगे, तो अब यह काम बन्द हो जायगा। मगर यह तुम्हारा भ्रम है। मानव-स्वभाव का सबसे दुर्बल और चिन्त्य पक्ष यही है, जो असायमिक व्याघात को सहन न कर कर्म-क्षेत्र से भाग उठने की प्रेरणा देता है। तुम्हें मालूम होना चाहिये कि निर्णयात्मक दोषों से बचने के लिये परम्परा का यह अनुसरण भावी संकट से पूर्व जो तात्कालिक संकट उत्पन्न कर देता है, बस यही मनुष्य का अधःपतन बन जाता है। इसमें व्यक्ति की ही हानि का प्रश्न नहीं है, यह तो उसकी व्यापक साधना और तपस्या पर भी एक कलंक है, जो एक सीमा तक प्रलब्ध सफलता का जीता-जागता परिणाम और उत्कर्ष है। यह उस अटूट श्रद्धा पर भी एक काला धब्बा है, जो साधना के बल से सारे जगत को एक बार थर्रा देने की शक्ति रखती है। मेरी समझ में नहीं आता कि तुमको हो क्या गया है।”

बड़े भैया कदाचित् उस समय कुछ और भी कहते, किंतु इतने में छोटे भैया के साथ हँसती-हँसती विमला उद्योग-मंदिर की सीढ़ियां चढ़ती हुई बोल उठी—“क्या बहस छिड़ी हुई है मौसिया ?”

पहले तो यकायक सहम गया कीर्ति ! पर फिर तुरन्त सम्हलकर विगत प्रतिक्रिया का कोई भी आभास न देकर मुस्कराता हुआ बोला—“पूरी बात सुने बिना ही जो आपने मेरी तीव्र आलोचना कर डाली, उससे मुझे बड़ा लाभ पहुँचा है। कठिनाइयाँ सामने रखने का यह अभिप्राय नहीं कि जहाँ तक हम आगे बढ़ आये हैं, यकायक वहाँ खड़े होकर पीछे फिर कर देखने में हमें कोई सुख मिल रहा है। और यह समझना तो मेरे साथ और भी अन्याय करना है कि मैं कर्म-क्षेत्र से भाग जाने को तत्पर हूँ। इस समय मैं किसी तर्क-वितर्क की परिस्थिति में नहीं हूँ। आपके चरणों के निकट बैठते-बैठते इतना तो जान ही गया हूँ कि परिस्थितियों का यह भयावह रूप कभी-कभी एक साधारण दोष को जघन्य अपराध बना देता है। आपको विदित ही है कि पिछले दो दिनों

२००

रात और प्रभात

से मैं आपके साथ कानपुर में था । जिस नारी की आकस्मिक अस्वस्थता से विचलित होकर थोड़ी देर पहले आप आँसू नहीं रोक सके, उसका ज्ञान मुझे न था । यह मेरा अपराध नहीं, वस्तुस्थिति का एक मोड़मात्र है । किसी सत्य पर परदा डालने के बदले यह कहीं उत्तम है कि हम वास्तविकता के आगे अपना सिर झुका दें । आप मानें चाहे न मानें, मैं इसे पराजय नहीं मानता । क्योंकि चेतना के पावन चरण जब हमारे कर्म-क्षेत्र के आँगन में पदार्पण करें, तब उनका स्वागत और अभ्यर्थना-व्यायोग अवश्यम्भावी हो जाता है ।...चलिये, चलिये ! अभी एक बहुत आवश्यक विषय पर आपको विचार करना है ।”

छोटे भैया और विमला अभी तक यथावत् स्थिर खड़े थे । अब वे भी बड़े भैया और कीर्ति के साथ पीछे-पीछे चल दिये ।

मुस्कराते हुये छोटे भैया धीरे-धीरे कह रहे थे—“अब तो यह कीर्ति भाषण भी देने लगा है ।”

विमला ने विनोद के भाव से उत्तर दिया—“जब किसी नेता से कोई त्रुटि हो जाती है, या जब वह जनता की सम्भावित प्रतिक्रियाओं की भयावह कल्पनाओं से काँप उठता है, तब ये वक्तव्य और भाषण ही तो रक्षा-कवच का काम देते हैं ।”

बैठक में पहुँचते ही कीर्ति ने बढ़ई मिस्त्री को बुलाया और उसके आते ही उससे कह दिया—“एक हजार पलंग के पावों की जिस माँग की बात अभी तुमने मुझसे कही थी, वह किसकी है ?”

बढ़ई मिस्त्री ने बताया—“फर्नीचर मार्ट की ।”

तब कीर्ति ने कह दिया—“लकड़ी का कारोबार आगे बढ़ाने के लिये हमें इस समय खराद सम्बन्धी मशीनरी की आवश्यकता है । किसी प्रकार यदि इसका प्रबन्ध हो सके, तो उद्योग-मन्दिर के विकास की सारी योजनाएँ सरलतापूर्वक पूरी हो सकती हैं ।”

छोटे भैया बोल उठे—“हाँ, बड़े भैया । हो तो सकती हैं ।”

रात और प्रभात

इसी समय डाक आ गयी । एक लिफाफा खोलकर उसके अन्दर का पत्र देखते ही कीर्ति ने हर्ष-गदगद होकर बड़े भैया के चरण छू लिये ।

बड़े भैया ने हाथ बढ़ाकर बहुत रोकने की चेष्टा की, पर कीर्ति किसी तरह न माना । बोला—“नहीं-नहीं, इस समय तो यह मेरा अधिकार है ।”

अब विमला और छोटे भैया झुककर विश्व-विद्यालय के रजिस्ट्रार के उस पत्र को शब्दशः पढ़ने लगे ।

बड़े भैया ने चश्मा आँखों पर लगाते और एक ही दृष्टि में उसका अभिप्राय भाँपते हुए कह दिया—“ओः तुम तो पी-एच०डी० हो गये । चलो, यह बहुत अच्छा हुआ !”

विमला हँस पड़ी और रूमाल मुँह से लगाती हुई बोली—“क्या अच्छा हुआ ? यों ही अभिमान के मारे नाक में दम थी । अब तो दम्भ और अहंकार बढ़ जाने से मिजाज भी ठूँढ़े न मिलेगा ।”

और मुसकराते हुए बड़े भैया बोले—“ऐसा मत कहो विमला । कीर्ति इतना जानता है कि एक शालीनता ही तो है, जो एक बार सफलता मिलने के बाद विकास में उत्तरोत्तर सहायक रहती है ।”

“मगर वह शालीनता भी इनमें कहाँ है ? उद्योग-मन्दिर में मेरे पैर रखते ही पी-एच० डी० की उपाधि मिल गयी ! इससे अधिक प्रसन्नता और आनन्द का भला कौन-सा समाचार हो सकता है ! मगर इतना भी न हो सका कि चाय के नाम पर गरम पानी का प्याला पीने को मिल जाता !”

छोटे भैया ने समर्थन में मृदुल हास से कहा—“यह बात तो विमला बिलकुल ठीक कह रही है । बड़े भैया, यह कीर्ति इतना कंजूस है कि बहुत कहने-सुनने पर किसी तरह चाय अगर पिला भी देगा, तो उसके साथ मिठाई-नमकीन का तो कभी नाम भी न लेगा !”

हँसी के प्रकार में कीर्ति बोल उठा—“बड़े मामा, इण्टरव्यू में

रात और प्रभात

सफल हो जाने और विदेशी छात्रवृत्ति स्वीकृत हो जाने की प्रसन्नता में छोटे भैया ने तो मुझे चाय भी कभी नहीं पिलायी। खैर कोई बात नहीं।”

कथन के साथ विवश हो कीर्ति ने तुरन्त रमजान खाँ को बुलाकर, पास के जलपान-गृह से, चार व्यक्तियों के लिये ट्रे में चाय और बिस्कुट भिजवाने का आदेश कर दिया।

विमला का रूमाल मुँह पर आ गया और बड़े भैया रायसाहब को एक पत्र लिखने लगे।

कारागार में भी रविवार का दिन अवकाश का होता है। बन्दी लोग उस दिन निश्चिन्त दिखाई देते हैं। कोई नल वाले चबूतरे पर अपने कपड़े साफ़ कर रहा था, तो कोई स्नान। कोई नौ बज जाने पर हाथ में तामलोटा लिये, मुँह में बीड़ी दबाये, शौचालय की ओर चला जा रहा था तो कोई अभी बिस्तर पर ही अँगड़ाई ले रहा था। कुछ लोग हजामत बनाने वाले के पास प्रतीक्षा में बैठे थे, तो कुछ लोग पहलवान के पास गाँजे की दम लगाने के लोभ में। जेल के सुपरिन्टेन्डेण्ट अथवा जेलर आदि किसी के आने की आशंका नहीं थी; इसीलिए कुछ लोग अन्य बैरकों की तरफ भी निःशंक आ-जा रहे थे।

कारागार के नियमानुसार रविवार का ही दिन भेंट के लिये निश्चित है। अतः इस निश्चिन्तता में भी सब लोग बार-बार द्वार की ओर उत्सुकतापूर्वक देखने लग जाते थे।

रामप्रसाद इस समय तक अपने बिस्तरे पर ही बैठा था। वह कुछ अभ्यमनस्क था, हथेली पर चिबुक टिकाये हुए बैठा था कि मँकू आकर बोल उठा—“उठो बाबू ! दस बज चुके हैं। अब नहा लो, नहीं तो कम-से-कम

रात और प्रभात

कुल्ला-बुल्ला ही कर डालो । पानी मैंने सवेरे ही भर लिया है । आज आपके यहां से कोई-न-कोई तो जरूर आयेगा । उठो, मैं बिस्तर के पास बैठता हूँ । आप निपट आइये । भंगी अभी-अभी साफ करके गया है ।”

रामप्रसाद ने बिना हिले-डुले ही कह दिया—“कोई आयेगा भी या नहीं, नहीं मालूम । यह मेवालाल भी आज नहीं आयेगा ? वैसे तो एक बीड़ी के लिए सुबह-दोपहर-शाम तीन-तीन चक्कर काटता है । पर आज वह भी राजा बन बैठा है ।”

मैकू ने ज़मीन पर ही बैठते हुए उत्तर दिया—“हां बाबू । यह बात तो आपने ठीक कही । आज वह जान-बूझकर इधर नहीं दिखाई देता । पूछोगे, तो कहेगा—काम बहुत था, फुरसत ही नहीं मिली । बदमाश है बदमाश ।.....बाबू ! आज सबेरे से एक भी बीड़ी पीने की नौबत नहीं आयी ।”

रामप्रसाद स्वयं तो बीड़ी न पीता था, मगर पास अवश्य रखने लगा था । एक बीड़ी कारागार के भीतर कितनी मूल्यवान होती है, उसे भीतर ही आकर ज्ञात हुआ था । आज्ञा के साथ शरीर की मालिश, कपड़े धुलवाना, पानी भरवाना, इत्यादि जो कुछ भी वहां हो सकता है, केवल बीड़ी की महिमा से । अतएव उठते हुए बाहर की ओर चलते हुए उसने कह दिया—“कंबल के नीचे रखी है । लेकर पियो प्रेम से । मैं अभी आता हूँ ।”

रामप्रसाद बैरक के बाहर मैदान में निकला ही था कि मेवालाल का चिरपरिचित स्वर गूँज उठा । इधर-उधर से बहुतेरे लोग उसकी ओर दौड़ पड़े । जो यथा-स्थान बैठे रहे, उनके भी कान और आँखें उसी की ओर केंद्रित हो गये ।

मेवालाल पुकार लगा रहा था—“छेदीलाल ! छेदीलाल ! अरे है कोई छेदीलाल ?”

अपना नाम सुनते ही लोग भीड़ को चीरते-फाड़ते उसके पास पहुँचकर

रात और प्रभात

अपनी पर्ची लेकर बोल उठे—“देखूँ कौन आया है ?”

थोड़ी प्रतीक्षा के पश्चात् मेवालाल के मुँह से निकला—
“रामप्रसाद.....।” फलतः पुनरावृत्ति से पूर्व ही रामप्रसाद ने पर्ची
शाम ली । गोपीनाथ तथा रामरतन उससे मिलने आये थे ।

सब नाम, जो प्रायः पचीस थे, पुकार कर मेवालाल एक जमादार
तथा दो नम्बरदारों की सहायता से, पंक्ति बनवाकर, रामप्रसाद इत्यादि
को बाहर के बड़े फाटक की ओर ले चला । इसी समय ग्यारह बजे का
घण्टा बज उठा ।

मुख्य द्वार से प्रवेश करते ही एक विस्तृत मार्ग के एक ओर तो
गोदाम था, दूसरी ओर लुहारखाना । दोनों ओर लगे घनी इमली की
छाया में, जिसे जेल के कोश में मिलाई भी कहते हैं, सम्पन्न होती है ।

गोपीबाबू और रामरतन अन्य मिलनार्थियों के साथ मुख्य द्वार लांघते
ही खड़े हो गये । भय के वातावरण से आक्रान्त वे लोग निश्चय नहीं कर
पा रहे थे कि किस ओर जायँ । कहीं इधर-उधर चल दिये, तो गिरफ्तार
करने की२ वश्यकता न पड़ेगी, क्योंकि जेल में तो हैं ही ।

तभी पी से आते हुए एक जमादार ने कह दिया—“यहाँ क्यों
खड़े हो ?”

गोपी बाबू कुछ सिटपिटाते हुए बोले—“हम यह जानना चाहते हैं
कि मिलायी किस कमरे में होगी ?”

“जहाँ सबकी होगी वहीं आपकी भी । पहली बार आये हो शायद !
वे सब लोग जो चले जा रहे हैं जमादार के पीछे-पीछे । वहाँ, उधर उस
लाइन में कैदी ही तो बैठे हैं ।”

रामरतन जो अब तक न बोल सका था, ताड़कर बोला—“हाँ, हाँ,
उधर चलो न गोपी बाबू !”

कथन के साथ-साथ वह आगे हो लिया और गोपी बाबू पीछे-पीछे
हाथ में भोला लटकाये हुए चल पड़े ।

रात और प्रभात

पचीस-तीस कैदी एक पंक्ति में थोड़े-थोड़े अन्तर से बैठे हुए थे। इधर-उधर से पाँच-सात जमादार और कुछ नम्बरदार पक्का आदि निरीक्षण के लिए सावधान खड़े थे। रामप्रसाद पंक्ति के इसी सिरे में चौथे नम्बर पर बैठा था।

रामरतन ने हाथ से इंगित करते हुए कह दिया—“वह बैठे हैं। कहो भाई रामप्रसाद !”

“आओ, भाई गोपी।” सामने आते ही रामप्रसाद बोला।

रामप्रसाद की दाढ़ी बड़ी हुई थी, दुसूती का आधी बाँह का कुरता जिसमें दो-तीन धारियाँ थीं तथा नम्बर पड़े हुये और दुसूती का गाँठ के नीचे तक आया हुआ घुटघना उसके बदन पर था।

रामप्रसाद ने इसके बाद रामरतन को देखा और कह दिया—“मैं तो सोच रहा था रामरतन भला काहे को आयेंगे। इधर पैसा भी बढ़ गया होगा। फुर्सत मिली न मिली।”

“नहीं-नहीं, ऐसी क्या बात है। पैसा बढ़ जाने से आदमी थोड़े ही बदल जाता है।”

उसने फिर गोपी की ओर देखकर पूछा—“गलत कहता हूँ ? दूर क्यों जाते हो ? किशोरीलाल को ही देख लो।”

इसी समय गोपी बाबू बोल उठे—“अब इन सब बातों को भूल जाओ रामप्रसाद। ऐसी कोई प्रतिक्रिया अब तुमको अपने मन में नहीं रखनी चाहिए।”

और रामरतन बोला—“हाँ, छोड़ो इन बातों को। नई बात यह हुई कि एक दिन मुन्ना और उसकी माँ को मँझले भैया अपने घर ले आये हैं।”

रामप्रसाद का मुख विवर्ण हो उठा। बोला—“क्यों ? खर्च-पात के लिए रुपये तो बराबर भेजते ही होंगे।”

रात और प्रभात

रामरतन ने उत्तर दिया—“हाँ, भेजते थे । उसी रुपये ने भगड़ा उत्पन्न किया ।”

पुनः एक आश्चर्य !—“कैसा भगड़ा ?”

रामरतन ने कहा—“इधर घनादेश मुन्ना की माँ के पास पहुँचता, उधर आपके सालारजंग साहब के घर में टका न रह जाता । जिन आवश्यकताओं का मुंह सिया रहता था, वे शतमुख से चिल्ला-चिल्लाकर कहती थीं—गेहूँ तो अब समाप्त हो गये । जुआर अलबत्ता रक्खी है । घर पहुँचे तीन दिन नहीं हुए थे कि भैंस का सारा दूध रुपये के ढाई सेर के भाव से हलवाई के यहाँ जाने लगा । दस दिन के बाद सिंचाई का रुपया वसूल करने के लिए जो अमीन आ पहुँचा, तो तुम्हारी स्त्री की भाभी के पास कुल छः आने पैसे निकले; जब कि उन्नीस रुपये आठ आने देने थे । उस दिन दोपहर को खाना नहीं बना । सवेरे के निकले हुए, दो बजे साले साहब ने आकर कह दिया—“कहीं से रुपये नहीं मिले । अठन्नी रुपया ब्याज पर मैने महाजन से माँगे, उसने भी नहीं दिये । अन्त में वही नुस्खा काम में लाया गया, जो ऐसे समय के लिए अच्छा था । साले साहब की बीवी अर्थात् आपकी भाभी साहिबा ने आपकी पत्नी के पास आकर कहा—“हमारी तो लाज जा रही है और तुम टुकुर-टुकुर सुन रही हो । क्या मैं तुम्हारे दस-बीस रुपये हजम कर जाऊँगी । ज्योंही लाहा बिका त्योंही सबसे पहले तुम्हारे रुपये मैं अलग फेंक दूँगी । परिणाम यह हुआ कि विवश होकर उन्हें रुपये देने ही पड़े । लेकिन बाद में फिर लाहा बेचने का नाम नहीं लिया गया ।

इस तरह पहले महीने में सारे रुपये हस्तगत कर लिये, दूसरे महीने में बैलगाड़ी का एक पहिया टूट गया और जिस दिन घनादेश पहुँचा, उसके दूसरे दिन ही पहिये वाला रुपये लेने आ गया । उस समय भी ‘इज्जत का ख्याल है’ कहकर बीस रुपये मुन्ना की माँ से एँठ लिये गये । जब किसी तरह यह लूट-खसोट उनसे सहन न हुई, तो उन्होंने मँझले भैया को कच्चा

रात और प्रभात

चिट्ठा लिख भेजा। अब वे उन्हीं के घर में रहती हैं और बहुत प्रसन्न हैं। मुन्ना अब बैठने और हँसने भी लगा है। अबकी बार तुमसे मिलने के लिये मँकले भैया उन्हें ले आयेंगे। जुकाम के कारण आज नहीं आ सके।

कुछ गम्भीर होकर रामप्रसाद बोला—“इन सब बातों का सन्देह तो मुझे था। पर विश्वास नहीं हुआ था। और आश्चर्य तो अब भी नहीं हुआ।”

उसे अपने अतीत का भी स्मरण हो आया। स्वयं उसके रक्त में भ्रष्टाचार का कितना समावेश हो गया था। स्वयं उसने मँकले भैया से छिपाकर कितने सौदे किये थे और कितनी छोटी-मोटी निधियाँ उड़ाई थीं। स्वयं उसका मन इतना अस्वस्थ हो गया था कि सदा ही उसमें नाना प्रकार की अहेतुक आशंकाएँ विधूरान करती रहती थीं।

इतने में बांदियों से मिलने का समय समाप्त हो गया। रामरतन और गोपीनाथ चलने को तत्पर हो उठे।

गोपीनाथ ने कह दिया—“बड़ी प्रसन्नता की बात है कि अब पहले की अपेक्षा तुम्हारा तन और मन, अवसाद और विद्रोह से ऊपर उठकर स्वस्थ, शान्त और सुन्दर हो उठा है। अच्छा नमस्कार।”

“नमस्कार।”

जब दोनों फाटक के बाहर आ गये और रिक्शा पर बैठकर सरसैया घाट की मुख्य सड़क की ओर चलने लगे, तब गोपी बाबू बोले—“अब अन्धड़ शान्त हो गया है। स्पष्ट जान पड़ता है कि उत्पात और विग्रह; ध्वंस, द्विधा और द्वन्द्व, सन्तोष और आनन्द में विलय हो गये हैं।

रामरतन बोला—“सबसे बड़ी बात यह है कि अब इसमें अमानुषिक क्रोध सदा के लिए शान्त हो गया है।”

“इतना ही क्यों, स्पर्धा और द्वेष, घृणा और प्रतिहिंसा सदा के लिए मर गई है। लगता है, जैसे यह आदमी हमसे कहीं ऊपर उठ गया है। काँटे की एक भी चुभन शेष नहीं है। जहाँ जाकर मनुष्य ग्लानि और

रात और प्रभात

दाह से कुरूप और काला पड़ जाता है, वहाँ पहुँचकर यह व्यक्ति कैसा तेजस्वी और निरापद बन गया है ।”

इस समय रामप्रसाद सीखचों के अन्दर झुपचाप बैठा हुआ गा रहा था—“मो सम कौन कुटिल खल कामी !”

उसके चारों ओर कई बन्दी इकट्ठे हो गये थे । कोई-कोई तो तसले पर ताल देते हुये साथ-साथ गा भी रहे थे । रामप्रसाद का शरीर आगे-पीछे कभी-कभी झुकता और हिल उठता । जैसे पाठशाला का विद्यार्थी अभ्यासार्थ कोई सूत्र-कथन रट रहा हो । नयन मुंदे हुये थे, किन्तु चेतना के बन्द कपाट खुल गये थे । मुमूर्षु होते हुए प्राण, चिर-जाग्रत और स्पन्दित थे । कुछ भी गोपन न था । भावना का वेग क्रम-क्रम से आगे बढ़ रहा था । धीरे-धीरे निम्नलिखित पंक्ति वह गा उठा—

‘जेहि तन दियो ताहि बिसरायो, ऐसो नमक हरामी ।

मो सम कौन कुटिल खल कामी ?”

गान में विह्वलता इस सीमा तक बढ़ गयी कि रामप्रसाद की आँखों से अश्रुधारा बह चली । तभी एक बन्दी ने हँसते-हँसते कह दिया—“देख लो साथियो, पापी कितनी आसानी से साधू बन जाता है ! अरे मैं कसम खाकर कह सकता हूँ—घर जाकर, बीबी-बच्चों से मिल-भेंटकर थोड़े ही दिनों यह आदमी फिर इसी घेरे में आकर मानेगा । हा—हा—हा—हा—!”

कट्वक्ति सुनकर भी रामप्रसाद किसी प्रकार अभिभूत न होकर स्नेह-सिक्त मीठी हँसी के साथ बोला—“सब आदमी एक से नहीं होते मियाँ । कारवाँ चलता जाता है—लोग बकते रहते हैं !”

बड़े भैया जब उद्योग-मंदिर से चलने लगे, तब वे कुछ स्थिर न कर पा रहे थे कि उद्योग-मंदिर के लिए अब क्या करना चाहिये ।

रात और प्रभात

इतने में एक रिक्शेवाले ने आवाज लगायी—“अमीनाबाद, एक सवारी ”

कीर्ति बोला—“बस बड़े मामा जी, इसी में बैठ जाइये ।”

बड़े भैया ने एक बार उस रिक्शे में बैठे हुये व्यक्ति को देखा, तो उनको ध्यान हो आया कि इनको तो कहीं मैंने देखा है । तब कुछ भी कहे बिना वे उसी रिक्शा पर जा बैठे ।

बैठे हुये व्यक्ति ने भी उनके लिये यथासम्भव स्थान रिक्त कर दिया ।

रिक्शा अभी लालबाग के चौराहे तक ही पहुँच पाया था कि साथ बैठे हुये व्यक्ति ने कह दिया—“क्षमा कीजियेगा । मुझे आपको पहचानने में कुछ मिनट लग गये । आपको कदाचित् स्मरण होगा कि एक बार मैं आपके घर हो आया हूँ और वहाँ खाना भी खा आया हूँ ।”

कीर्ति ने छोटे भैया से सम्पादक जी की कथा सुन ली थी, पर उनके साक्षात्कार का अवसर नहीं मिला था ।

बड़े भैया बोले—“मुझे भी ऐसा ही कुछ स्मरण आ रहा था; लेकिन फिर मैं सोचने लगा—हो सकता है, आप जानकीवल्लभ न होकर जानकीशरण हों ।”

कीर्ति बड़े भैया के रिक्शे के बायें ओर लगकर साइकिल चला रहा था ।

सम्पादक जी ने उत्तर दिया—“हाँ, यह आपने बिलकुल ठीक कहा । हम दोनों जुड़वाँ भाई हैं, इसलिये आकार-प्रकार में एक ही से होने के कारण प्रायः लोगों को ऐसा धोखा हो जाता है ।”

कीर्ति मन-ही-मन अपने आपसे पूछने लगा—‘ये जुड़वाँ लड़के न जाने कैसे पैदा हो जाते हैं ।’

सम्पादक जी का इतना कहना था कि बड़े भैया स्तब्ध हो उठे । उनको इस बात का बिलकुल ज्ञान न था । उन्होंने तो साधारण रूप से

रात और प्रभात

बिना सोचे-समझे एक नाम बतला दिया था। जिसका अभिप्राय केवल इतना था कि सम्भव है, उनसे मिलते-जुलते कोई दूसरे व्यक्ति होंगे। अतः तत्काल वे आत्मलीन हो उठे।

सम्पादक जी ने जब यह देखा कि ज्ञान बाबू, सम्भव है, अपने मन से कोई बात न करें, तब उन्होंने पूछा—“रायसाहब आपके यहाँ कबसे नहीं आये ?”

बड़े भैया ने उत्तर दिया—“बस, तभी से नहीं आये जब आपके साथ आये थे। और कहिये, आपकी फोटोग्राफी कैसी चल रही है ?”

उन्हें स्मरण हो आया कि अनायास एक छोटी भूल के कारण मुझे कितना अपदस्थ और असम्मानित होना पड़ा था। अनुताप भरी वाणी में बोले—“इधर तो बिलकुल छूट-सी गयी। और असल बात यह है कि अबकाश ही नहीं मिलता। दायित्व भी बढ़ गया है। मुख्य सम्पादक एक शिष्टमण्डल में सम्मिलित होकर विदेश गये हुये हैं। इसलिए अब सम्पादकीय लेख भी मुझी को लिखने पड़ते हैं।”

कीर्ति सोचने लगा—“आदमी तो बड़ा योग्य जान पड़ता है। कहीं ऐसा न हो कि.....”

बड़े भैया आश्चर्य के साथ बोले—“अच्छा, तो आप अब मुख्य सम्पादक का कार्य कर रहे हैं। मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई। पर इधर कैसे आगमन हुआ ?”

“मेरी माँ अब तक यहीं थीं। अब उन्हें साथ लिये जा रहा हूँ।”

‘कहीं ऐसा तो नहीं है कि यह व्यक्ति अब मामा जी को प्रभावित करने पर तुल गया हो।’

थोड़ी देर बाद अमीनाबाद आ गया और रिक्शे वाला रुककर उतर पड़ा।

जानकी बाबू ने भी रिक्शे से उतरते हुए कहा—“आपके विषय में राय बाबू से मैंने बहुतेरी बातें सुन रखी हैं। यदि कभी कुछ थोड़ा-सा २१२

रात और प्रभात

समय मुझे देने की कृपा करें, तो आपके सम्बन्ध में एक लेख अपने पत्र में निकाल दूँ ।”

कीर्ति विचार में पड़ गया—“बात मुझे सही जान पड़ती है ।”

बड़े भैया के मुख पर हास की आभा झलक उठी । निर्विकार स्वस्थ शान्त चित्त से वे बोले—“मुझमें ऐसी कोई बात नहीं है जो उल्लेखनीय हो । विज्ञापन से ही नहीं, प्रकाशन से भी दूर रहता हूँ । मैं नहीं चाहता कि मेरे विषय में कहीं भी कोई बात बढ़ाकर लिखी जाय ।”

कीर्ति सोचने लगा—‘आज का युग धीरे-धीरे ऐसे साधु व्यक्तियों से शून्य होता जा रहा है । आज तो घूम उन व्यक्तियों की है, जो यह कहते नहीं लजाते कि अपनी दुनिया का एकमात्र सूर्य मैं हूँ ।’

जानकी बाबू ने उत्तर दिया :

“बढ़ाकर न सही, पर यथार्थ के अवलोकन और अध्ययन से तो आपको आपत्ति नहीं होनी चाहिये ।”

“यथार्थ है क्या वास्तव में, यही तो जानना कठिन है । जब मैं स्वयं ही संदिग्ध अवस्था में हूँ, तब जगत को उसके विषय में क्या प्रकाश दे सकता हूँ !”

‘मामा जी यहाँ पर इस व्यक्ति को एक झटका दे रहे हैं ।’ कीर्ति सोच रहा था । जानकी बाबू ने कहा—

“मैं जब आपकी इस शालीनता की माँ से चर्चा करूँगा, तो वे मुझसे बहुत बिगड़ेंगी । कहेंगी—ऐसा ही था तो उनको अपने साथ क्यों नहीं ले आये ।”

बड़े भैया बोले—“उनसे मेरा नमस्कार कहियेगा । और आप जब कभी इधर आइयेगा, तो मेरे ही यहाँ ठहरियेगा ।”

जानकी बाबू ने उनको प्रणाम किया और बड़े भैया ने उनको आशीर्वाद दिया । पर जानकी बाबू जब गणेशगंज मार्ग की ओर बढ़ने लगे, तो पुनः कुछ ध्यान आते ही बड़े भैया की ओर लौट पड़े । बोले—

रात और प्रभात

“आप यहाँ कहाँ ठहरे हैं। असल बात यह है कि मेरी माँ आपके दर्शनों के लिये उत्सुक बहुत हैं।”

कीर्ति यह सोचता हुआ मुसकराने लगा—“वाह ! क्या तर्क आपने पेश किया है !”

बड़े भैया ने हँसते-हँसते उत्तर दिया—“अच्छी बात है। उनसे कह दीजियेगा—यह आपकी बड़ी कृपा है। किसी प्रकार यह जीवन तो पूर्ण हो चला। अगले जीवन में कभी ऐसा अवसर आयेगा, तब एक बार फोटोग्राफ लेकर देखूँगा, मुद्रा कैसी आती है।”

अब जानकी बाबू अवाक् होकर एक बार उन्हें देखते रह गये।

आगे विमला और छोटे भैया खड़े उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। बड़े भैया जब उसी ओर बढ़ने लगे, तब कीर्ति भी उनके साथ होकर बोला—“बड़े मामा, इतना सुन्दर उत्तर आपने दिया है कि मैं जीवनभर न भूल सकूँगा।”

बड़े भैया हँसने लगे।

कुछ दिन और व्यतीत हुए; तभी एक दिन कीर्ति ने बड़े भैया के पास आकर सूचित किया कि अब हमारा उद्योग-मन्दिर संपूर्ण नगर के बेकारों को कार्य देने में समर्थ होने लगा है।

यह संवाद सुनकर बड़े भैया अतीव प्रसन्न हुए और बोले—“मुझे तुमसे ऐसी ही आशा थी कीर्ति।”

कीर्ति ने उत्तर दिया—“इस सफलता का सारा श्रेय बड़े मामा आप के उस दिन के आकस्मिक आगमन को है। सच पूछिए तो इतनी उत्तेजना मुझे कभी नहीं मिली थी। संयोग की बात कि घर पहुँचते ही मुझे सूचना मिली कि लाला पार्वतीनन्दन कुछ अस्वस्थ हैं। बचपन में एक ऐसा भी समय आया था जब बिना ट्यूशन किए मैं पढ़ नहीं सकता था और पार्वतीनन्दन बाबू के चिरंजीव गजानन के विषय में प्रसिद्ध यह था कि उनका गणित विषय में उत्तीर्ण होना दुष्कर है। मुहल्ले की बात थी

रात और प्रभात

और पार्वती बाबू मुझसे परिचित थे। सर्दी के दिन थे और उन दिनों प्रदर्शनी चल रही थी। धूमते-धामते 'अखिल भारतवर्षीय चाय परिषद्' की दूकान पर जा पहुँचे।”

पार्वती बाबू बोले—“आओ कीर्ति, एक-एक प्याला चाय ही यहाँ पर चढ़ा ली जाय।”

विश्व-विद्यालय-जन्य वातावरण का नया-नया उत्साह था। चाहे जितना बड़ा आदमी हो फिर भी उसे उत्तर देने में किसी प्रकार की भिन्नता न रह गयी थी। यकायक मेरे मुँह से निकल गया—“बाबू जी, चाय की तो चुस्की ली जाती है, चढ़ाने की चीज तो कुछ दूसरी है।”

पार्वती बाबू हँसते-हँसते बोले—“याद मत दिलाओ, कीर्ति।”

और भी दो व्यक्तियों के साथ, एक गोल टेबिल के आस-पास, हम लोग बैठ गये। चाय-पान के अनन्तर मैंने प्रश्न कर दिया—“गजानन तो अब ग्यारहवीं-बारहवीं कक्षा में होगा।”

पार्वती बाबू सिर हिलाते-हिलाते, अटकते-अटकते बोले—“अरे कहाँ कीर्ति ! उसका तो बड़ा विचित्र हाल है।”

मैंने पूछा—“क्या ? कैसा विचित्र हाल ?”

उन्होंने अतीव चिन्ता व्यक्त करते हुए कह दिया—“दो साल से हाई स्कूल में बैठ रहा है, मगर पास ही नहीं होता। चार-चार, पाँच-पाँच अंकों से गणित में लुढ़क जाता है।”

बस उनका इतना कहना था कि आपके इन चरणों के प्रताप से मेरे मुख पर सरस्वती बैठ गयी और मैंने कह दिया—“अच्छा बाबू जी, अगर मैं उसे पास करवा दूँ तो आप मुझे क्या पुरस्कार देंगे ?” पार्वती बाबू के मुँह से निकल गया—“जो तुम माँगोगे।”

मैंने कह दिया—“दो सौ रुपये तो आप मुझे पेशगी दे दीजिये और तीन सौ रुपये पास हो जाने पर।” संयोग की बात काम बन गया। गजानन को मैंने अटूट अभ्यास में डालकर पास करवा दिया।

रात और प्रभात

“बस बड़े मामा, उसी दिन से पार्वती बाबू के यहाँ जैसे जीवन भर के लिए मेरा खाता खुल गया। उस दिन जब आपने मेरी कार्य-दक्षता और कुशलता को दांव पर धर दिया, तब मैं उन्हीं के पास सात बजे प्रातःकाल जा पहुँचा। दो-तीन घण्टे उनके साथ रहा। अन्त में जब विदा लेने लगा, तो उन्होंने कहा—“हमारे योग्य कोई काम हो तो संकोच मत करना कीर्ति; चिरंजीव जैसे कुछ हैं तुम जानते हो। रियासत तो रहेगी नहीं, एक-न-एक दिन खा-उड़ा डालेंगे। इसलिए मेरे जीवन-काल में अगर कोई उत्तम कार्य इन हाथों से हो जाये तो मुझे पहले से बता देना, अच्छा !” और बड़े मामा, उसी दिन मैं उनके यहाँ से दस हजार रुपये ले आया। किसी दिन आइये; हमारा लकड़ी का कारखाना अब बहुत उत्तम प्रकार से चल रहा है। देखकर आपकी तबियत प्रसन्न हो जायगी।”

बड़े हर्ष-गदगद होकर बोले—“सुनता तो गया मैं, चुपचाप तुम्हारी बात, लेकिन सारी कथा पहले से जानता हूँ। रुपया तो उनसे और भी ज्यादा मिल सकता था, लेकिन खैर, जो मिल गया सो ठीक है। बात यह है कीर्ति कि आज की सम्यता में व्यक्ति के लिए सदैव सचेत रहने की सम्भावनायें नष्ट हो गयी हैं। अंकुश तो चाहिए ही। मैं आचार्य कृपलानी की इस बात से बिल्कुल सहमत हूँ कि कोई भी शासन-व्यवस्था हो, स्वस्थ विरोध आवश्यक है। इसलिए जान-बूझकर मैंने तुम्हारी जी भर-कर भर्त्सना की थी। आज बता रहा हूँ।”

कीर्ति हँसने लगा। इतने में आ गये रायसाहब। कमरे के अन्दर प्रवेश करते ही बोले—“बड़े भैया, हम बहुत बच गये उस बार आपकी कृपा से। जानकी बाबू सम्पादक नहीं, प्रूफरीडर मात्र हैं। मगर एक दूसरा लड़का मैंने बहुत बढ़िया देखा है।”

बड़े भैया ने कुछ गम्भीर होकर उत्तर दिया—“बैठो-बैठो, एक

रात और प्रभात

लड़का पहले दिखलाया था, उसको तो देख लिया। अब जो लड़का देखा है, उसको भी देख लूंगा।”

कीर्ति उठकर खड़ा हो गया। बोला—“बड़े मामा, अभी आता हूं।” और इतना कहकर अन्दर चला गया।

रायसाहब बोले—“बहुत ही सुन्दर लड़का है। आप देखेंगे तो चित्त प्रसन्न हो जायगा। दिल्ली में रजतपट के जो सबसे बड़े वितरक हैं, श्रीमान भगनलाल, आपने उनका नाम सुना है?”

बड़े भैया बोले—“नहीं सुना?”

“नगर की पाँच टाँकीज इस समय उनके हाथ में हैं। करोड़पति आदमी हैं। विमला अगर उनके यहां पहुँच गई, तो राजरानी बन जायगी, राजरानी!”

बड़े भैया बोले—“बस-बस, समझ लिया। इतना बहुत है। वह धन धन नहीं जो रूढ़ियों और परम्पराओं के माध्यम से आता और जाता हो। वह ऐश्वर्य ऐश्वर्य नहीं जो आत्मा को हीन बनाता हो। ऐसे निम्न स्तर के वातावरण में पलने वाले युवक के हाथ में विमला का हाथ देना मुझे कभी स्वीकार नहीं हो सकता।”

“सबसे बड़ी कठिनाई यह है बड़े भैया कि बिना लड़का देखे आप उसके सम्बन्ध में एक मत स्थिर कैसे कर लेते हैं। इस बात का बिल्कुल ध्यान नहीं रखते कि यह पूर्वाग्रह मानसिक अस्वस्थता का ही द्योतक है।

“आप कुछ भी कहें बड़े भैया, इस बार मैं यह विषय तै करके ही मानूंगा। मैंने निश्चय कर लिया है कि विमला का विवाह अब हो ही जाना चाहिये।”

अपनी भावना को दबाते हुये बड़े भैया ने कह दिया—“तब फिर मुझे कुछ नहीं कहना है।”

“बड़े भैया, आप रुष्ट बड़ी जल्दी हो जाते हैं।”

रात और प्रभात

इधर यह बात हो रही थी; उधर विमला कीर्ति से लड़ती हुई कह रही थी—

“तुम कुछ भी कहो, मैं यह बात कभी भूल नहीं सकती कि तुम कायर हो । कांटे निकालते समय उस दिन हास्पिटल में तुम मेरे पास से हट गये थे । बस, वही एक प्रभाव मेरे मन पर यथावत् स्थिर है ।”

कीर्ति बोला—“तुम्हारा यह आरोप मुझे स्वीकार है । दिनानुदिन के अनुभव ने, अनेक बार, अनेक प्रकार से मुझको यही बतलाया है कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी मनोरमा के समक्ष कहीं-न-कहीं दुर्बल होता है । आज एक ही छूट मैं तुम्हें देने को तैयार हूँ कि तुम जीवन-भर मुझसे इसी प्रकार लड़ती और भगड़ती रहो, तो भी मैं तुमको अन्यथा न समझूंगा । बस !”

विमला ने रूमाल मुँह से लगा लिया ।

कीर्ति ने पूछा—“हूँसी क्यों विमला ? सच-सच बताओ, क्या बात है ? निःसंकोच कहो ।”

मंद हास में विमला बोली—“मेरे इस हाथ के और तो सब कांटे निकल गये थे । एकमात्र यही शेष था । मैं यही सोच रही थी कि कदाचित् अब वह भी निकल गया है ।”

थोड़ी देर बाद बड़ी बहू मुस्कराती हुई रायसाहब से कह रही थी—
“नहीं-नहीं, ऐसा नहीं है । माना कि दोनों लड़ते-भगड़ते रहते हैं, लेकिन इससे क्या ? भगड़े तो हमारे बीच में भी हुये हैं और होते रहते हैं । तुमको इस विषय में चाहे जो शंका हो, पर मुझको नहीं है और न तुम्हारे भैया को है ।”

रायसाहब बोले—“अच्छा, तो फिर यही तय रहा ।”

इसी समय निकटवर्ती आँगन की डाल पर कोयल बोल उठी—“कुहू-कुहू, कुहू-कुहू ।”

रामप्रसाद भी कारागार से लौट आया था । आँगन में गोविन्द छड़ी

रात और प्रभात

हाथ में लिये बड़े भैया की अनुकृति दिखला रहा था । दमयन्ती मुन्ना को गोद में लिये छोटी बहू के पास बैठी हुई थी । परिवार के शेष सदस्य आंगन में विराजमान थे । रामप्रसाद बड़े भैया के पास बैठा हुआ कुछ मन्त्रणा कर रहा था ।

बड़े भैया ने कहा—“इस प्रसंग में मुझे सिर्फ एक ही बात कहनी है कि निष्कलंक छूट जाने की परिस्थिति में भी अपराध स्वीकार की भावना तुम्हारे मन में कैसे आयी ?”

बड़े भैया का इतना कहना था कि रामप्रसाद की आँखों में आँसू आ गये । फिर स्थिरचित्त हो उसने कह दिया—“बारम्बार घुमा-फिराकर एक ही स्वर मेरे भीतर से फूट उठता था—‘मैं इन पावन चरणों के निकट बैठने के योग्य नहीं हूँ ।’ मैं चाहे जितना सुखी और समृद्ध हो जाता, पर मेरी यह पीड़ा तो मन से कभी जा नहीं सकती थी । इसीलिए मैंने सोचा—‘क्या पापात्मा की मुक्ति बुद्धि से ही हो सकती है ? प्रेम से नहीं हो सकती ? भावना से नहीं हो सकती ? एक विचार आया—‘हो सकती है !’ हो सकती है ! बस बड़े भैया, इसीलिये प्रायश्चित्त करना मेरे लिये आवश्यक हो गया ।”

भीतर का आनन्द-कोलाहल यकायक शान्त हो गया ।

यकायक बड़ी बहू ने आकर कहा—“तुम्हारी ये बातें तो कभी समाप्त होंगी नहीं । कुछ मेवा और मसाले की व्यवस्था करोगे कि इसी तरह बैठे रहोगे । अरे, रामू भैया, दाई को ही बुला लाओ । कुन्दन को दूसरे काम से भेजा है ।”

बड़े भैया छड़ी हाथ में लेकर खड़े हो गये । आगे-आगे वे थे, पीछे-पीछे रामप्रसाद ।



